PRĀKRIT PRAVESIKĀ

OR

INTRODUCTION TO PRAKRIT

BY

ALFRED C WOOLNER, M A (*Oxon*), C I E, F A S B,

Principal, Oriental College, Lahore

Translated into Hindi by

BANARSI DAS JAIN, M A, Ph D,
Department of Hindi, Panjab University, Lahore

Published by

The University of the Panjab, Lahore

1933

Copies of this book can be had from the agents—
Messrs Moti Lal Banarsi Dass, Proprietors,
Punjab Sanskrit Book Depot,
Saidmitha, Lahore

Printed at the Bombay Sanskrit Press Saidmitha Lahore
By Durga Dass Prabhakar

प्राकृत-प्रवेशिका

(INTRODUCTION TO PRAKRIT)

लेखक—

श्री आल्फ्रेड सी० वूल्नर

एम. ए. (आक्सन), सी. आई. ई, एफ. ए. एस. बी.,

प्रिन्सिपल–ओरियण्टल कालेज, लाहौर

अनुवादक—

बनारसीदास जैन, एम. ए., पी-एच. डी.

अध्यक्ष—हिन्दी विभाग,

पञ्जाब यूनिवर्सिटी, लाहौर।

प्रकाशक—

पञ्जाब यूनिवर्सिटी, लाहौर।

वि० सं० १९९०

Copies of this book can be had from the agents—
Messrs Moti Lal Banarsi Dass, Proprietors,
Punjab Sanskrit Book Depot,
Saidmitha, Lahore

Printed at the Bombay Sanskrit Press Saidmitha Lahore
By Durga Dass Prabhakar

प्राकृत-प्रवेशिका

(INTRODUCTION TO PRAKRIT)

लेखक—

श्री आल्फ्रेड सी० वूल्नर

एम. ए. (आक्सन), सी. आई. ई, एफ. ए. एस. बी.,

प्रिन्सिपल–ओरियण्टल कालेज, लाहौर

अनुवादक—

बनारसीदास जैन, एम. ए., पी-एच. डी.

अध्यक्ष—हिन्दी विभाग,

पञ्जाब यूनिवर्सिटी, लाहौर।

प्रकाशक—

पञ्जाब यूनिवर्सिटी, लाहौर।

वि० सं० १९९०

पुस्तक मिलने का पता:—

मोतीलाल बनारसीदास,

अध्यक्ष—पजाब सस्कृत पुस्तकालय,

सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

मुद्रक दुर्गादास प्रभाकर बोम्बे सस्कृत प्रेस, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

अनुवादक का वक्तव्य ।

मूल ग्रन्थ के उद्देश्य का उल्लेख तो ग्रन्थकार ने अपने "उपोद्घात" में ही कर दिया है । अतः उसके दोहराने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं । परन्तु मूल ग्रन्थ अङ्गरेजी भाषा एवं रोमन लिपि में होने के कारण केवल हिन्दी-संस्कृत जानने वालों के लिए पूर्णतया उपयोगी नहीं हो सकता था । भारत में प्राकृत का अभ्यास प्रायः जैन साधुओं तक ही परिमित है क्योंकि उनके धार्मिक साहित्य का अधिकांश इसी भाषा में है । अतः इन महानुभावों तथा इतर प्राकृत प्रेमी जनों की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए ग्रन्थकर्ता (पञ्जाब विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर महोदय) ने इसके हिन्दी अनुवाद की आयोजना की ।

मेरे नेत्ररोग के कारण प्रूफ संशोधन का कार्य दूसरे सज्जनों से कराए जाने में अनुवाद के उत्तरार्द्ध में कई स्थलों पर मूल एवं नोटों में कुछ अशुद्धियां रह गई हैं जो आशा है अगले संस्करण में दूर कर दी जायंगी ।

कृष्ण नगर लाहौर ।
आषाढ शु० १५, सं० १९९०

बनारसीदास जैन ।

गन्थआरेण णिअगुरुणो सिरि-

आर्थर एण्टनी मैरुडानल-

आचारिअ-णरिन्दस्स बहल्लतित्थत्थस्स

णाम

सव्वाइं उवअरणाइ सुमरिअ

इमस्स पोत्थस्स आदिम्मि

मसिणेह

अहिलिहिद

[ए० सी० वूल्नर]

पहले संस्करण का उपोद्घात

सस्कृत की उच्च परीक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों में प्राय एक न एक नाटक अवश्य सन्निविष्ट होता है, जिसका बहुत सा अंश प्राकृत में होता है। परीक्षक चाहे कुछ ही सोचते हों, व्यवहार में विद्यार्थी सस्कृत छाया को पढ़ते हैं जो अधिकाश सस्करणों में उन्हें उसी पृष्ठ पर उपलब्ध हो जाती है। कम से कम आरम्भ वे इसी ढग से करते हैं, पीछे से प्राकृत पढ़ते समय किन्हीं सदृशताओं एव कतिपय भिन्नताओं को पाते हैं—ऐसी दशा में सम्भव है कि वे किसी ऐसे सन्दर्भ को पहचानने में समर्थ हो जावें जिसके सस्कृत रूपान्तर और कदाचित् अङ्गरेजी अनुवाद से वे पहले से ही परिचित हों। उच्चतर श्रेणियों के विद्यार्थी तक प्राकृत स्थलों को पढते समय जरा सा भी अटकने पर नीचे दी हुई 'छाया' पर दृष्टिपात करते हैं। फलत किसी भी प्राकृत का निश्चित ज्ञान शायद ही किसी विद्यार्थी को होता हो। इसमें विद्यार्थियों का कोई दोष नहीं है। जिन सस्कृत सस्करणों को वे काम में लाते हैं उनके प्राकृत स्थल प्राय अशुद्ध होते हैं, और अनुसन्धान के लिये कोई ऐसी सुगम पुस्तक नहीं है जिसमें उन्हें निश्चित नियम उपलब्ध हो सकें। इस <u>प्राकृत प्रवेशिका</u> का एक उद्देश्य सस्कृत नाटकों के शौरसेनी और माहाराष्ट्री पाठों का अधिक ध्यान और व्युत्पत्ति पूर्वक अनुशीलन करने के लिये विद्यार्थियों के हाथ में एक पथ प्रदर्शक रखना है।

किन्तु इसका मुख्य उद्देश्य वैदिक काल से आज तक की विशाल आर्य भारती के इतिहास के विद्यार्थियों को सहायता पहुँचाना है। भारतीय विद्यार्थी को आरम्भ में कम से कम एक आधुनिक भारतीय आर्य भाषा का घनिष्ठ ज्ञान होता है। स्कूल में वह जिस सस्कृत को पढ़ता है उसके द्वारा वह प्राचीन

भाषा के साहित्यिक और परिवर्तन रहित स्थिर रूप से परिचित हो जाता है। यदि उसे विश्वविद्यालय में संस्कृत पढ़ने का अवसर प्राप्त हो तो उसको पता लगेगा कि वेदों की भाषा भारतीय आर्य भाषाओं की कहीं अधिक प्राचीन अवस्था की परिचायक है। इसके लिए शुद्ध पाठ और अनुसन्धान के अनेकों ग्रन्थ प्राप्य हैं।

संस्कृत की अपेक्षा मध्यकालीन भाषाओं की अधिक उपेक्षा की गई है। स्वयं भारतवर्ष में मध्यकालीन प्राकृतें संस्कृत की अपेक्षा वास्तविक अर्थ में "मृत" भाषाएं हैं। भारतवर्ष से बाहर विद्वानों ने पाली को, जो प्राचीनतम बौद्ध धर्म ग्रन्थों की भाषा है, इस युग की सुलभ प्रतिनिधि स्वरूपिणी पाया है। भारतीय आर्य भाषा विज्ञान के विद्यार्थी को भिन्न भिन्न प्राकृतों की प्रमुख विशेषताओं का स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। आशा की जाती है कि इस प्रयोजन के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध होगा।

अध्ययन-सरणी—शायद सब से अच्छी युक्ति यह है कि आरम्भ में किसी एक प्राकृत का गहन अध्ययन किया जाय, और बाद को इसे आदर्श मान कर इसके साथ दूसरी प्राकृतों की तुलना की जाय। भारतीय वैयाकरणों की यही सरणी थी, उन्हों ने माहाराष्ट्री को अपना आदर्श माना था। किन्तु माहाराष्ट्री का एकमात्र उपलब्ध गद्य जैनों द्वारा लिखा गया था और वह भी उस बोली में नहीं जिसमें नाटकों के गीत हैं। पाली के अध्ययन के लिए उत्तम साधन विद्यमान हैं। किन्तु पाली इतनी प्राचीन है कि मध्ययुगीन प्राकृतों का अभ्यास उससे प्रारम्भ नहीं किया जा सकता। और हमारे पाठ्यविषयों में यह एक पृथक् विषय है और साधारणतया बौद्ध धर्म के अध्येताओं के लिए ही उपयुक्त समझी जाती है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के विद्यार्थी को वस्तुतः पहले पहल नाटकों में ही प्राकृत से साक्षात्कार होता है, जिस में अधिकांश शौरसेनी

होती है। इस कारण और अन्य कारणों से विषय का सामान्य वर्णन करते हुए शौरसेनी और महाराष्ट्री पर विशेष जोर देना उचित समझा गया है।

इस पुस्तक का उपयोग करने वाले अध्येताओं को चाहिए कि पहले सामान्य प्रकरणों को पढ़ें और फिर दोनों प्रधान प्राकृतों को दृष्टि केन्द्र में रख कर वर्णविज्ञान और व्याकरण के अध्यायों का अनुशीलन करें। अधिक महत्त्वपूर्ण अवतरण मोटे अक्षरों में छापे गये हैं*, और हो सके तो इन्हें कण्ठस्थ कर लेना चाहिए। फिर १-११ उद्धरणों में पूर्णतया पारंगत हो कर अध्येता को अपना संचित ज्ञान किसी भी नाटक में जिसे वह पढ़ रहा हो घटित करना चाहिए।

इस के उपरान्त भाषा विज्ञान विषयक अध्ययन आरम्भ होना चाहिए। इस में अनेकों अवस्थाओं और बोलियों की तुलना करनी चाहिए जिस प्रकार कि वे ४-१० अध्यायों में वर्णन की गई हैं और १४वें और उससे आगे अन्त तक के उद्धरणों से विशद की गई हैं।

पाली और पुरानी प्राकृत के नमूनों का प्रयोजन अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहनमात्र है।

प्राचीन काल से शब्दों की ऐतिहासिक अनवच्छिन्नता दिखाने के लिए यत्र तत्र आधुनिक रूपों का उल्लेख कर दिया गया है। विद्यार्थी स्वयं कहीं अधिक शब्दों के साथ अपनी मातृभाषा के शब्दों का सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।

अनुक्रमणिका का प्रयोजन अंशतः अनुसन्धान की सुविधा और अंशतः ऐसा साधन उपस्थित करना है जिससे विद्यार्थी रूपों की व्युत्पत्ति में अपनी योग्यता को परख सकें और उन्हें प्रकरण से बाहर असम्बद्ध दशा में पहचान सकें।

व्युत्पत्ति जैसी सान्दिग्ध बातों में, जहां विद्वानों में मतभेद है,

---

* हिन्दी अनुवाद में रेखाङ्कित कर दिये गए हैं। (अनुवादक)

दूसरे संस्करण का उपोद्घात

पहला संस्करण यूरपीय महायुद्ध के समय प्रकाशित किया गया था। नागरिक और सामरिक कर्तव्यों से यथाकथंचित् अवकाश निकाल कर प्रूफ पढ़े गये थे। इस दूसरे संस्करण में मुद्रण की बहुत सी अशुद्धियां दूर की गई हैं। इसी बीच भारतीय आर्य भाषाओं के इतिहास में महत्त्वपूर्ण परिवर्धन हो चुके हैं। वर्गीकरण और साहित्य के अध्याय अधिक समयानुकूल कर दिये गये हैं। जब यह पुस्तक प्रथम प्रकाशित हुई थी तब से भारतीय विश्वविद्यालयों में प्राकृत के प्रति अधिकाधिक रुचि बढ़ती गई है और तत्सम्बन्धी ज्ञान की साधारण स्थिति उन्नत हो चुकी है। बहुत से विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं के इतिहास पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। इस बात को दृष्टि में रखते हुए अशोक के शिलालेखों की प्रारम्भिक प्राकृत और उत्तरकालीन अपभ्रंश के सम्बन्ध में भी कुछ कहा गया है।

प्रूफों के पढ़ने और दूसरे भाग के मुद्रापण के लिए मैं ओरियंटल कालेज के हिन्दी लेक्चरार, अपने मित्र और सहयोगी डा० बनारसीदास जैन, एम० ए०, पी एच० डी०, का जो कभी मेरे शिष्य थे, बहुत आभारी हूं। इन्होंने बहुत सी उपयोगी बातों का उद्बोधन भी किया है।

ओरियंटल कालेज,
लाहौर, १९२८।

ए० सी० वूल्नर

नागरी और रोमन अक्षरों की तालिका।

यूरोप में छपा पाली साहित्य तथा बहुत सा प्राकृत साहित्य रोमन अक्षरों में है। इस कारण प्राकृत अभ्यासी के लिए रोमन अक्षर जानना अत्यावश्यक है। इसी हेतु से यहां नागरी-रोमन अक्षर तालिका दी जाती है—

स्वर— अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ

a ā i ī u ū ṛ $\bar{ṛ}$ l $\bar{l}$

ए ऐ ओ औ

e ai o au

नोट (१)—ऋ, ॠ; लृ, ॡ; ऐ और औ का प्रयोग प्राकृत में नहीं होता। ये वर्ण केवल संस्कृत में व्यवहृत होते हैं।

(२)—प्राकृत अइ, अउ के लिए वास्तव में aï, aü लिखना चाहिये परन्तु साधारणतया ai, au ही लिखे जाते हैं। चूंकि प्राकृत में ऐ, औ होते नहीं इसलिए इस में ai, au से ऐ, औ का भ्रम नहीं होता।

(३)—प्राकृत में कभी कभी ए, ओ (विशेष कर संयुक्त या द्विर्भूत वर्ण के पूर्व) से ह्रस्व ए, ओ का बोध होता है। ऐसी दशा में रोमन में ĕ, ŏ लिख देते हैं।

(४)—अनुनासिकता प्रकट करने के लिए स्वर के ऊपर यह चिह्न (˜) लगाया जाता है जैसे साँग=sãg(a)

व्यञ्जन—

क्, ख्, ग्, घ्, ङ्। च्, छ्, ज्, झ्, ञ्।
k kh g gh ṅ c ch j jh ñ

ट् ठ् ड् ढ् ण्। त् थ् द् ध् न्।
ṭ ṭh ḍ ḍh ṇ t th d dh n

प्, फ्, ब्, भ्, म्। य्, र्, ल्, व्।
p ph b bh m y r l v



नागरी और रोमन अक्षरों की तालिका।

यूरोप में छपा पाली साहित्य तथा बहुत सा प्राकृत साहित्य रोमन अक्षरों में है। इस कारण प्राकृत अभ्यासी के लिए रोमन अक्षर जानना अत्यावश्यक है। इसी हेतु से यहा नागरी-रोमन अक्षर तालिका दी जाती है—

स्वर— अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ

a ā i ī u ū ṛ ṝ ḷ ḹ

ए ऐ ओ औ

e ai o au

नोट (१)–ऋ, ॠ। ऌ, ॡ; ऐ और औ का प्रयोग प्राकृत में नहीं होता। ये वर्ण केवल संस्कृत में व्यवहृत होते हैं।

(२)—प्राकृत अइ, अउ के लिए वास्तव में aï, aü लिखना चाहिये परन्तु साधारणतया ai, au ही लिखे जाते हैं। चूकि प्राकृत में ऐ, औ होते नहीं इसलिए इस में ai, au से ऐ, औ का भ्रम नहीं होता।

(३)—प्राकृत में कभी कभी ए, ओ (विशेष कर संयुक्त या द्विर्भूत वर्ण के पूर्व) से ह्रस्व ए, ओ का बोध होता है। ऐसी दशा में रोमन में ĕ, ŏ लिख देते हैं।

(४)—अनुनासिकता प्रकट करने के लिए स्वर के ऊपर यह चिह्न (˙) लगाया जाता है जैसे सॉंग=sāṁg(a)

व्यञ्जन—

क्, ख्, ग्, घ्, ङ्। च्, छ्, ज्, झ्, ञ्।
k kh g gh ṅ c ch j jh ñ
ट् ठ् ड् ढ् ण्। त् थ् द् ध् न्।
ṭ ṭh ḍ ḍh ṇ t th d dh n
प्, फ्, ब्, भ्, म्। य्, र्, ल्, व्।
p ph b bh m y r l v

श् ष्, स् ह् । (-) अनुस्वार, ( ) विसर्ग ।
ś ṣ s h m h

नोट (१)—प्राकृत में परसवर्ण नासिक्य के स्थान में प्रायः अनुस्वार का प्रयोग होता है ।

(२) हिन्दी ड़ तथा मराठी ळ् के लिए भी रोमन में ṛ, ḷ आते हैं । ये संकेत ऋ और लृ के भी हैं जो प्रायः संस्कृत में ही प्रयुक्त होते हैं ।

(३) प्राकृतों में कुछ न कुछ उच्चारण भेद भी अवश्य होगा । अनुमान किया जाता है कि महाराष्ट्री में शायद 'च' का उच्चारण मराठी "च" (जैसा चा शब्द में) के उच्चारण से मिलता था । मागधी में 'श्र' का उच्चारण बंगला के 'श्र' के उच्चारण से मिलता था ।

अभ्यास के लिए उद्धरण नं० १८ (पृ० २१०) का कुछ पाठ रोमन अक्षरों में दिया जाता है ।

taṃ ca kuo vi nāūṇa niggao nayario sūri, aṇavara-yam ca gacchanto patto Sagakūlaṃ ṇāma kūlaṃ tattha je sāmantā, te Sāhiṇo bhaṇṇanti sāmantā 'hivai sayala narinda vanda cūḍāmaṇī so Sāhāṇusāhī bhaṇṇai tao Kālaga sūrī thio egassa sāhiṇo samīve, aṇṇayā ya so manta tantāīhiṃ io ya aṇṇayā kayāi tassa Sāhiṇo sūri samannīyassa harisa harisabbhara nibbharassa nā nāviha viṇoehiṃ ciṭṭhamāṇassa samāgao paḍihāro, viṇṇattaṃ ca teṇa, jahā "sāmi ! Sāhāṇusāhi dūo du vāre ciṭṭhai" Sāhiṇā bhaṇiyam 'lahuṃ pavesehi" pavesio ya vayaṇena antaraṃ eva nisaṇṇo ya diṇṇāsaṇe tao dūeṇa samappiyaṃ uvāyaṇam taṃ ca daṭṭhūṇa nava pāusa kāla nahayalam va andhāriyam va andhāri-yam vyaṇam Sāhiṇā

विषय सूची ।

शुद्धिपत्र।

पृष्ठ	पंक्ति	फुटनोट	अशुद्ध	शुद्ध
१७	१	११	पाठ छूट गया	स्वरमध्यवर्ती प्, ब्, व् का कभी लोप हो जाता है। माहा० रूअ=रूप, विउह=विबुध, दिअह-दिवस। स्वरमध्यवर्ती "य्"
१२८		२	√ भो	√ सो
१३२	८		संस्करणों	वाचनाओं
१३३		१	भटकते हुए	भटक कर
१३३		८	(वृत्त) 'समाप्त हुआ',	(वृत्ता) 'समप्त हुई'।
१३६		३३	३६००	१६००
१४०		७	पोॅम्म	पोॅम्म
१४३		७	'सदृशे'	'सदृश'
१४८		७	आरम्भों में	आरम्भों को
१५२		५	सप्तन्त	शप्नन्त
१५७		१	,,	,,
,,		५	सकुणोदि	सक्कुणोदि
१६३	६		K M ने	काव्यमाला में
,,	१४		आरम्भतस्स	आरम्भन्तस्स
१६५ श्लो० ११४			सवत्थ	सव्वत्थ
१६६ ,, १७१ नो०			सप्तन्त	शप्नन्त्र
१६७		६	बगला संस्करण	बंगाल वाचना
१७८ श्लो ३			सह्लोद	सह्लोद्द
१७६ प ६			सप्तन्त	शप्नन्त
१८१	१		शान्त	छृदन्त
१८४	२२		सप्तन्त्र	शप्नन्त

१८५	२३		,,	,,
१८६	४		,,	प्रान्त
१८७	४		प्रहरय	पल्हरय
१८८	२		भारत	भरत
१९६		५	'न्'	'म्'
१९८		७	लम्बी सास लेता हुआ	लम्बी सांस भर कर
२००		६	प्रावृष	प्रावृष्
२११		३	भविष्यत् समन्त	तथ्यान्त
२१२		७	वि+ +ह	वि+आ+ह
२२४	१३		दस हज़ार	एक पल्योपम (एक बहुत बड़ी सख्या)
१९०		५	समन्त	शमन्त
१८६		१	,,	,,
१८८		२	,,	,,
२८८		३	दुगुना	दो बार
२३३		२	तय्यार कर लिया है	तय्यार कराओ
,,		६	लाल पारा	सिंगरफ़
२७१		३	कुक्षि	कुक्षि

॥ श्री वीतरागाय नम ॥

प्राकृतप्रवेशिका।

प्रथम भाग।

पहिला अध्याय।

विषय-निर्देश।

उत्तर भारती अर्थात् भारतवर्षीय आर्य भाषाओं का इतिहास सुगमता के लिये तीन युगों में विभक्त किया जा सकता है— प्राचीन, मध्यम, और आधुनिक।

(१) प्राचीन युग की भाषा के उदाहरण साहित्य म (क) ऋग्वेद की भाषा और (ख) अर्वाचीन वैदिक साहित्य की भाषा हैं। इसी युग से सम्बन्ध रखने वाली वे लोक भाषाएं हैं जिन के आधार पर (ग) इतिहास ग्रन्थों (रामायण, महाभारत) की काव्य भाषा, (घ) पाणिनि पतञ्जलि की अतीव समार्जित (सस्कृत) साहित्यक भाषा और उन के पश्चात् कालिदास तथा आज तक के उत्तरलेखकों की सस्कृत भाषा ने जन्म पाया।

(२) मध्यम युग की भाषा के साहित्यक उदाहरण पाली और प्राकृत हैं। इसके अतर्गत वे सब भाषाएं हैं जो उस समय से लेकर जब कि विशेष वर्णविकारों तथा कुछ व्याकरणिक परिवर्तनों ने तत्कालीन भाषा को ऐसा रूप दे दिया था कि वह देखने में प्राचीन भारती से प्रत्यक्ष भिन्न प्रतीत होने लगी विक्रम की बारहवीं शताब्दी तक प्रचलित थीं। तत्पश्चात् और भी वर्णविकार होने से

तथा पुराना व्याकरण सर्वथा छिन्न भिन्न हो जाने से एक नूतन प्रकार की भाषा का विकास हुआ जो आधुनिक भाषा से मिलती जुलती थी।

इस युग के विषय का हमारा ज्ञान कई प्रकार के ऐसे साधनों से सङ्कलित किया गया है जो भिन्न २ देश तथा काल से सम्बन्ध रखते हैं। इन साधनों के अन्तर्गत प्राचीन लेख तथा साहित्य ग्रन्थ हैं। लेखों में महाराज अशोक की धर्म लिपियां सब से प्रसिद्ध हैं। साहित्य के अन्दर बौद्ध धर्म की दक्षिणी अर्थात् हीनयान सम्प्रदाय के पाली ग्रन्थ, जैन धर्म के प्राकृत ग्रन्थ, प्राकृत खण्डकाव्य, महा काव्य, नाटक और प्राकृत व्याकरण शामिल हैं।

(३) तृतीय या आधुनिक युग का प्रारम्भ-काल परिच्छिन्न रूप से निश्चित नहीं किया जा सकता। यह काल प्राकृत के सब से अर्वाचीन रूप अर्थात् अपभ्रंश जिसे बारहवीं शताब्दी में होनेवाले श्री हेमचन्द्राचार्य ने वर्णन किया है उसके और आधुनिक भाषाओं की सब से पुरानी कविता के कहीं बीच था। हिन्दी का सब से प्राचीन काव्य "प्रिथिराज रासौ" है जिसे लाहौर के रहनेवाले कवि चंद बरदाई ने (वि स० १२५० के लगभग) लिखा था।

मध्यम युग को फिर तीन अवस्थाओं में विभक्त कर सकते हैं— (१) पुरानी प्राकृत, (२) मझली प्राकृत, और (३) पिछली प्राकृत या अपभ्रंश।

(१) पुरानी प्राकृत के अन्तर्गत हैं—

(क) विक्रम पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर विक्रम की तीसरी शताब्दी के मध्य तक के शिला लेख। इन लेखों की भाषा में समय और देश के अनुसार कुछ २ भेद है।

(ख) हीनयान सम्प्रदाय के त्रिपिटक तथा महावंश, जातक आदि बौद्ध ग्रन्थों की पाली भाषा।

जातकों में गद्य की अपेक्षा गाथाओं की भाषा कुछ प्राचीन है।

(ग) प्राचीन जैन आगम की भाषा ।

(घ) प्रारम्भ काल के नाटकों तथा मध्य एशिया से मिले हुए अश्वघोष कृत नाटक खण्डों की भाषा ।

(२) मझली प्राकृत के अन्तर्गत हैं—

(क) दक्षिणापथ के मधुर गीतों की महाराष्ट्री भाषा ।

(ख) शौरसेनी, मागधी आदि अन्य नाटकीय प्राकृतें जो कालिदास और उस के उत्तरवर्ती कवियों के नाटकों में प्रयुक्त तथा व्याकरण ग्रन्थों में वर्णित मिलती हैं ।

(ग) अर्वाचीन जैन ग्रन्थों की प्राकृत ।

(घ) पैशाची प्राकृत । कहा जाता है कि "बृहत्कथा" की रचना इसी प्राकृत में हुई थी परन्तु अब केवल व्याकरण ग्रन्थों में ही इस का उल्लेख मिलता है ।

(३) अपभ्रंश—साहित्य के लिये अपभ्रंशों का प्रयोग कुछ अधिक नहीं होता था । ये साधारण लोक-भाषा के उस रूप के उदाहरण हैं जो उसने उस समय धारण कर लिया था जब नाटकीय प्राकृतें व्यवहार में प्रचलित न रही थीं, और वयाकरणों ने समार्जित करके उन्हें स्थिर रूप दे दिया था । जिस समय हेमचन्द्र ने पश्चिम भारत की एक अपभ्रंश विशेष का वर्णन किया उस समय शायद वह भी अप्रचलित हो चुकी थी ।

प्रस्तुत पुस्तक में साधारण तौर पर भारतवर्ष की भाषा के द्वितीय अथवा मध्यम युग का वर्णन है और विशेष करके मझली प्राकृत अवस्था का, उसमें भी प्रधानतया नाटकीय प्राकृतों का ।

"प्राकृत" शब्द के विविध अर्थ ।

"प्रकृति" शब्द से व्युत्पन्न "प्राकृत" शब्द के अर्थ के दो मार्ग हैं । [१] इसका अधिक यथार्थ अर्थ है "प्रकृति से निकला हुआ

या प्रकृति से संबंध रखनेवाला अर्थात् किसी वस्तु के मूलरूप से निकला हुआ और उसके विकार रूप विकृति का प्रतिपक्षी है"। [सांख्य दर्शन में प्राकृत शब्द का अर्थ है "प्रकृति अर्थात् मूल तत्त्व से निकला हुआ"]। [२] दूसरा कुछ व्यापक सा अर्थ है, सहज (नैसर्गिक), साधारण, लौकिक, ग्रामीण'।

बहुत सम्भव है कि पहिले पहिल "प्राकृत" शब्द (शौरसेनी–पाउद, माहाराष्ट्री–पाउअ) सर्व साधारण की नैसर्गिक या मातृ भाषा को अति परिष्कृत और सिद्ध "संस्कृत" भाषा से पृथक् करने के लिये अपने इसी व्यापक अर्थ में व्यवहृत हुआ होगा।

मध्यम कालीन व्याकरण और अलंकार ग्रन्थों में प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार मिलती है—"प्रकृति संस्कृत, तत्र भव, तत आगत वा=प्राकृतम्"—अर्थात् मूल भाषा है संस्कृत, उस में होनेवाली, या उस से निकली हुई है प्राकृत। यह व्युत्पत्ति ऐतिहासिक दृष्टि से चाहे सत्य न हो तो भी देखने में यह सब प्रकार से समीचीन प्रतीत होती है क्योंकि व्यवहार में हम संस्कृत शब्दों को मूल मानकर उनसे फिर प्राकृत रूप सिद्ध करते हैं। ऐसा होते हुए भी आधुनिक भाषा विज्ञान हम को एक आवश्यक अपवाद सूत्र जोड़ने पर बाधित करता है—अर्थात् हम संस्कृत शब्दों को उसी सीमा तक मूल मानते हैं जहां तक कि वे प्राचीन भारती के रूपों को प्रकट करते हैं। परन्तु कभी कभी प्राकृत रूप को सिद्ध करने के लिये प्राचीन भारती के उचित रूप का द्योतक शब्द संस्कृत में या तो सर्वथा ही मिलता नहीं, और अगर मिलता है तो केवल किसी अर्वाचीन ग्रन्थ में जहां स्पष्टतया वह किसी प्राकृत शब्द से संस्कृत रूप बनाया गया होगा।

यदि हम संस्कृत के अन्दर वैदिक तथा प्राचीन भारती युग की समस्त लोक भाषाओं को शामिल करलें तो यह कहना ठीक होगा कि सब प्राकृतें संस्कृत से निकली हैं, परन्तु यदि संस्कृत से हमारा

अभिप्राय केवल पाणिनीय संस्कृत का हो तो यह कहना ठीक न होगा कि कोई भी प्राकृत संस्कृत से निकली है, सिवाय इसके कि मध्यदेश की शौरसेनी प्राकृत मध्यदेश की उसी प्राचीन लौकिक भारती से निकली है जिस के आधार पर प्राय संस्कृत बनी है। पाश्चात्य विद्वानों ने प्राकृत शब्द का प्रयोग इन अर्थों में किया है—

(१) वे विशेष भाषाएं जिनका भारतवर्ष में प्राकृत शब्द से उल्लेख किया जाता है। जैसे—माहाराष्ट्री, या संस्कृत नाटकों के प्राकृत अंश।

(२) मध्यम भारती युग की भाषाएं (कभी २ पाली और पूर्व-कालीन उत्कीर्ण लेखों की भाषाओं को प्राकृत से पुरानी अवस्था की होने के कारण पृथक् भी कर दिया जाता है)।

(३) साहित्यक और शिष्ट भाषा से भिन्न सहजन्य लोक भाषा के लिये। इस अन्तिम अर्थ में कई लेखक प्राकृत के तीन भेद करते हैं— प्रथम, द्वितीय और तृतीय प्राकृतें जो तीनों बड़े युगों की सहजन्य लोक भाषाएं थीं*। लौकिक भाषा के इन उत्तरोत्तर रूपों के आधार पर कई एक साहित्यक भाषाओं का जन्म हुआ जो समय पाकर परि-वर्तन से मुक्त हो स्थिर रूप हो गई और अपने २ समय की तथा सदा परिवर्तन शील लोक भाषाओं के साथ २ व्यवहृत होती रही हैं।

---

* भारतीय भाषाओं के अद्वितीय विद्वान् सर् जॉर्ज ग्रियर्सन का यह मन्तव्य है।

या प्रकृति से संबंध रखनेवाला अर्थात् किसी वस्तु के मूलरूप से निकला हुआ और उसके विकार रूप विकृति का प्रतिपक्षी है"। [सांख्य दर्शन में प्राकृत शब्द का अर्थ है "प्रकृति अर्थात् मूल तत्त्व से निकला हुआ"]। [२] दूसरा कुछ व्यापक सा अर्थ है, सहज (नैसर्गिक), साधारण, लौकिक, ग्रामीण"।

बहुत सम्भव है कि पहिले पहिल "प्राकृत" शब्द (शौरसेनी-पाउद, माहाराष्ट्री-पाउअ) सर्व साधारण की नैसर्गिक या मातृ भाषा को अति परिष्कृत और सिद्ध "संस्कृत" भाषा से पृथक् करने के लिये अपने इसी व्यापक अर्थ में व्यवहृत हुआ होगा।

मध्यम कालीन व्याकरण और अलंकार ग्रन्थों में प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार मिलती है—"प्रकृति संस्कृत, तत्र भव, तत आगत वा=प्राकृतम्"—अर्थात् मूल भाषा है संस्कृत, उस में होनेवाली, या उस से निकली हुई है प्राकृत। यह व्युत्पत्ति ऐतिहासिक दृष्टि से चाहे सत्य न हो तो भी देखने में यह सब प्रकार से समीचीन प्रतीत होती है क्योंकि व्यवहार में हम संस्कृत शब्दों को मूल मानकर उनसे फिर प्राकृत रूप सिद्ध करते हैं। ऐसा होते हुए भी आधुनिक भाषा विज्ञान हम को एक आवश्यक अपवाद सूत्र जोड़ने पर बाधित करता है—अर्थात् हम संस्कृत शब्दों को उसी सीमा तक मूल मानते हैं जहां तक कि ये प्राचीन भारती के रूपों को प्रकट करते हैं। परन्तु कभी कभी प्राकृत रूप को सिद्ध करने के लिये प्राचीन भारती के उचित रूप का द्योतक शब्द संस्कृत में या तो सर्वथा ही मिलता नहीं, और अगर मिलता है तो केवल किसी अर्वाचीन ग्रन्थ में जहां स्पष्टतया वह किसी प्राकृत शब्द से संस्कृत रूप बनाया गया होगा।

यदि हम संस्कृत के अन्दर वैदिक तथा प्राचीन भारती युग की समस्त लोक भाषाओं को शामिल करलें तो यह कहना ठीक होगा कि सब प्राकृतें संस्कृत से निकली हैं, परन्तु यदि संस्कृत से हमारा

अभिप्राय केवल पाणिनीय संस्कृत का हो तो यह कहना ठीक न होगा कि कोई भी प्राकृत संस्कृत से निकली है, सिवाय इसके कि मध्यदेश की शौरसेनी प्राकृत मध्यदेश की उसी प्राचीन लौकिक भारती से निकली है जिस के आधार पर प्राय संस्कृत बनी है। पाश्चात्य विद्वानों ने प्राकृत शब्द का प्रयोग इन अर्थों में किया है—

(१) वे विशेष भाषाएं जिनका भारतवर्ष में प्राकृत शब्द से उल्लेख किया जाता है। जैसे—माहाराष्ट्री, या संस्कृत नाटकों के प्राकृत अंश।

(२) मध्यम भारती युग की भाषाएं (कभी २ पाली और पूर्व कालीन उत्कीर्ण लेखों की भाषाओं को प्राकृत से पुरानी अवस्था की होने के कारण पृथक् भी कर दिया जाता है)।

(३) साहित्यक और शिष्ट भाषा से भिन्न सहजन्य लोक भाषा के लिये। इस अन्तिम अर्थ में कई लेखक प्राकृत के तीन भेद करते हैं-प्रथम, द्वितीय और तृतीय प्राकृतें जो तीनों बड़े युगों की सहजन्य लोक भाषाएं थीं*। लौकिक भाषा के इन उत्तरोत्तर रूपों के आधार पर कई एक साहित्यक भाषाओं का जन्म हुआ जो समय पाकर परिवर्तन से मुक्त हो स्थिर रूप हो गईं और अपने २ समय की तथा सदा परिवर्तन शील लोक-भाषाओं के साथ २ व्यवहृत होती रही हैं।

---

* भारतीय भाषाओं के अद्वितीय विद्वान् सर् जॉर्ज ग्रियर्सन का यह मन्तव्य है।

अध्याय दूसरा।

प्राकृतें।

पाली को छोड़कर प्रधान साहित्यक प्राकृतें ये हैं—

महा० = माहाराष्ट्री शौ० = शौरसेनी माग० = मागधी	नाटकीय प्राकृतें।
अमा० = अर्धमागधी जैम० = जैन महाराष्ट्री जैशौ० = जैन शौरसेनी	जैन साहित्य की प्राकृतें।

अप० = अपभ्रंश

नाटकीय प्राकृतें

माहाराष्ट्री सब से उत्तम प्राकृत गिनी जाती थी। महाकवि दण्डी अपने काव्यादर्श में लिखता है—महाराष्ट्राश्रया भाषा प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः (अ० १, श्लो० ३५) अर्थात् कवि लोग महाराष्ट्र देश में प्रचलित माहाराष्ट्री प्राकृत को सब से उत्तम मानते थे। प्राकृत व्याकरणों में सब से पहिले इसी का वर्णन रहता है। दूसरी प्राकृतों के विषय में उन के विशेष नियम देकर कह दिया जाता है 'शेषं माहाराष्ट्रीवत्" अर्थात् शेष माहाराष्ट्री की भांति जानो।

नाटकों के स्त्री पात्र बात चीत तो शौरसेनी में करते हैं परन्तु अपने गीत माहाराष्ट्री में गाते हैं। माहाराष्ट्री के गीत महाराष्ट्र देश की सीमा को लांघकर बहुत दूर तक प्रचलित हो गए थे।

इसी भाषा में "गउडवहो" आदि प्राकृत महाकाव्यों की रचना हुई है। दक्षिणी कवियों की इस भाषा में स्वर मध्यवर्ती व्यञ्जनों के लोप का नियम अन्य प्राकृतों की अपेक्षा अधिक लागू है [देखिये पेरा १०]। गीतों की साहित्यक भाषा में ऐसा होना स्वाभाविक बात है क्योंकि गीत में राग की मधुरता और रस प्रधान होते हैं। शब्दों या शब्दरूपों की परिच्छिन्नता गौण रहती है। यह भी नहीं समझना चाहिये कि माहाराष्ट्री केवल कवि कल्पित भाषा है। महाराष्ट्र देश की प्राचीन लोकिक भाषा इसका आधार भूत है, और इस की कई एक विशेषताएं ऐसी हैं जो आधुनिक मराठी में अब तक विद्यमान हैं।

शौरसेनी प्राकृत मध्यदेश की भाषा थी। इसका यह नाम इसलिये पड़ा कि यह मथुरा के आस पास शूरसेन देश में प्रचलित थी। संस्कृत नाटक की यह सामान्य प्राकृत है। स्त्रीपात्र और विदूषक इसी में सभाषण करते हैं। कर्पूरमञ्जरी में तो राजा भी इसी में बोलता है। औरों की अपेक्षा यह प्राकृत पाणिनीय संस्कृत से अधिक समान है। इस का विकास उसी देश में हुआ जिस में संस्कृत का, और यह भी उसी लोकिक भाषा की संतान है जो बहुत करके संस्कृत की आधार भूत है। इस प्रकार यह संस्कृत और हिन्दी [या पश्चिमी हिन्दी जो साहित्यक हिन्दी का आधार भूत है] के बीच एक मध्यम अवस्था को प्रकट करती है। परन्तु संस्कृत से अपनी घनिष्ठ समानता के कारण शौरसेनी कुछ दबी सी रही। इस पर संस्कृत का निरन्तर प्रभाव पड़ता रहा और यह स्वतन्त्रता से अधिक उन्नति न कर पाई।

मागधी पूर्व प्रान्त की प्राकृत है। इसका केन्द्र प्राचीन मगध देश था जिस से कुछ ही परे आजकल विहारी भाषा की "मगही" बोली बोली जाती है। नाटकों में मागधी को नीच पात्र बोलते हैं। मागधी की उपभाषाएं भी पाई जाती हैं। जैसे—मृच्छकटिक में ढक्की उपभाषा। वर्ण विकार में यह प्राकृत अन्य प्राकृतों से बहुत

भेद रखती है। इस में संस्कृत 'स' को 'श' और 'र' को 'ल' हो जाता है। 'य' यथास्थित रहता है बल्कि 'ज' का भी 'य' होजाता है। अकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों का प्रथमा एकवचन एकारान्त बनता है। [अन्य विशेषताओं के लिये देखिये अध्याय १०]। जहां और प्राकृतों में 'हत्थो' [सं० हस्त] रूप होता है वहां मागधी में 'हस्ते' रूप है। और प्राकृतों में "सो राआ" [सं० स राजा], मागधी में "शे लाआ"।

जैन प्राकृतें

प्राचीन जैन सूत्रों की रचना अर्धमागधी में हुई। यह प्राकृत शूरसेन और मगध के बीच (अवध के पास) के प्रदेश की लौकिक भाषा का साहित्यिक रूप है। इस का उच्चारण कुछ अंशों में मागधी से मिलता है। शौरसेनी की अपेक्षा इस के अन्दर पुराने व्याकरणिक रूप अधिक पाए जाते हैं और यह संस्कृत के प्रभाव से बहुत बची है।

श्वेतम्बर सम्प्रदाय के आगम-बाह्य ग्रन्थ माहाराष्ट्री के एक रूपान्तर में रचे हुए हैं। इस प्राकृत को जैन माहाराष्ट्री कहते हैं।

दिगम्बर सिद्धान्त ग्रन्थों की भाषा कितने ही अंशों में शौरसेनी से मिलती है, अत इसे जैन शौरसेनी कहते हैं।

अपभ्रंश

अपभ्रंश शब्द का प्रयोग भारतवर्ष में इन अर्थों में हुआ है—

(१) संस्कृत को शुद्ध और शिष्ट भाषा मानकर जो रूप भी उस से किसी अंश में भिन्न हो।

(२) साहित्यक प्राकृतों से पृथक् लौकिक भाषाओं के लिये चाहे वे आर्य हों या अनार्य।

(३) इन लौकिक भाषाओं के साहित्यक रूप के लिये।

व्याकरण ग्रन्थों में केवल एक ही साहित्यिक अपभ्रंश अर्थात् नागर अपभ्रंश का विस्तृत वर्णन मिलता है और वह गुजरात प्रान्त की दिखाई पड़ती है। विद्वानों का कहना है कि सिंध देश की ब्राचड अपभ्रंश भी इसी से मिलती जुलती थी। कभी २ प्रधान प्राकृतों के ढक्की आदि रूपान्तरों का अपभ्रंश शब्द से उल्लेख किया जाता है। जिन जिन प्रदेशों में प्रधान प्राकृत प्रचलित थीं अगर वहां बोली जाने वाली अपभ्रंशों में लेख, ग्रन्थ आदि कुछ सामग्री विद्यमान होती तो भारतीय भाषाओं के इतिहास की एक भारी त्रुटि पूर्ण होजाती। तथापि जो कुछ सामग्री मिलती है उस से अपभ्रंशों की उच्चारण तथा व्याकरण सम्बन्धी सामान्य प्रवृत्तियों को जान कर हम प्रधान प्राकृतों और आधुनिक भाषाओं के बीच के अंतर की पूर्ति कर सकते हैं। खोज करने पर अपभ्रंश के दिन प्रतिदिन नये नये ग्रन्थ मिलते जाते हैं और इन से हेमचन्द्र कृत व्याकरण में दिये हुए अपभ्रंश व्याकरण की वृद्धि हो रही है।

नाटक में भिन्न भिन्न प्राकृतों के प्रयोग पर प्राकृत साहित्य का वर्णन करते समय ग्यारहवें अध्याय में विचार किया जायगा। दूसरी छोटी प्राकृतों, पैशाची प्राकृतों तथा उत्कीर्ण लेखों में प्रयुक्त प्राकृतों के विस्तृत वर्णन तथा उन के परस्पर सम्बन्ध के विषय में प्राकृतों का वर्गीकरण करते समय दसवें अध्याय में विचार किया जायगा।

तीसरा अध्याय ।

प्राकृत के सामान्य लक्षण ।

प्राचीन भारती की भांति पाली और प्राकृत सश्लेशात्मक भाषाएं रहीं । परन्तु प्राचीन भारती की अपेक्षा इन की रूप रचना बहुत कुछ सरल हो गई थी । इन में विभक्ति तथा लकार रूपों की सख्या कम होती जाती थी । इतर वेदों की अपेक्षा ऋग्वेद में इन रूपों का बड़ा वैचित्र्य है । पाणिनीय सस्कृत में से कई एक रूप जो ब्राह्मण ग्रन्थों में पाए जाते थे लुप्त हो गए हैं । बहुत से ऐसे रूप जो गीत और नाटकीय माहाराष्ट्री तथा शोरसेनी में नहीं मिलते पाली और पुरानी अर्धमागधी में विद्यमान हैं । अतएव अपभ्रंश में प्राचीन रूप रचना के बचे खुचे रूपों के शीघ्र होनेवाले विनाश की सूचना मिलती है । समय आ रहा था जब कि प्राति पदिक के लगने वाले विभक्ति प्रत्ययों की सख्या केवल दो या तीन ही रह जाए और एक काल और दो कृदन्तों को छोड़ क्रिया के शेष रूप नष्ट हो जाएं । रूप रचना के इस प्रकार छिन्न भिन्न हो जाने से वाक्य का अर्थ सदिग्ध रहने लगा और इस अर्थ सदिग्धता को दूर करने के लिये नए उपायों की सृष्टि हुई और प्राचीन भाषा के अवशेषों से आधुनिक विश्लेषात्मक भाषाओं का जन्म हुआ ।

इतना सरल हो जाने पर भी शेष प्राकृत व्याकरण उसी ढंग का है जैसा कि सस्कृत व्याकरण । प्राकृत व्याकरण में सज्ञा, विशेषण और सर्वनाम की रूपरचना को समरूप बनाने की अर्थात् अकारान्त सज्ञा के रूपों के ढग पर लाने की एक बड़ी बलवान् प्रवृत्ति देखी जाती है । इसी प्रकार क्रिया की रूपरचना में भ्वादि गण के रूपों का अनुकरण देखा जाता है । सम्प्रदान कारक के रूप

लुप्त हो गए हैं। प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन रूप एक समान होते जाते हैं। प्राकृत की मझली अवस्था तक लङ्, लिट् और विविध प्रकार के लुङ् रूप लुप्त हो चुकते हैं। द्विवचन की आवश्यकता ही नहीं रहती। पुरानी प्राकृत के पश्चात् आत्मनेपदी रूप इक्के दुक्के ही बचे, और वे भी अपने आदिम अर्थ को छोड़ बैठे। ऐसा होने पर भी कारक और क्रिया का अर्थ स्पष्ट करने के लिये कारकाव्यय और सहायक क्रियाओं की अभी तक आवश्यकता नहीं पड़ी। साधारण बोल चाल तथा काव्य निर्माण के लिये आवश्यक सामग्री और शक्ति अपभ्रंश अवस्था तक प्राकृत में विद्यमान रही। महत्त्वशाली और सूक्ष्म विचारों को प्रकट करने के लिये संस्कृत को काम में लाने का रिवाज पड़ गया था। चूंकि पाली, अर्धमागधी और इतर जैन प्राकृतें अपने समय अथवा देश की प्रधान भाषा होने के पद को एक एक कर के खो बैठी थीं इस लिये वे इस रिवाज का सामना न कर सकीं और अंत में इन का स्थान संस्कृत ने छीन लिया।

उपर्युक्त सरलता के अतिरिक्त प्राकृत में जो और परिवर्तन हुए हैं वे प्रधानतया वर्णविकार अर्थात् उच्चारण से सम्बन्ध रखते हैं। संयुक्त व्यञ्जनों को प्राय समानादेश हो जाता है। "रक्त" शब्द का "रत्त" हो गया (जैसे लेटिन भाषा के "फ्रुक्तुस" Fructus शब्द का इटालियन भाषा में "फ्रुत्तो" Frutto), सप्त का सत्त हो गया (जैसे-लैटिन "सेप्तेम्" septem का इटालियन 'सेत्त' sette)। प्राचीन भारती के कई एक वर्णों का भी प्राकृत में सर्वथा अभाव हो गया है, जैसे—ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ऐ, औ, य, श, ष तथा विसर्ग। इन में से मागधी में य रहता है बलकि "ज" के स्थान में भी 'य' का आदेश हो जाता है। इतर कई प्राकृतों में जहां व्यञ्जन लोप से दो स्वर पास पास रह जाते हैं उन के मध्य 'य' का आगम होता है। 'श' केवल मागधी में रहता है और वहां ष, स के स्थान में भी श का आदेश हो जाता है। ह्रस्व ए, ओ (एॅ, ओॅ) ऐसे वर्ण हैं

जो प्राकृत में तो पाए जाते हैं परन्तु जो संस्कृत में व्यवहृत नहीं होते थे। पश्चात व्यञ्जनों का लोप हो जाता है। ह्रस्व* स्वर के पश्चात दो से अधिक व्यञ्जन और दीर्घ स्वर के पश्चात् एक से अधिक व्यञ्जन नहीं आ सकते थे।

[विस्तार के लिये देखिये अध्याय ४ तथा ५]

किसी २ शब्द पर इन सब परिवर्तनों का युगपत् ऐसा प्रभाव पड़ा है कि उसका रूप सर्वथा बदल गया है। "वष्पइराअ" शब्द झट से "वाक्पतिराज" का बोध नहीं कराता। 'ओअण्ण' शब्द "अवतीर्ण" से कितना भिन्न है। यद्यपि कुछ शब्द ऐसे हैं जो सर्वथा संस्कृत के सदृश हैं तथापि अधिक संख्या ऐसे शब्दों की है जो भली प्रकार संस्कृत जाननेवाले को अपने संस्कृत पर्याय का झट बोध करा देते हैं। यह बात न केवल शौरसेनी के विषय में किन्तु दूसरी प्राकृतों के विषय में भी सत्य है।

इस स्थिति को देखकर कहा जा सकता है कि पढ़े लिखे लोग इन विविध प्राकृतों को आपस में समझ लेते थे। जो पुरुष संस्कृत बोल सकता था उस की मातृभाषा इन प्राकृतों में से किसी एक का लौकिक रूप होती थी और वह सब प्रकार की साहित्यिक प्राकृतों को आसानी के साथ समझ सकता था। संस्कृत को न भी जानने वाला पुरुष जो शौरसेनी भाषी होता था बहुत से संस्कृत शब्दों को झट समझ लेता था और संस्कृत वाक्य का स्थूल अर्थ भी ग्रहण कर लेता था। पुरानी अवस्था में तो यह भेद और भी कम था। अगर हम और भी पीछे जाएं तो यह भेद केवल इतना ही रह जाता है जितना शुद्ध और अशुद्ध उच्चारण में होता है, अथवा व्याकरण सिद्ध और असिद्ध रूपों में, अथवा सर्वसम्मत शिष्ट और

---

* ह्रस्व ए ओ को प्रकट करने के लिये देवनागरी में कोई चिह्न नहीं। सर् जार्ज ग्रियर्सन ने उलटे ए, तथा 'ओ' की उलटी मात्रा का प्रयोग किया है। देखिये 'हिन्दुस्तानी" जनवरी सन् १९३१ पृष्ठ ११० [अनुवादक]।

ग्रामीण भाषा में। यह भेद ऐसा है जो प्रायः एक ही भाषा बोलने वाले पढ़े हुए और अनपढ़ लोगों की बोली में हुआ करता है।

यद्यपि इस अवस्था में भी भेद तो पाया जाता था परन्तु नवीन भाषा ने अभी स्वतन्त्र रूप धारण नहीं किया था। अभी यह इतनी विलक्षण नहीं बन गई थी कि पृथक् भाषा बनकर अपना ही व्याकरण और साहित्य खड़ा कर देती।

प्राकृत प्रवृत्ति के चिह्न तो ऋग्वेद में भी पाए जाते हैं अर्थात् कई शब्दों में ठीक उसी प्रकार का वर्णविकार हुआ है जो आगे चलकर प्राकृतों में देखा जाता है। जैसे—श्रथ् धातु का सम्प्रसारण करके श्रृथिर रूप बनना चाहिये था परन्तु ऋग्वेद में शिथिर (ऋ को इ आदेश करके जो प्राकृत में प्रायः होता है) पाया जाता है। इस प्रकार के उदाहरणों से यह तो अनुमान नहीं करना चाहिये कि छन्दों की भाषा और तत्कालीन साधारण बोल चाल की भाषा में कुछ अधिक भेद था, बल्कि छन्दों की भाषा में प्राकृत प्रवृत्ति के चिह्न इस बात की सूचना करते हैं कि ऋषि लोग इन रूपों को छन्दोभाषा के ही रूपान्तर समझते थे और उन्हें दोनों प्रकार की भाषा (अर्थात् छन्दोभाषा और साधारण बोल चाल की भाषा) में किसी अन्तर की प्रतीति न होती थी।

यूरोप की रोमक भाषाओं के इतिहास और आर्य भारती के इतिहास में आश्चर्यजनक समानता पाई जाती है। प्राचीन इटालिक की कई बोलियां थीं जिन में से लेटिन जाति की बोली ने मुख्य पद प्राप्त किया। इस तरह लैटिन पहिले सारे इटली देश की और फिर समग्र रोम राज्य की प्रधान भाषा बन गई। यह मध्यम युग में (आठवीं से पदरहवीं शताब्दी तक) ईसाई धर्म की सब से बड़ी सम्प्रदाय की भाषा बनी और जब तक यूरोप की आधुनिक भाषाओं ने अपना आधिपत्य न जमा लिया तब तक विज्ञान और दर्शन की भाषा बनी रही। जिस प्रकार भारतवर्ष में भिन्न २ प्रान्तों के शिक्षित

लोगों की सांझी भाषा संस्कृत थी इसी प्रकार यूरोप में चिरकाल तक लैटिन सांझी भाषा रही।

इस के अतिरिक्त धार्मिक भाषा होने के कारण पादरी लोग सर्वदा लैटिन बोलते थे। साधारण लोग भी इसके कतिपय वाक्य याद कर लेते थे। उस समय का वैद्य या अध्यापक चाहे कितना ही थोड़ा क्यों न पढ़ा हो, कुछ न कुछ लैटिन बोलने की चेष्टा ज़रूर करता था। वर्णविकार और अनुरूपता आदि ने प्राचीन व्याकरण को इतना सरल बना दिया कि आखिरकार अर्थ में सन्देह मिटाने के लिये कारकाव्यय और सहायक क्रिया का प्रयोग करना पड़ा।

इस बात पर भी कुछ विचार किया गया है कि उन परिवर्तनों का जो आर्य भारती की प्राकृत अवस्था में दिखाई देते हैं क्या कारण था। बोलने में श्रमलाघव, नगरों तथा राज सभाओं द्वारा भाषा का उत्तरोत्तर सम्मार्जन, गरम जल वायु का शैथिल्योत्पादक प्रभाव, जिन अनार्य जातियों ने आर्य भाषा को अपनाया उन की अपनी बोली का प्रभाव—ये सब कारण भारत तथा यूरोप में काम करते रहे होंगे।



चौथा अध्याय ।

वर्णविकार ।

असंयुक्त व्यञ्जन ।

§ १—आदिम । साधारण नियम यह है कि न्, य्, श् और ष् को छोड़कर शब्द के आदिम असंयुक्त व्यञ्जन में कोई परिवर्तन नहीं आता । परन्तु—

न् का ण् हो जाता है (देखिये पेरा ७) । य् का ज् हो जाता है (मागधी के सिवाय) जधा=यथा (माग० यधा), जइ=यदि, शौ० जदि, (माग० यइ, यदि), जोगी=योगी । श् और ष् का स् हो जाता है (पेरा ८) ।

§ २—जब असंयुक्त व्यञ्जन किसी समास के दूसरे या तीसरे शब्द की आदि में हो तो प्राय उस में वही विकार आता है जो स्वर मध्यवर्ती असंयुक्त व्यञ्जन में आता है । बहुधा उपसर्ग के परे धातु के आदि व्यञ्जन में कोई परिवर्तन नहीं आता—पुत्त=पुत्र, परन्तु आर्यपुत्र से अज्जउत्त बनता है । महा० पआसेइ=प्रकाशयति शौ० आअद वा आगद=आगतम् (महा० आअअ वा आगअ) ।

§ ३—निपातों की भी यही दशा है । किं उण=किं पुन, वि=(अ)पि; अ=च । तावत् और ते (सर्वनाम मध्यम ६१) के आदि त् को शौ० और माग० में स्वर मध्यवर्ती त् की भांति द् हो जाता है । मा दाव=मा तावत्; ण दे=न ते, पिदुणो दे=पितुस्ते, तदो दे=ततस्ते ।

§ ४—कई प्राकृतों में "भू" धातु से व्युत्पन्न शब्दों में भ् का ह् हो जाता है ।

लोगों की साक्षी भाषा संस्कृत थी इसी प्रकार यूरोप में चिरकाल तक लैटिन साक्षी भाषा रही।

इसके अतिरिक्त धार्मिक भाषा होने के कारण पादरी लोग सर्वदा लैटिन बोलते थे। साधारण लोग भी इसके कतिपय वाक्य याद कर लेते थे। उस समय का वैद्य या अध्यापक चाहे कितना ही थोड़ा क्यों न पढ़ा हो, कुछ न कुछ लैटिन बोलने की चेष्टा ज़रूर करता था। वर्णविकार और अनुरूपता आदि ने प्राचीन व्याकरण को इतना सरल बना दिया कि आख़िरकार अर्थ में सन्देह मिटाने के लिये कारकाव्यय और सहायक क्रिया का प्रयोग करना पड़ा।

इस बात पर भी कुछ विचार किया गया है कि उन परिवर्तनों का जो आर्य भाषा की प्राकृत अवस्था में दिखाई देते हैं क्या कारण था। बोलने में श्रमलाघव, नगरों तथा राज सभाओं द्वारा भाषा का उत्तरोत्तर सम्मार्जन, गरम जल वायु का शैथिल्योत्पादक प्रभाव, भिन्न अनार्य जातियों ने आर्य भाषा को अपनाया उन की अपनी बोली का प्रभाव—ये सब कारण भारत तथा यूरोप में काम करते रहे होंगे।

चौथा अध्याय।

वर्णविकार।

असंयुक्त व्यञ्जन।

§ १—आदिम। साधारण नियम यह है कि न्, य्, श् और ष् को छोडकर शब्द के आदिम असयुक्त व्यञ्जन में कोई परिवर्तन नहीं आता। परन्तु—

न् का ण् हो जाता है (देखिये पेरा ७)। य् का ज् हो जाता है (मागधी के सिवाय) जधा=यथा (माग० यधा), जइ=यदि, शौ० जदि, (माग० यइ, यदि), जोगी=योगी। श् और ष् का स् हो जाता है (पेरा ८)।

§ २—जब असयुक्त व्यजन किसी समास के दूसरे या तीसरे शब्द की आदि में हो तो प्राय उस में वही विकार आता है जो स्वर मध्यवर्ती असयुक्त व्यञ्जन में आता है। बहुधा उपसर्ग के परे धातु के आदि व्यञ्जन में कोई परिवर्तन नहीं आता—पुत्त=पुत्र, परन्तु आर्यपुत्र से अज्जउत्त बनता है। महा० पआसेइ=प्रकाशयति शौ० आअद वा आगद=आगतम् (महा० आअअ वा आगअ)।

§ ३—निपातों की भी यही दशा है। किं उण=किं पुन, वि=(अ)पि, अ=च। तावत् और ते (सर्वनाम अध्यम ६१) के आदि त् को शौ० और माग० में स्वर मध्यवर्ती त् की भाति द् हो जाता है। मा दाव=मा तावत्, ण दे=न ते, पिदुणो दे=पितुस्ते, तदो दे=ततस्ते।

§ ४—कई प्राकृतों में "भू" धातु से व्युत्पन्न शब्दों में भ् का ह् हो जाता है।

लोगों की साभी भाषा संस्कृत थी इसी प्रकार यूरोप में चिरकाल तक लैटिन साभी भाषा रही।

इस के अतिरिक्त धार्मिक भाषा होने के कारण पादरी लोग सर्वदा लैटिन बोलते थे। इस कारण लोग भी इसके कतिपय वाक्य याद कर लेते थे। उस समय का वैद्य या अध्यापक चाहे कितना ही थोड़ा क्यों न पढ़ा हो, कुछ न कुछ लैटिन बोलने की चेष्टा जरूर करता था। वर्णविकार और अनुरूपता आदि ने प्राचीन व्याकरण को इतना सरल बना दिया कि आखिरकार अर्थ में सन्देह मिटाने के लिये कारकाव्यय और सहायक क्रिया का प्रयोग करना पड़ा।

इस बात पर भी कुछ विचार किया गया है कि उन परिवर्तनों का जो आर्य भारती की प्राकृत अवस्था में दिखाई देते हैं क्या कारण था। बोलने में श्रमलाघव, नगरों तथा राज सभाओं द्वारा भाषा का उत्तरोत्तर सम्मार्जन, गरम जल वायु का शैथिल्योत्पादक प्रभाव, जिन अनार्य जातियों ने आर्य भाषा को अपनाया उन की अपनी बोली का प्रभाव—ये सब कारण भारत तथा यूरोप में काम करते रहे होंगे।

चौथा अध्याय।

वर्णविकार।

असंयुक्त व्यञ्जन।

§ १—आदिम। साधारण नियम यह है कि न्, य्, श् और ष् को छोड़कर शब्द के आदिम असंयुक्त व्यञ्जन में कोई परिवर्तन नहीं आता। परन्तु—

न् का ण् हो जाता है (देखिये पैरा ७)। य् का ज् हो जाता है (मागधी के सिवाय) जधा=यथा (माग० यधा), जइ=यदि, शौ० जदि, (माग० यइ, यदि), जोगी=योगी। श् और ष् का स् हो जाता है (पैरा ८)।

§ २—जब असंयुक्त व्यञ्जन किसी समास के दूसरे या तीसरे शब्द की आदि में हो तो प्राय उस में वही विकार आता है जो स्वर मध्यवर्ती असंयुक्त व्यञ्जन में आता है। बहुधा उपसर्ग के परे धातु के आदि व्यञ्जन में कोई परिवर्तन नहीं आता—पुत्त=पुत्र, परन्तु आर्यपुत्र से अज्जउत्त बनता है। महा० पआसेइ=प्रकाशयति शौ० आअद या आगद=आगतम् (महा० आअअ या आगअ)।

§ ३—निपातों की भी यही दशा है। किं उण=किं पुन, वि=(अ)पि, अ=च। तावत् और ते (सर्वनाम मध्यम ६१) के आदि त् को शौ० और माग० में स्वर मध्यवर्ती त् की भांति द् हो जाता है। मा दाव=मा तावत्, ण दे=न ते, पिदुणो दे=पितुस्ते, तदो दे=ततस्ते।

§ ४—कई प्राकृतों में "भू" धातु से व्युत्पन्न शब्दों में भ् का ह् हो जाता है।

महा० होइ=भवति [शौ० भोदि]।

शौ० हविस्सदि, माग० हविश्शदि=भविष्यति, शौ०, माग० होदव्व=भवितव्य।

§ ५—कभी २ प् जब समस्त पद के दूसरे शब्द के आदि में हो तो वैसा ही रहता है।

शौ० चित्तफलअ=चित्रफलक, बहुफल, सफल।

§ ६—महाप्राण विधि।

ग के स्थान में घ घुञ्ञ=गुञ्जः √घेल=√गृह्। [संस्कृत में भी "लेते, देते" के अर्थ में घेल् धातु रामायण में मिलता है। यह घेल् संस्कृत में प्राकृत से लिया गया है]

प के स्थान में फ—शौ० फणस, महा० पणस=पनस "एक प्रकार का फल" श, ष, का महाप्राण छ् हो जाता है। जैसे अमा० छाव, पा० छाप=शाव या शाप। महा० अमा० छ-पद छट्ठ=षष्ठ।

§ ७—उच्चारण के स्थान परिवर्तन के उदाहरण।

दन्त्य के स्थान में तालव्य—महा० चिट्ठइ, शौ० चिट्ठदि, माग० चिष्ठदि=तिष्ठति।

दन्त्य के स्थान में मूर्धन्य—महा० ढक्क=ध्वाङ्क्ष 'काक'।
न् के स्थान में ण—णूण=नूनम्, णअण=नयन।

§ ८—श ष, स—इन तीनों के स्थान में दन्त्य स् हो जाता है। [परन्तु मागधी में तालव्य श् होता है]।

§ ९—स्वरमध्यवर्ती व्यञ्जन। स्वरमध्यवर्ती क्, ग्, च्, ज्, त्, द् का प्रायः लोप हो जाता है।

महा० लोअ=लोक, सअल=सकल, अणुराअ=अनुराग, जुअल=युगल, णअर=नगर, पउर=प्रचुर, भोअण=भोजन, रसाअल=रसातल, हिअअ=हृदय।

का सर्वदा लोप होता है।

विओग=वियोग, पिअ=प्रिय।

नोट—लुप्त व्यञ्जन के स्थान में य् का उच्चारण होता था जिस का प्रयत्न बहुत लघु होता था (लघुप्रयत्नतर-यकार)। यह यकार संस्कृत और मागधी के यकार की अपेक्षा बहुत कम श्रुति गोचर होता था और लिखने में प्रकट नहीं किया जाता था परन्तु जैन लिपिकार अपने ग्रन्थों में इसे प्रकट करते थे। यथा—अमा० हियय=हृदय।

§ १०—स्वरमध्यवर्ती असंयुक्त व्यञ्जनों को लोप करने का नियम गीतों की महाराष्ट्री में बहुत लागू हुआ जिसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि अर्थों में अस्पष्टता आ गई। कइ शब्द कति, कवि या कपि का रूप हो सकता है। उअअ (=उदक) आदि शब्द स्वरों की लड़ी से रह गये हैं और मूल शब्द का सब स्वरूप खो बैठे हैं। व्यञ्जनों का यह लोप इस बात को प्रकट करता है कि अंग्रेजी भाषा के व्यञ्जनों की अपेक्षा भारती व्यञ्जन बहुत निर्बल थे। प्रतिदिन व्यवहार म आने वाली भाषायें कुछ सुरक्षित रहीं। हेम चन्द्र के कथनानुसार अपभ्रंश में स्वरमध्यवर्ती "क्, त्, प्" का लोप नहीं हुआ किन्तु ये क्रम से "ग्, द्, ब्," बन गए। अप० णाअगु=नायक, आगदो=आगत, सभलउ=सफलकम्। किसी २ प्राकृत शब्द में भी यह परिवर्तन मिलता है। प्राचीन प्राकृत में (जैसे पाली में) क्, त्, प्, वैसे ही रहते हैं अथवा कभी ग्, द्, ब बन जाते हैं। सागल=साकल।

§ ११—उदाहरण—

शौरसेनी-अदिधि=अतिथि, कधेदु=कथयतु, पारिदोसिअ= पारितोषिक, भोदि=भवति, कधिदो=कथित, किराद=किरात,

आणेदि=आनयति, तदो=तत, किदु=कृत, गदु=गत, सगदु=सरस्वत, सरस्सदी=सरस्वती।

मागधी—पालिदोशिग्र=पारितोषिक, शागदं=स्वागतम्, हगे=*अहक जो अहम् शब्द से बना है। अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री—असोग=अशोक, लोग=लोक, आगास=आकाश।

पाली—लोक गच्छति, रूप।

§ १२—स्वरमध्यमवर्ती 'त्' का यह विकार नाटकीय शौरसेनी और महाराष्ट्री में एक लाक्षणिक भेद है—

शौरसेनी	महाराष्ट्री	संस्कृत
जाणादि	जाणाइ	जानाति
पदि	पइ	पति
हिद	हिअ	हित
पाउद	पाउअ	प्राकृत
मरगद	मरगअ	मरकत
लदा	लआ	लता
ठिद	ठिअ	स्थित
पहुदि	पहुइ	प्रभृति
सद	सअ	शत
एद	एय	एतद्

§ १३—स्वरमध्यवर्ती ख्, घ्, थ्, ध्, फ्, और भ्, को प्राकृत में प्राय ह्, हो जाता है। यथा—मुह=मुख, सही=सखी, मेह=मेघ, लहुअ=लघुक, जूह=यूथ, रुहिर=रुधिर वहू=वधू, सहर=शफर, अहिणव=अभिनव, णह=नभस या=(नभ)।

§ १४—यहां भी शौरसेनी, मागधी तथा अन्य कई उप प्राकृतें अघोष थ् के स्थान में ध् का आदेश करती हैं। यथा—

शौ० अदिधि, कधेदु, तधा, अध, जधा=यथा। माग० यधा=यथा, तधा। (पाली में अघोष थ्, बना रहता है। यथा—अथ, यथा, तथा)।

शौरसेनी और माहाराष्ट्री में यह एक और लाक्षणिक भेद है। यथा—

शौरसेनी	माहाराष्ट्री	संस्कृत
अध	अह	अथ
मणोरध	मणोरह	मनोरथ
कधं	कह	कथम्
णाध	णाह	नाथ

§ १५—किसी २ शब्द में स्वरमध्यवर्ती व्यञ्जन लोप होने (§६) अथवा ह् बनने (§ १३) के स्थान में द्विर्भाव को प्राप्त होजाता है। यथा—शौ० उज्जु=ऋजु, माह० णक्ख=नख, माह० शौ० एक्क=एक।

नोट १—दूसरे व्यञ्जन भी द्विर्भाव को प्राप्त होते हैं। यथा—जोव्वण=यौवन, तेल्ल=तेल, पेम्म=प्रेमन्।

नोट २—द्विर्भूत व्यञ्जन के पूर्ववर्ती स्वर सदा ह्रस्व होता है। यहां ए, ओ ह्रस्व स्वर हैं (§ ६८)।

नोट ३—महाप्राण व्यञ्जन का द्विर्भाव करते समय उस के पूर्व तत्स्थानीय अल्पप्राण रक्खा जाता है। यथा—क्ख, ग्घ आदि।

कई एक पुस्तकों में महाप्राण व्यञ्जन को ही दो बार लिखते हैं। यथा—खख, छछ आदि। यह केवल लिपि भेद है, उच्चारण वही अर्थात् क्ख, ग्घ, च्छ आदि है।

§ १६—ट, ठ का प्राकृत में ड, ढ हो जाता है। पड=पट, पडाअ=पटाक, कुडिल=कुटिल, कुडुम्ब=कुटुम्ब, वड=वट, पढण=पठन। किसी २ शब्द में ट का ड् बनकर फिर ड् का ळ् हो जाता

है (§ २२)। माह० घकोळ=कर्कोट, माग० शअड=शकट (शौ० सअड); माग० यूळक=जूटक (शौ० जूडअ)

§ १७—यदि प् का लोप न हुआ हो तो उसका व् बन जाता है। यथा—रूव=रूप, दीव=दीप (हिं० दीवाली), उवरि=उपरि, उवअरण=उपकरण, उवज्झाअ=उपाध्याय (हिं० ओझा), अवि=अपि, अवर=अपर (हिं० और), ताव=ताप।

§ १८—ब् का व् बन जाता है। यथा—कविल=कपिल, सवर=शबर।

§ १९—महाप्राण विधि। किसी किसी प्राकृत शब्द में संस्कृत क् का ख् हो जाता है (§ ६)। शब्द के मध्य में फिर इस ख् का ह् हो जाता है। यथा—माह० णिहस=निकष, माह० शौ० फलिह=स्फटिक। ट् का ठ् होकर ढ् बन जाता है। यथा—

अमा० वढ=वट। त् का थ् होकर ह् बन जाता है। यथा-माह० भरह=भरत, वसहि=वसति। प् का फ होकर भ् बन जाता है। यथा—अमा० थच्छुभ=स्च्छप।

कभी २ न्, म्, ल् भी महाप्राण बन जाते हैं। यथा-माह० ण्हाविअ (शौ० माग० णाविद)=नापित। वास्तव में ण्हाविअ शब्द स्ना धातु से व्युत्पन्न स्नापित शब्द से बना है।

अमा० ल्हसुण (कभी लसुण भी)=लशुन (देखिये § ३०)। कभी महाप्राणत्व का व्यत्यय हो जाता है। जैसे—माह० दिहि=धृति (धृति का पहिले दिधि बना, फिर दिधि का दिहि हो गया) माह० धूआ, शौ० माग० धूदा=दुहिता, शौ० माग० बहिणी=भगिनी माह० घेत्तुं=ग्रहीतुम् (*घृप्तुम्)।

कभी किसी वर्ण के महाप्राणत्व का लोप होजाता है। जैसे—शौ० सकला=श्टङ्खला, परन्तु सग्खला और सिंखला रूप भी पाए जाते हैं।

§ २०—उच्चारण स्थान का परिवर्तन।

दन्त्य के स्थान मे मूर्धन्य—

पडि=प्रति, माह० पडिअ, शौ० माग० पडिद्=पतित, पढम=प्रथम।

इस प्रकार की मूर्धन्यविधि के अर्धमागधी में बहुत उदाहरण मिलते हैं। जैसे—ओसढ=औषध (माह० शौ० ओसह)। कई प्राकृतों में न् का नियम पूर्वक ण् हो जाता है जैसे—णूण, णअण।

§ २१—ऊष्म। सस्कृ के तीनों ऊष्म अर्थात् श, ष् और स् प्राकृत में स् हो जाते हैं (केवल मागधी में सब के स्थान में श हो जाता है)। जैसे—माह० शौ० असेस=अशेष, माग० केशेशु=केशेषु (शौ० माह० केसेसु)।

§ २२—ड के स्थान में कई वार ळ् हो जाता है। जैसे—माह० गरुळ=गरुड (शौ० गरुड, माग० गलुड), माह० शौ० कीळा=क्रीडा।

उत्तर भारतवर्ष में मुद्रित तथा लिखित पुस्तकों में ळ् के स्थान में ल् ही व्यवहृत होता है।

§ २३—किसी २ शब्द में त् और द् को ल् अथवा ळ हो जाता हैं। जैसे—शौ० अलसी=अतसी, माह० सालवाहण=सातवाहन, माह० शौ० दोहळ=दोहद।

§ २४—ऐसे विशेषण और सर्वनाम शब्दों में द् का र् हो जाता है जिन के अन्त में दृश्, दृश, दृक्ष हो *। जैसे—एरिस-ईदृश

* सख्या वाची सयुक्त शब्दों में दश के द् का र् हो जाता है। जैसे—एआरस, बारस, तेरस। परतु चउद्दस, सोलस में नहीं होता। (अनुवादक)

(शौ० ईदिस मी), केरिस, अम्हारिस, तुम्हारिस सरिस।

§ २५—किसी २ प्राकृत में म् का व् हो जाता है। जैसे—माह० वम्मह=मन्मथ (परन्तु शौ० मम्मध), महा० ओणविअ=अवनत (? अवनमित)।

यह विकार अपभ्रंश में बहुधा पाया जाता है और पूर्ववर्ती स्वर अथवा अन्तस्थ वर्ण को अनुनासिक कर देता है। तब अन्तस्थ अथवा अनुनासिकता का लोप हो जाता है। जैसे—अप० कँवल=कमल, जँउणा=यमुना गुणँ=गमन्ति। इस विकार के उदाहरण माहाराष्ट्री में भी मिलते हैं। जैसे—चाँउण्डा=शौ० चामुण्डा।

इसी विकार के आधार पर आधुनिक भाषाओं के शब्द कुवर=सं० कुमार, गाँव=सं० ग्राम (पाली, प्रा० गाम) आदि रूप बनते हैं।

§ २६—मागधी में र् का सदा ल् हो जाता है परन्तु इतर प्राकृतों में ऐसा कभी २ होता है। जैसे—माह० शौ० दलिद्द=दरिद्र, मुहल=मुखर।

यह विकार माह० और शौ० की अपेक्षा अर्धमागधी में अधिक मिलता है।

§ २७—कभी किसी विशेष प्राकृत में अथवा विशेष शब्द गण में श्, ष्, स् का ह् हो जाता है। जैसे—माह० धणुह=धनुस् (धनुष), माह० पच्चूह=प्रत्यूष (अथ बालातप), जब अर्थ प्रभात हो तब पच्चूस रूप बनता है। माह० पाहाण=पाषाण, माह० अणुदिअह (शौ० अणुदिवस)=अनुदिवसम्।

भविष्यत् क्रिया के रूपों में। जैसे—माह० णेहिइ=नेष्यति, अमा० गाहिइ=गास्यति, जैमा० पाहामि=पास्यामि, अमा० गमिहिइ=गमिष्यति।

षष्ठी एकवचन के रूपों में। जैसे माग० कामाह=कामस्य, अप० कव्वह=काव्यस्य।

कुछ सर्वनाम के रूपों में। जैसे—अप० एहो=एष, प्रा० तुम्हे=युष्मे, माह० ताह, ताम, तस्स=तस्य, कभी तस्सि के स्थान में तहिं=तस्मिन्।

यह विकार अपभ्रंश में बहुत अधिक है और इसके द्वारा अर्वाचीन संज्ञा और क्रिया की रूपरचना में कई एक रूपों का समाधान होता है। इस विकार का इतिहास तथा प्रभावक्षेत्र अभी तक निर्णीत नहीं हुआ।

§ २८—कभी २ संस्कृत ह् के स्थान में प्राकृत में घ् आदि महाप्राण व्यञ्जन मिलते हैं। जैसे—शौ० माग० इध, माह० इह=इह (पाली में भी इध है)। यहां शौरसेनी रूप अधिक प्राचीन है। कई वार संस्कृत ह् का मूल घोष महाप्राण व्यञ्जन होता है जैसे देखिये—हन्ति, अघ्नन्, जघान।

§ २९—अन्तिम व्यञ्जन। अन्तिम स्पर्शों का लोप हो जाता है परन्तु अन्तिम नासिक्य का अनुस्वार बन जाता है। अकार के परे विसर्ग हो तो दोनों का ओ हो जाता है (अः=ओ)। किसी दूसरे स्वर के परे विसर्ग का लोप हो जाता है। कभी २ अन्तिम स्वर को अनुनासिक कर देते हैं। समस्त पदों के अन्तिम व्यञ्जनों के विकार के लिये देखिये सन्धि विषय अध्याय ७।

अध्याय पांचवां।

संयुक्त व्यञ्जन।

§ ३०—पद के आदि में केवल एक ही (असंयुक्त) व्यञ्जन आ सकता है।

अपवाद—

१ राह। जैसे—राहाणु=ञ्णाग।

२ म्ह। जैसे—म्हि=अस्मि, म्हो म्हे=स्म।

३ समस्त पद में द्वितीय शब्द के आदि में।

नोट - यदि राह, म्ह को संयुक्त व्यञ्जन न मानकर ण् और म् के महाप्राण रूप समझें तो ये अपवाद न रहेंगे।

बहुत सी भाषाओं में देखा जाता है कि उनके अन्तिम व्यञ्जन अस्पष्ट होते हैं और अन्तिम स्पर्श अभिनिहित रहते हैं अर्थात् उन को उच्चारण करने में स्थान और करण का स्पर्श खोला नहीं जाता। इस अवस्था में अघोष स्पर्श केवल मौनरूप और घोष स्पर्श केवल अस्पष्ट नाद हो जाते हैं। कुछ काल पीछे स्पर्श प्रयत्न भी जाता रहता है और इस प्रकार अभिनिहित स्पर्श का लोप ही हो जाता है। नासिक्य व्यञ्जन का नाद अधिक बलवान् होने के कारण बचा रहता है।

§ ३१—शब्द के मध्य में कोई संयुक्त व्यञ्जन दो वर्णों से अधिक का नहीं होता, वह भी—

(१) द्विभूत होना चाहिये जैसे क्क, क्ख, ग्ग, ग्घ आदि।

(२) नासिक्य व्यञ्जन के परे तत्स्थानीय स्पर्श जैसे—ङ्क ङ्ग आदि अथवा

(३) राह, म्ह, रह अर्थात् महाप्राण ण्, म्, ल्।

§ ३२—इस कारण संयुक्त अक्षर या तो समानादेश को प्राप्त होते हैं या स्वर भक्ति द्वारा पृथक् पृथक् होजाते हैं।

§ ३३—समानादेश का साधारण नियम यह है कि तुल्य बल वालों में द्वितीय व्यञ्जन के सदृश, और अतुल्य बल वालों में बल वत्तर के सदृश आदेश होता है।

बल की अपेक्षा व्यञ्जन इस प्रकार विभक्त किये जा सकते हैं।

(१) प्रत्येक वर्ग के प्रथम चार व्यञ्जन। (सब से अधिक बलवान्)

(२) नासिक्य व्यञ्जन। (न० १ से उतर कर)

(३) ल, स्, ष्, य्, र् यथाक्रम। (न० २ से उतर कर)

ह् का स्थान विलक्षण है (§ ५२—५४)

§ ३४—दो स्पर्श। उपर्युक्त नियमानुसार क्+त् का त्त, ग्+ध् का द्ध, द्+ग् का ग्ग आदि हो जाते हैं।

उदाहरण—जुत्त=युक्त, वप्पइराअ=वाक्पतिराज, दुद्ध=दुग्ध, छ्चरण=षट्चरण (§ ६), खग्ग=खड्ग, बलक्कार=बलात्कार, उप्पल=उत्पल, उग्गम=उद्गम, सब्भाव=सद्भाव, सुत्त=सुप्त, खुज्ज=कुब्ज (§ ६), सद्द=शब्द, लद्ध=लब्ध।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि जब किसी संयुक्त अक्षर में दो स्पर्श इकट्ठे आवें तो उनमें पहले को दूसरे का समानादेश हो जाता। है। इस आदेश का समाधान यह है कि पहले स्पर्श का उच्चारण अभिनिहित होता था।

§ ३५—यदि नासिक्य व्यञ्जन के परे तत्स्थानीय स्पर्श हो तो वह नासिक्य व्यञ्जन बना रहता है और यदि उसके परे अन्य स्थानीय स्पर्श हो तो वह अनुस्वार बन जाता है। जैसे—सङ्खल=शृङ्खल, कौञ्च=क्रौञ्च, कण्ठ, मन्थर, जम्बू; परन्तु दिंमुह=दिङ्मुख, पंति=पङ्क्ति, विंझ=विन्ध्य (§ ४४)

§ ३६—यदि स्पर्श के परे नासिक्य व्यञ्जन हो तो नासिक्य को

स्पर्श का समानादेश होता है। जैसे—अग्गि=अग्नि, विग्ग=विघ्न, सवत्ती=सपत्नी, जुग्ग=युग्म।

अपवाद—

(१) ज्ञ का एण हो जाता है। जएण=यज्ञ, अणहिएण=अनभिज्ञ, आणवेदि=आज्ञापयति।

नोट—कभी समास में ज्ञ का ञ्ञ भी बन जाता है। जैसे—मणोञ्ञ=मनोज्ञ।

हेमचन्द्र के मतानुसार मागधी में ज्ञ का ञ्ञ बनता है (प्राकृत व्याकरण पाद ४, सू० २९३)।

(२) माहाराष्ट्री में प्राय करके, और अपभ्रंश में सर्वदा आत्मन् का अप्प रूप बनता है जिससे हिं० आप निकलता है। और प्राकृतों में से किसी में अप्प, किसी में अत्त होता है।

(३) द्म का म्म हो जाता है—पोम्म=पद्म (पउम रूप भी बनता है § ५७)।

§ ३७—ल् वाले संयुक्त स्पर्श में ल् को स्पर्शादेश हो जाता है। जैसे-वक्कल=वल्कल, फग्गुण=फल्गुन, अप्प=अल्प, कप्प=कल्प, (अपवाद-जल्प् धातु को जम्प् अथवा जप्प् आदेश होता है), पवग=प्लवग।

§ ३८ -स्पर्श तथा ऊष्म का संयोग। इस में स्पर्श अघोष ही हो सकता है। जब ऊष्म पहिले हो तो इसे स्पर्शादेश होकर दोनों स्पर्श महाप्राण बन जाते हैं। जैसे—स्त का त्थ हो जाता है। लेकिन अगर ऊष्म किसी समास में प्रथम शब्द का अन्तिम वर्ण हो और स्पर्श दूसरे शब्द का आदि वर्ण, तो स्पर्श का महाप्राण बन जाना जरूरी नहीं, खासकर जब कि पहिला शब्द दुस् आदि कोई उपसर्ग हो।

श्च का च्छ हो जाता है। अच्छरिअ=आश्चर्य, पच्छा=पश्चात्, परन्तु निश्चल=निश्चल, दुघरिअ=दुश्चरित।

(मागधी में श्च वैसा ही रहता है, माग० निश्चल)।

ष्क और ष्प को क्ख हो जाता है। शौ० पोक्खर=पुष्कर, सुक्ख=शुष्क, इस शब्द में प्राय महाप्राणत्व नहीं होता। [प्रा० सुक्क; देखिये पजा० सुक्का। अनुवादक] माह० चउक्क, शौ० चदुक्क=चतुष्क, माह० शौ० दुक्कर=दुष्कर, √णिक्कम्=√निष्कम् आदि।

ष्ट और ष्ठ का ट्ठ हो जाता है। दिट्ठि=दृष्टि, सुट्ठु=सुष्ठु। (अपवाद—वेढ√वेष्ट्,परन्तु देखिये पाली वेठति)।ष्प और ष्फ का प्फ हो जाता है। पुप्फ=पुष्प, णिप्फल=निष्फल।

स्त और स्थ का त्थ हो जाता है। थण=स्तन अत्थि=अस्ति, हत्थ=हस्त, अवत्था=अवस्था, काअत्थअ=कायस्थक। उपसर्ग दुस्—दुत्तर=दुस्तर। कभी त्थ को मूर्धन्यविधि होजाती है। माह० शौ० अट्ठि=अस्थि।—स्था धातु में कभी त्थ और कभी ट्ठ होता है। शो० थिद, ठिद, माह० थिअ, ठिअ=स्थित, माह० शौ० ठाण (माह० कभी थाण भी)=स्थान, शौ० थिदि, ठिदि, माह० थिइ, ठिइ=स्थिति।

स्प और स्फ का प्फ हो जाता है। फस=स्पर्श (§ ४६), फलिह=स्फटिक, अमा० फुसइ=स्पृशति।

§ ३६—जिस सयुक्त अक्षर में स्पर्श पहिले और ऊष्म पाछे हो, उस का च्छ बन जाता है। जैसे—अच्छि=अक्षि, रिच्छ=ऋक्ष, माह० छुहा=क्षुधा, मच्छर=मत्सर, वच्छ=वत्स (वृक्ष का भी यही रूप होता है), अच्छरा=अप्सरा, जुगुच्छा=जुगुप्सा।

§ ४०—क्ष को प्राय क्ख आदेश होता है। शौ० खत्तिअ=क्षत्रिय, खित्त=क्षिप्त, अक्खि=अक्षि, णिक्खिविदु=निक्षेप्तुम्, सिक्खिद=शिक्षित, दक्खिण=दक्षिण।

किसी शब्द में एक प्राकृत में क्ख आदेश, दूसरी में च्छ आदेश होता है। माह० उच्छु, शौ० इक्खु=इक्षु, माह० कुच्छि, शौ० कुक्खि=कुक्षि, माह० पेच्छइ, शौ० पेक्खदि=प्रेक्षते, माह० शौ० सारिच्छ, शौ० सारिक्ख भी=* सादृक्ष।

कभी क्ष को ज्झ आदेश होता है। शौ० पज्झरावेदि=* प्रक्षारापयति, माह० शौ० झीण=क्षीण (खीण रूप भी मिलता है)।

नोट—पिशल महाशय क्ष के इन तीनों आदेशों के लिये क्ष के भिन्न २ मूल मानते हैं। (१) मूल क्ष (=अवस्ता ख़् श) को क्ख आदेश, (२) क्षप से व्युत्पन्न क्ष (=अवस्ता श) को च्छ आदेश (३) यृज़ से व्युत्पन्न क्ष को ज्झ आदेश होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि क्षप कठिनतालव्य स्पर्श और उसके अनन्तर तत्स्थानीय ऊष्म था। यृज में यही घोष वर्ण थे। क्ष में कोमल तालव्य स्पर्श (जिह्वामूलीय या कण्ठ्य) तथा ऊष्म थे। क्ष में जो ष है वह भी भारतीय मूर्धन्य ष से कुछ भिन्न था। अभी इस बात के अनुसन्धान की आवश्यकता है कि 'ष' और 'क्ष' का उच्चारण किस प्रकार का था, और पारसीक भाषा में ख़् तथा श में क्या भेद था। शिलालेख तथा अन्य साधनों के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में यह भेद स्थानीय था अर्थात् च्छ आदेश पश्चिम तथा पश्चिमोत्तर में और क्ख आदेश पूर्व देश में होता था।

§ ४१—समस्त पदों में जब त् पहिले शब्द का अन्तिम वर्ण और श अथवा स् दूसरे शब्द का आदि वर्ण हो तो त्श् और त्स् को स्स आदेश हो जाता है। कभी स्स् के पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ

करके स्स् को स आदेश होजाता है। पज्जुस्सुअ=पर्युत्सुक, ऊसव=उत्सव, शौ० उस्सास, माह० ऊसास=उच्छ्वास।

§ ४२—स्पर्श के संयोग में व् हो तो व् को स्पर्शादेश होजाता है। माह० कढिअ, शौ० कढिद्=कथित, शौ० पक्क=पक्व, उज्जल=उज्ज्वल, सत्त=सत्व, दिअ=द्विज।

अपवाद। जब उद् उपसर्ग के परे व् हो तो उद् के द् को व् आदेश होता है। जैसे—उव्विग्ग=उद्विग्न।

§ ४३—स्पर्श के संयोग में य् हो तो य् को स्पर्शादेश होता है। चाणक्क=चाणक्य, सोक्ख=सौख्य, जोग्ग=योग्य, णट्टअ=नाट्यक, अब्भन्तर=अभ्यन्तर।

§ ४४—यदि य् के पूर्ववर्ती दन्त्य स्पर्श हो तो य् को स्पर्शादेश होने से पहिले दन्त्य को तालव्य आदेश हो जाता है। सच्च=सत्य, णेवच्छ=नेपथ्य, अच्चन्त=अत्यन्त, रच्छा=रथ्या, अज्ज=अद्य, उवज्झाअ=उपाध्याय, सञ्झा=सन्ध्या, मज्झ=मध्य।

§ ४५—स्पर्श के संयोग में र् हो तो र् को स्पर्शादेश होता है। तक्केमि=तर्कयामि, चक्क=चक्र, मग्ग=मार्ग, गाम=ग्राम, समुच्छिअ=समुच्छ्रित, णिब्बन्ध=निर्बन्ध, विप्प=विप्र, पत्त=पत्र, अत्थ=अर्थ, समुद्द=समुद्र, अद्ध=अर्ध।

अपवाद—अत्र का अत्थ और तत्र का तत्थ बनता है।

(जब र् के परे दन्त्य स्पर्श हो तो कभी २ र् को स्पर्शादेश होने से पहिले दन्त्य स्पर्श को मूर्धन्य आदेश हो जाता है विशेष कर अर्ध मागधी प्राकृत में। शौ० वट्टदि=वर्तते)

§ ४६—यदि म् के पूर्व ङ् या ण् हो तो ङ् या ण् का अनुस्वार

हो जाता है परन्तु न् और म् अथवा म् और न् के योग में पूर्व नासिक्य को परादेश हो जाता है फिर म्म या ण्ण हो जाता है। जैसे—दिमुह=दिङ्मुख, छमुह=षण्मुख, उम्मुह=उन्मुख, जम्म=जन्म णिण्ण=निम्न, पज्जुण्ण=प्रद्युम्न।

§ ४७—नासिक्य और ऊष्म। यदि संयुक्त अक्षर में नासिक्य पहिले हो तो उस का अनुस्वार बन जाता है, और यदि ऊष्म पहिले हो तो उस का ह् बनकर वर्ण व्यत्यय हो जाता है।

श्न का ण्ह हो जाता है। पण्ह=प्रश्न।

श्म „ म्ह „ „ । कम्हीर=काश्मीर।

ष्ण , ण्ह „ „ । उण्ह=उष्ण, कण्ह=कृष्ण।

ष्म „ म्ह „ , । गिम्ह=ग्रीष्म।

स्न „ ण्ह „ „ । ण्हाण=स्नान।

स्म „ म्ह „ „ । अम्हे=अस्मे, विम्हअ=विस्मय।

अपवाद—

(१) रश्मि शब्द का सदा रस्सि बनता है।

(२) शब्द के आदि में श्म हो तो उस को म हो जाता है। मसाण=श्मशान।

(३) स्नेह और स्निग्ध का णेह, णिद्ध अथवा सिणेह, सिणिद्ध बनता है।

सर्वनाम सप्तमी स्मिन् एकवचन प्रत्यय—का म्मि, और स्मिन् का स्सिं या म्मि हो जाता है। शौ० एदस्सिं, महा० एअस्सिं या एअम्मि=एतस्मिन्। (अमा० में —सि होता है। तसि=तस्मिन्)

§ ४८—नासिक्य और अन्तस्थ के योग में अन्तस्थ को नासिक्यादेश होता है। गुम्म=गुल्म, मेच्छ=म्लेच्छ, अण्णेसणा=अन्वेषणा, पुण्ण=पुण्य, अण्ण=अन्य, सोम्म=सौम्य, धम्म=धर्म, कण्ण=कर्ण।

नोट-दीर्घ स्वर के परे म्य का म हो जाता है। कामाए=काम्याय

§ ४६—ऊष्म और अन्तस्थ के योग में अन्तस्थ को ऊष्मादेश होता है। साहणीय=श्लाघनीय, पास=पार्श्व, माह० आस, शौ० अस्स=अश्व, अवस्स=अवश्यम्। माह० मीस, शौ० मिस्स=मिश्र, मणुस्स=मनुष्य, शौ० परिस्सअदि=परिष्वजते, रहस्स=रहस्य, वअस्स=वयस्य, तस्स=तस्य, सहस्स=सहस्र, सहत्थ=स्वहस्त, शौ० सरस्सदी=सरस्वती, साअद=स्वागतम्।

नोट १—कभी स्स का स हो जाता है। तब (क) पूर्व स्वर दीर्घ हो जाता है जैसा कि ऊपर माह० मीस, आस में हुआ था (ख) पूर्वस्वर सानुस्वार हो जाता है। यह प्राय संस्कृत के श और र्श के स्थान में होता है। अंसु=अश्रु, फंस=स्पर्श, दंसण=दर्शन (§ ६४)।

नोट २—किसी प्राकृत में ऐसे स का फिर ह हो जाता है। जैसे—माग० कामाह, अप० कामहो या कामहु। इस परिवर्तन का आधुनिक रूप रचना पर बड़ा प्रभाव पड़ा है (§ २७)।

§—दो अन्तस्थ वर्णों के योग में न्यून बल वाले को बलवत्तर का आदेश होता है। बल की अपेक्षा इनका क्रम यह है-ल्, व्, र्, य्। उदाहरण—गल्लक=गल्वर्क, मुल्ल=मूल्य, दुल्लह=दुर्लभ, कव्व=काव्य, परिव्वाजअ=परिव्राजक, सव्व=सर्व।

अपवाद—र्य में य का ज बन जाता है अर्थात् र्य का ज्ज बन जाता है। अज्ज=आर्य, कज्ज=कार्य। किसी शब्द में र्य के र् का ल् बन कर र्य का ल्ल हो जाता है। पल्लत्थ=पर्यस्त।

नोट—मागधी के अतिरिक्त और प्राकृतों में य्य का ज्ज होता है।

§ ५१—ष्, स्, ष्, फ् के पूर्ववर्ती विसर्ग का स्, ष् की न्याई परिवर्तन होता है। दुक्ख=दुःख, अन्तक्करण=अन्तःकरण। ऊष्म के पूर्ववर्ती विसर्ग का भी यही हाल है। शौ० चदुस्समुद्द=चतुःसमुद्र; दुस्सह=दुःसह (माह०, शौ० में इस का दूसह रूप भी बनता है)।

§ ५२—जब ह के परे नासिक्य या ल हो तो उनका व्यत्यय होता है। अवरह्ण=अपराह्ण, मज्झण्ह=मध्याह्न, माह० गेण्हइ, शौ० गेण्हदि=गृह्णाति, चिण्ह=चिह्न (माह० में इस का चिन्ध रूप भी है) बम्हण=ब्राह्मण, पल्हत्थ-प्रह्लस्त (धातु √ह्रस या √ह्रस)।

§ ५३—ह्य में य् का ज् हो कर ज्झ बन जाता है। सज्झ=सह्य, अणुगेज्झ=अनुग्राह्य।

§ ५४—ह्व का व्ह् हो कर व्भ् बन जाता है। अथवा केवल ह् रह जाता है। विब्भल=विह्वल, जीहा (अमा० जिब्भा)=जिह्वा।

[ह और ह्ं के विचार के लिये देखिये § ५७]

§ ५५—मूर्धन्य विधि।

तवर्ग वाले संयुक्त अक्षरों को कभी टवर्ग का आदेश हो जाता है। शौ० मट्टिआ=मृत्तिका, शौ० माह० वुड्ढ=वृद्ध, गण्ठि=ग्रन्थि।

माह० और शौ० में मूर्धन्यविधि प्रायः संस्कृत ऋ या र् के परे होती है परन्तु अमा० में और स्थलों पर, विशेष कर ऊष्म वर्णों के परे भी, हो जाती है। [पिशल् § २८६ गाइगर् § ६४]

§ ५६—तीन वर्णों के संयुक्त अक्षरों में भी यही नियम लगते हैं। जैसे—मच्छ=मत्स्य, अग्घ= अर्घ्य, अत्थ=अस्त्र, इत्यादि।

§ ५७—स्वरभक्ति। जब संयुक्त अक्षर में एक नासिक्य या अन्तस्थ हो तो कभी कभी उन दोनों को स्वरभक्ति द्वारा पृथक् अर्थात् सस्वर कर दिया जाता है। तब ये पृथक् वर्ण अपने योग्य विकार को प्राप्त होते हैं। प्राय स्वरभक्ति 'इ' (ओष्ठ्य वर्ण के परे) 'उ' अथवा 'अ' होते हैं। महा० रअण, शौ० रदण, माग० लदण=रत्न। महा० शौ० सलाहा=श्लाघा, आमरिस=आमर्ष, वरिस=वर्ष, हरिस=हर्ष, किलन्त=क्लान्त, किलिएण=क्लिन्न, मिलाण=म्लान, तुवर=त्वर-[त्व], दुवार=द्वार; सुवो=स्व, अरिह=अर्ह, पउम=पद्म (पाली पदुम), शौ० सुमरदि=स्मरति।

§ ५८—यदि इन में एक वर्ण 'य्' हो तो उसका लोप हो जाता है। आचारिअ=आचार्य, चोरिअ=चौर्य, हिओ=ह्यस् [यहां उच्चारण में बहुत सूक्ष्म भेद है]। वेरुलिअ=वैडूर्य।

कभी २ स्वर भक्ति ई आती है। अच्छरिअ या शौ० अच्छरीअ=आश्चर्य (माह० में अच्छेर भी है § ७९), शौ० पढीअदि (पाली पठीयते)=पठ्यते।

अध्याय ६

स्वर

§ ५९—संस्कृत वैयाकरण ऋ और लृ को स्वरों में गिनते थे। ये पाली और प्राकृत में लुप्त हो गए। आज कल ऋ का उच्चारण रि किया जाता है, परन्तु प्राचीन समय में ऐसा नहीं था अर्थात् यह व्यञ्जन+स्वर दो वर्ण नहीं थे किन्तु एक ही घोष वर्ण था। इस का उच्चारण स्लैवोनिक भाषा के घोष र् के उच्चारण से मिलता था जैसा कि Srbi (सृबि) शब्द में जो उन लोगों का अपना नाम है। जिन की भाषाओं में यह वर्ण नहीं पाया जाता, वे लोग स्वाभाविकतया इस के स्थान में र् क किसी एक तरफ या दोनों तरफ सवृततर अ, अथवा कोई और स्वर लगा कर बोलते हैं। इस से हम जान सकते हैं कि (१) क्यों ऋ का गुण अर् है न कि रे, (२) क्यों अवस्ता में बृधदन् के स्थान में 'बेरेथ्रगृन,' ऋजु के स्थान 'परेजु' आता है (३) क्यों पाली में ऋत्विज् के स्थान में इरित्विज और ऋग्वेद के स्थान में इरुव्वेद आया है और (४) क्यों प्राकृतों में ह्रस्व एक सङ्केत न होने के कारण ऋ के स्थान में अ, इ, उ, और रि आते हैं।

प्राचीन लृ स्वर का आधुनिक उच्चारण लि तो और भी अशुद्ध है। इस का उच्चारण अंग्रेजी शब्द "battle" बैट्ल् के 1 (पल) का सा था। इस का गुण अल् था और प्राकृत में इस के स्थान पर इलि, लि या अ आता है। किलित्त=क्लृप्त।

§ ६०—ऋ के प्राकृत आदेश।

रि—शब्द के आदि में (माग० लि)—रिद्धि=ऋद्धि, रिच्छ= ऋक्ष, रिसि=ऋषि।

अ— माह० कअ, शौ० कद=कृत, वसह=वृषभ।

इ—(यह आदेश सब से अधिक मिलता है।) किविण=कृपण, गिद्ध=गृध्र, दिट्ठि=दृष्टि, सिआल=शृगाल, हिअअ=हृदय।

उ—ओष्ठ्य व्यञ्जन के परे, अथवा जब परे किसी अक्षर में उ हो। माह० णिहुअ, शौ० णिहुद=निभृत, माह० पुच्छइ, शौ० पुच्छदि=पृच्छति, मुणाल=मृणाल, वुत्तन्त=वृत्तान्त।

नोट १— कभी एक ही भाषा में भिन्न आदेश पाये जाते हैं।

शौ० दढ या दिढ=दृढ, माह० णिअत्त या णिवुत्त=निवृत्त।

नोट २—समास में अथवा क प्रत्यय के पूर्व ऋकारान्त शब्दों के ऋ को उ आदेश होता है। जैसे—शौ० जामादुअ=जामातृक, भादुसअ=भ्रातृशत। कभी इ आदेश भी होता है—शौ० भट्टिदारअ=भर्तृदारक।

नोट ३—अ, इ, उ आदेश शब्द के आदि में भी आते हैं।

अमा० अण=ऋण, शौ० इसि=ऋषि, उज्जु=ऋजु। [पिशल महोदय ने स० ऋच्छति को माह० अच्छइ और पाली अच्छति की प्रकृति माना है, किन्तु कई दूसरे पण्डित इन को √अस् अथवा √आस् धातु के एक गण विशेष के रूप मानते हैं। पिशल् § ४८०, गाइगर् § १३५ २]

नोट ४—दीर्घ ॠ को ई या ऊ आदेश होता है।

नोट ५—देश की अपेक्षा ऋ के आदेश—

दक्षिण तथा पश्चिम में अ।

पूर्व (गौड), मध्य देश तथा उत्तर में इ तथा ओष्ठ्य वर्ण के परे उ*।

§ ६१—संधिस्वर ऐ, औ को ए ओ हो जाता है। द्विर्भूत वर्णों के पहिले ए, ओ का ह्रस्व उच्चारण होता है (§§ १४, ६८)।

शौ० एत्तिहासिअ=ऐतिहासिक, एरावण=ऐरावण, तेल्ल=तैल, वेज्ज=वैद्य। महा० कोमुइ, शौ० कोमुदी=कौमुदी, जोव्वण=यौवन, सोम्म=सौम्य।

नोट—कभी महाराष्ट्री तथा कई अन्य उपभाषाओं में ऐ का 'अइ' और औ का 'अउ' बन जाता है। जैसे - वइर=वैर, मउलि=मौलि। ये आदेश शौरसेनी और मागधी में लागू नहीं होते।

§ ६२—स्वरों का कालपरिवर्तन। दीर्घ स्वर के परे केवल असंयुक्त व्यञ्जन आ सकता है इस लिये संयुक्त व्यञ्जन के पहिले सदा ह्रस्व स्वर रहता है। इस नियम के अनुसार बहुत से उदाहरण ऐसे हैं जिन के संस्कृत रूप में दीर्घ स्वर है परन्तु प्राकृत रूप में ह्रस्व स्वर है। इस प्रकार की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है कि द्विर्भूत व्यञ्जन को ह्रस्व अर्थात् इकहरा कर के उस के पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर को दीर्घ कर दिया जाता था। यह प्रवृत्ति शौरसेनी और मागधी की अपेक्षा माहाराष्ट्री (विशेष कर अर्धमागधी और जैन माहाराष्ट्री) में बहुत अधिक थी। यह प्रवृत्ति आधुनिक आर्य भाषाओं में बहुत प्रधान है (देखिये—प्रा० अग्गि, प० अग्ग परन्तु हिं० आग)।

§ ६३ - ह्रस्व स्वर का दीर्घ आदेश।

यह आदेश प्रायः वहां होता है जहां संस्कृत में ह्रस्व स्वर के परे र्+व्यञ्जन (विशेष कर र्+ऊष्म) अथवा ऊष्म+य्, र्, व्, या

* देखो मो० जे ब्लाक कृत मराठी भाषा की व्युत्पत्ति' § ३१ (फ्रेंच भाषा में); सुनीतिकुमार चैटर्जी कृत 'बंगला की व्युत्पत्ति' (अंग्रेजी में); पिशल महोदय कृत प्राकृत व्याकरण §§ ४६-२१ तथा गाईगिर कृत पाली व्याकरण §§ १२ (जर्मन भाषा में)।

ऊष्म हो। शौ० कादुं=कर्तुम्, कादव्न=कर्तव्य। अमा० फास=स्पर्श, मणूस (शौ० मणुस्स)=मनुष्य। महा० आस (शौ० अस्स)=अश्व, माह० शौ० ऊसव=उत्सव, दूसह=दु सह।

§ ६४—ऐसी दशा में कभी स्वर दीर्घ होने की जगह सानुस्वार हो जाता है। दसण=दर्शन, फस=स्पर्श (§ ४९), माह० असु (शौ० अस्सु)=अश्रु, अमा० आसि (शौ० म्हि)=अस्मि।

§ ६५—इस के उलट कभी कभी र, स और ह के पूर्व स्वर सानुस्वार होने के स्थान में दीर्घ हो जाता है। जैसे—दाढा=दंष्ट्रा, माह० पीसइ, शौ० पीसेदि=*पिंसति (जो पिनष्टि का रूपान्तर है), माह० सीह=सिंह (सिंघ भी रूप मिलता है, शौ० सिंह)।

§ ६६—और भी कई स्थल हैं जहा स्वर दीर्घ हो जाता है। कभी समास के मध्य में, किसी विशेष प्रत्यय के पहिले, अथवा दूसरे शब्दों के साम्यारोप से। जैसे—माह० शौ० सारिच्छ शौ० सारिक्ख=*सादृक्ष (जो सदृक्ष का ही तादृक्ष, यादृक्ष के साम्यारोप से रूप बन गया है)।

§ ६७—स्वरों को ह्रस्वादेश। जैसा ऊपर कहा गया है द्विर्भूत व्यञ्जन अथवा अनुस्वार के पूर्व स्वर सदा ह्रस्व होता है। परन्तु कभी दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है यदि उस से पूर्ववर्ती या परवर्ती अक्षर उदात्त हो। जैसे—अलिअ=अलीक (यह आद्युदात्त है), माह० मजर (कभीर मजार, शौ० मज्जार)=मार्जार (यह अन्तोदात्त है)।

नोट—माहाराष्ट्री में शब्द के अन्दर बली अक्षर वही रहता था जो वैदिक में उदात्त होता था परन्तु शौरसेनी में बली अक्षर का स्थान पाणिनीय संस्कृत के अनुसार था। यही कारण है कि कभी

मराठी और हिन्दी शब्दों में स्वरों की ह्रस्व दीर्घता का भेद पाया जाता है।

§ ६८—कभी अन्तोदात्त शब्दों में असंयुक्त व्यञ्जन के पूर्ववर्ती दीर्घ स्वर ह्रस्व होजाता है और व्यञ्जन द्विर्भूत होजाता है। जैसे-<u>एव्व</u>=एवम्, <u>जोव्वण</u>=यौवन, <u>तेल्ल</u>=तैल, <u>पेम्म</u>=प्रेमन्।

नोट १—अन्तिम दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है यदि उसके परे ऐसा निपात हो जिस के आदि में संयुक्त या द्विर्भूत व्यञ्जन हो। जैसे—माह० <u>ठिअम्हि</u>=स्थितास्मि।

नोट २—शौ० <u>जेव</u>, <u>जेव्व</u> (=एव) का <u>ज्जेव</u>, <u>ज्जेव्व</u> हो जाता है यदि उसके पूर्व ह्रस्व स्वर हो। जैसे—<u>अज्जस्सज्जेव्व</u>=आर्यस्यैव ह्रस्व ए, ओ के पश्चात् भी—<u>भूमिएँ जेव्व</u>=भूम्यामेव, <u>इदो जेव्व</u>=इत एव।

नोट ३—श्री को <u>सिरि</u> आदेश होता है।

नोट ४—महाराष्ट्री में क्रियाविशेषणों का अन्तिम आ प्राय ह्रस्व हो जाता है—<u>जह</u>=यथा।

§ ६९—एक स्वर के स्थान में दूसरा स्वर। उदाहरण—अ>इ, उदात्त अक्षर के पूर्व, विशेषकर माहाराष्ट्री में। <u>पिक्क</u>=पक्व (शौ० <u>पक्क</u> भी होता है), माह० <u>मज्झिम</u>, शौ० <u>मज्झम</u>=मध्यम, माह० <u>कइम</u>, शौ० <u>कदम</u>=कतम।

नोट—हिन्दी में पक्का (बल 'प' पर) होता है, मराठी में 'पिका' (बल 'का' पर)

अ>उ, (१) ओष्ठ्य व्यञ्जन के पूर्व—<u>पुलोएदि</u>=प्रलोकयति। यह आदेश शौ० या माग० की अपेक्षा माह० और अमा० में अधिक होता है। (२) ज्ञा धातु जिन शब्दों के अन्त में हो—<u>सव्वण्णु</u>=सर्वज्ञ।

अ>इ, उदात्त के परे—माह० जम्पिमो=जल्पाम , उदात्त के पूर्व —अमा० विहत्थिमित्त=वितस्तिमात्र । इस दशा में इ का प्राय ह्रस्व ए हो जाता है—मेत्त=मात्र ।

§ ७०—इ>उ, यदि परे के अक्षर में उ हो । महा० उच्छु (शौ० इक्खु)=इक्षु, अमा० उसु=इषु ।

इ>ए (ह्रस्व) द्विर्भूत व्यञ्जन के पूर्व—एत्थ=इत्था, गेज्झ=गृह्य= (गिज्झ<गृह्य=ग्राह्य) ।

इ>ए, ईदृशादि में । शौ० एरिस, ईदिस=ईदृश । केरिस, कीदिस=कीदृश । [वास्तव में एरिस की प्रकृति वैदिक शब्द अया+ दृश है—पिशल् § १२१]

§ ७१—उ> अ, यदि परवर्ती अक्षर में भी उ हो । गरुअ= गुरुक, मउल=मुकुल । उ>इ । पुरिस=पुरुष (माग० पुलिश) ।

उ>ओ (ह्रस्व), द्विर्भूत व्यञ्जन के पूर्व । शौ० पोक्खर=पुष्कर, पोत्थअ=पुस्तक (हिं० पोथी), मोग्गर=मुद्गर, माह० गोच्छ=गुच्छ ।

उ>ओ (ह्रस्व या दीर्घ) द्विर्भूत व्यञ्जन के पूर्व, अथवा जब द्विर्भूत व्यञ्जन को असंयुक्त या इकहरा कर दिया हो—माह० मोल्ल= मूल्य, थोर= * थोर्र (=स्थूर), तम्बोल=ताम्बूल [ताम्बूल> * तम्बुल्ल> * तम्बोल्ल7तम्बोल]

§ ७२—ए>इ, (१) अनुदात्त होने पर- माह० इण=एन, विअणा=वेदना, दिअर=देवर ।

(२) द्विर्भूत व्यञ्जन के पूर्व--शौ० मित्तेअ=मैत्रेय ।

(३) कभी दीर्घ स्वर के परे—शौ० माग० एदिणा=एतेन (एदेण रूप भी होता है) ।

§ ७३—ओ>उ, (१) द्विर्भूत व्यञ्जन के पूर्व—माह० अरणुरण, अरणोरण=अन्योन्य (§ ६१)।

(२) अपभ्रंश में अ से उत्पन्न ओ के स्थान में, (जैसा अकारान्त शब्दों के प्रथमा एकवचन में)—जैसे—लोउ=लोक, सीहु=सिंह। [सिन्धी में अब तक है। जैसे—चण्डु या चण्डु=चन्द्र]।

§ ७४—स्वरों का लोप। उदाहरण

अमा० पोसह=अपवसथ, शौ० यट्ठिद=अवस्थित, माह० रएण= अरण्य (रण कच्छ देश)। अपि को अनुस्वार के परे पि और स्वर के परे वि आदेश होता है।

'इति' का अनुस्वार के परे 'ति', स्वर के परे त्ति होता है। इदानीम् शब्द शौ० माग० में दाणिं बनता है। माह० पिउस्सिआ= पितृष्वसृका (*पिउससिआ)। माह० शौ० पोप्फली=पूगफली, खु=खलु [खलु7 　खुलु>क्खु7खु-अनुवादक]

मज्झण्ण=मध्यन्दिन, शौ० माग० धीदा=दुहिता (*दुहीता> *द्हीता>धीदा)।

नोट—केवल निर्बल अक्षरों के स्वरों का लोप हुआ करता है। इस प्रकार के लोप से शब्द के बली अक्षर के स्थान का पता चलता है।

§ ७५—सम्प्रसारण। संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत में 'य्' का 'इ' और व् का 'उ' आदेश बहुत अधिक होता है। 'अय्' और 'अव्' का यथाक्रम 'ए' और 'ओ' आदेश होता है। शौ० तिरिच्छ=तिर्यक् (तिर्यञ्च), तुरिद=त्वरित, कधेदु=कथयतु, ओदार=अवतार, णोमालिआ=नवमालिका, माह० लोण=लयन, शौ० भोदि=भवति।

§ ७६—युगपत् स्वरभक्ति और स्वरव्यत्यय।

'-अर्य' या-'आर्य' का-'अरिअ' होकर-'एर' होजाता है। जैसे—पेरन्त=पर्यन्त, माह० अच्छेर=आश्चर्य (शौ० अच्छरिअ भी), माह० केर=कार्य, शो० तुम्हकेर, अम्हकेर।

नोट—केरक शब्द से पुरानी हिन्दी और पुरानी गुजराती के 'केरो' 'केरी' जिन का अर्थ 'का' 'की' है बने। बीम्ज महाशय ने 'कार्य' से केरक की व्युत्पत्ति में शङ्का की है (बीम्ज पु० २, पृ० २८६)। हिं० का, की, के, राजस्थानी रो, री, रा, बग०-ऽर की प्रकृति करके शब्द है। देखिये सुनीतिकुमार चैटरजी [५०३]



अध्याय ७

सन्धि

क — व्यञ्जन ।

§ ७७—चूंकि प्राकृत में पदान्त व्यञ्जन नहीं होते (§ २१), इस लिये संस्कृत की वाक्य सन्धि की बहुत सी कठिनाइयां प्राकृत में नहीं रहतीं। परन्तु कभी कभी पदान्त व्यञ्जन जो और दशा में लुप्त हो जाता है स्वर के पूर्व बचा रहता है। जैसे—अमा० जदत्थि=यद् अस्ति, माग० यदिच्छशे=यद् इच्छसि; निपात के पूर्व-अमा० छुच्चेय=षड्चैव, (षड् च एव) छप्पि=षड् अपि (*षदपि)। (ये शब्द साधारणतया ऐसे ही रहते हैं)। दुर् और निर् उपसर्गों का र् सदा रहता है। जैसे—शौ० दुरागद=दुरागत, णिरन्तर।

§ ७८—कभी म् बचा रहता है—माह० एक्कमेक्क=एकैकम् (एकमेकम्)।

ऐसा होने पर इस शब्द के परे विभक्ति प्रत्यय लगते हैं। जैसे—एक्कमेक्के। इस प्रकार म् सन्धि-व्यञ्जन सा बन गया। अङ्गमङ्गम्मि=अङ्गेऽङ्गे, अमा० गोणमाई=गवादय; पसमग्गी=पयोऽग्नि।

कभी य् और र् भी सन्धि व्यञ्जन की भांति प्रयुक्त होते हैं। अमा० धिरत्थु=धिग् अस्तु।

§ ७९—समास में पूर्व शब्द के अंतिम व्यञ्जन को उत्तर शब्द के आदि व्यञ्जन का समानादेश होता है, परन्तु कभी दोनों शब्द पृथक्२ समझे जाते हैं। यथा—माह० सरिसकुल=सरित् सङ्कुल; दुलह=(साधारण रूप दुल्लह), दुर्लभ, दुसह=(साधारण रूप दुस्सह या दूसह)=दु सह।

ख -स्वर।

§ ८०—प्राकृत में दो स्वर इकट्ठे आ सकते है अर्थात् उन में सन्धि नहीं होती। परन्तु समास में पूर्व शब्द के अन्तिम स्वर और उत्तर शब्द के आदि स्वर में संस्कृत की भांति सन्धि होती है। जैसे—शौ० किलेसाणल=क्लेशानल, जम्मन्तरे=जन्मान्तरे (संयुक्त के पूर्व आ>अ), राएसि=(राअ+इसि)=राजर्षि।

कभी सन्धि नहीं भी होती। जैसे—शौ० पूआअरिह=पूजार्ह, वसन्तुस्सवउवाअण=वसन्तोत्सवोपायन।

§ ८१—यदि उत्तर पद के आदि में इ, उ हो और उस के परे द्विर्भूत व्यञ्जन, अथवा उत्तर पद के आदि में ई, ऊ हो तो पूर्व पद के अन्तिम अ, आ का लोप हो जाता है। यथा—माह० गइन्द=गजेन्द्र, शौ० णरिन्द=नरेन्द्र, मन्दमारुदुव्वेल्लिद=मन्दमारुतोद्वेल्लित, महूसव=महोत्सव, वसन्तूसव=वसन्तोत्सव।

अपवाद—किसी किसी समास में जब उत्तर पद का आदि ई, ऊ हो और उस के परे असंयुक्त वर्ण हो, तो दोनों स्वर मिल जाते हैं। जैसे—शौ० मन्थरोरु, इसी प्रकार उपसर्ग के परे—शौ० पेक्खदि, माह० पेच्छइ, माग० पेस्कदि=प्रेक्षते। यदि इ, ई, उ, ऊ के परे असमान स्वर हो तो सन्धि नहीं होती।

§ ८२—स्वरमध्यवर्ती व्यञ्जन का लोप होने से जब दो स्वर इकट्ठे आते हैं तो उन में सन्धि नहीं होती।

अपवाद—(१) कभी समान स्वरों को दीर्घ एकादेश होता है। पाइक=(पाआइक्क)=पादातिक।

(२) यदि अ, आ के परे इ, ई उ, ऊ हो तो सन्धि हो जाती है। थेर=(थइर)=स्थविर, माह० पोम्म, शौ० पउम=पद्म, माह० मोह (कभी मऊह)=मयूख।

(३) समास में सन्धि हो जाती है। माह० अ-धारिअ=अ-ध कारित, देशी चम्मारअ=चर्मकारक, अमा० लोहार=लोहकार, देउल=देवकुल, माग० लाउल=राजकुल।

§ ८३—वाक्य में पदों के आदि और अन्त स्वरों में सन्धि नहीं होती।

अपवाद—(१) न ("नहीं") के परे स्वरादि शब्द हो तो सन्धि हो जाती है। णत्थि=नास्ति, णाहं=नाहम्, शौ० णादिदूर=नातिदूर, णेच्छदि=नेच्छति।

(२) शौ० माग० में "नु एतद्" का एक शब्द णेदं बन जाता है।

(३) संस्कृत की भांति प्राकृत में भी ए, ओ के परे अ का लोप हो जाता है।



अध्याय ८

संज्ञा, विशेषण और सर्वनाम की रूपरचना।

§ ८४—संस्कृत और प्राकृत की रूप रचना में भेद के मुख्य कारण हैं—(१) ऊपर दिये हुए वर्णविकार के नियम तथा कई और नियम जो विशेष रूपों पर लागू हैं, (२) साम्यारोप द्वारा एक प्रकार के शब्दों के रूप दूसरी प्रकार के शब्दों की भांति बनाना। प्राकृत में कई एक ऐसे रूप या प्रत्यय मिलते हैं जो संस्कृत में नहीं मिलते। प्राकृत रूपरचना में नवीन अंश कुछ नहीं। समुच्चय तौर पर प्राकृत व्याकरण प्राचीन व्याकरण का क्रमिक ह्रास है न कि कोई नवीन व्याकरण निर्माण।

§ ८५—प्राकृत में द्विवचन सर्वथा जाता रहा। चतुर्थी के स्थान में षष्ठी का प्रयोग होने लगा (केवल माह० और अमा० में अकारान्त शब्दों का चतुर्थी एकवचन का रूप मिलता है)। वर्ण विकार के नियमों ने व्यञ्जनान्त शब्दों की रूपरचना को स्वरान्त शब्दों के तुल्य कर दिया तथापि कोई कोई रूप बाकी रह गए हैं।

संज्ञा और विशेषण की रूपरचना की तीन प्रणालियां हैं—

१ अकारान्त पुल्लिङ्ग और नपुंसक शब्द।

२ इकारान्त और उकारान्त पुल्लिङ्ग और नपुंसक।

३ आकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त और ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द।

§ ८६—अकारान्त शब्दों के रूप—

पुल्लिङ्ग—पुत्त=पुत्र

एकवचन	शौरसेनी	माहाराष्ट्री
१ प्रा	पुत्तो	पुत्तो

	शौर०	माहा०
२ या	पुत्त	पुत्त
३ या	पुत्तेण	पुत्तेण (-ण)
४ थी	——	पुत्ताअ
५ मी	पुत्तादो	पुत्ताओ
६ ष्ठी	पुत्तस्स	पुत्तस्स
७ मी	पुत्ते	पुत्तम्मि, पुत्ते
बहुवचन—		
१ मा	पुत्ता	पुत्ता
२ या	पुत्ते	पुत्ता, पुत्ते
३ या	पुत्तेहिं	पुत्तेहि (हिं)
५ मी	(पुत्तेहिं, पुत्तेहिंतो)	(पुत्तेहिंतो)
६ ष्ठी	पुत्ताण	पुत्ताण (-णं)
७ मी	पुत्तेसु (सुं)	पुत्तेसु (-सुं)

नोट (१)—५ मी एकव० पुत्तादो, पुत्ताओ=पुत्रतस्। ५ मी के तस् प्रत्यय के पूर्व ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है, परन्तु जब यह रूप क्रिया विशेषण हो तो ह्रस्व भी रह सकता है। जैसे—अग्गदो=अग्रत जम्मदो=जन्मत।

'पुत्तादो' में दीर्घ आ शायद पुत्रात् की अनुरूपता से हुआ।

(२) २ या बहु० पुत्ते, सर्वनाम तुम्हे इमे आदि की अनुरूपता से बना है।

(३) ३ या बहु० पुत्तेहिं=पुत्रेभि (जैसा कि ऋग्वेद में मिलता है § २६)।

(४) ५ मी बहु० का प्रयोग अमा० के अतिरिक्त और प्राकृतों में बहुत कम है। पुत्तेहिंतो=३या बहु०+तस्।

(५) ७ मी एकव० पुत्तम्मि (॰ पुत्रस्मिन्), सर्वनाम रूप की अनुरूपता से।

§ ८७—नपुं० फल।

इस शब्द के पुत्त की भांति रूप बनते हैं, केवल १मा और २या में भेद है।

१मा, २या एकव० फल, १मा, २या बहु० फलाइं।

§ ८८—इकारान्त शब्दों की रूपरचना।

पुल्लिङ्ग—अग्गि=अग्नि।

एकवचन १ मा अग्गी
२ या अग्गिं
३ या अग्गिणा
५ मी (प्रयोग बहुत अल्प। रूप विविध।)
६ ष्ठी अग्गिणो, (महा० अग्गिस्स)
७ मी अग्गिम्मि

बहुवचन १ मा अग्गीओ, अग्गिणो (महा० अग्गिणो, अग्गी)
२ या अग्गिणो
३ या अग्गीहिं (महा० अग्गीहि)
६ ष्ठी अग्गीण (महा० अग्गीणं)
७ मी अग्गीसु (सुं)

नोट—(१) संस्कृत के नपुंसक ६ष्ठी एक० की भांति प्राकृत का पुं०६ष्ठी एक० अग्गिणो भी इन् अन्त शब्दों की अनुरूपता से हुआ है। इसी प्रकार पुत्तस्स की अनुरूपता से अग्गिस्स शब्द हुआ।

(२) ७मी एक० अग्गिम्मि भी पुत्तम्मि की अनुरूपता से।

(३) १मा, २या बहु० अग्गिणो—इन्-अन्त शब्दों के सादृश्य से। अग्गीओ रूप ईकारान्त स्त्री०बहु०प्रत्यय-ईओ की अनुरूपता से।

(४) महा० अग्गी १मा बहु० पुत्त पुत्ता अग्गिः अग्गी की अनुरूपता से।

(५) ३या बहु० अग्गीहिं। हि, हिं प्रत्यय के पूर्व स्वर दीर्घ हो जाता है, देखिये पुत्तेहिं। महा० और कई अन्य प्राकृतों में ऐसे रूपों के अंतिम अनुस्वार का लोप हो जाता है।

§ ८९— नपुं० दहि=दधि।

इस की रूपरचना अग्गि शब्द की भांति होती है केवल प्रथमा द्वितीया में भेद है। १ मा, २ या एक० दहिं या दहि। १ मा, २ या बहु० दहीइं।

§ ९०—उकारान्त शब्दों की रूपरचना इकारान्त से बहुत कुछ मिलता है।

पुंलिङ्ग वाउ=वायु

	एकव०	बहुव०
१ मा	वाऊ	वाउणो, (माह० वाऊ)
२ या	वाउ	वाउणो
३ या	वाउणा	वाऊहि (हिं)
६ ठी	वाउणो, (माह० वाउस्स)	वाऊण (-णं)
७ मी	वाउम्मि	वाऊसु (-सुं)

नपुं० महु=मधु का १ मा, २ या एक० महुं या महु। १ मा, २ या बहु० महूइं। शेष वाउ की भांति।

§ ९१—स्त्रीलिङ्ग शब्दों की रूपरचना। ३ या, ६ ठी, ७ मी एक० के रूपों में भेद नहीं रहा। आकारान्त, ईकारान्त और ऊकारान्त की रूप रचना की समान शैली है।

		माला	देवी	बहू=वधू
एकवचन	१ मा	माला	देवी	बहू
	२ या	माल	देविं	बहु
	३ या, ६ ठी, ७ मी	मालाए	देवीए	बहूए
	५ मी	शौ० मालादो,	देवीदो	बहूदो
		माह० मालाओ	देवीओ	बहूओ
	संबोधन	माले	देवि	बहु

बहुवचन १ मा } २ या }	मालाओ, माला	देवीओ, देवी	वहूओ, वहू
३ या	मालाहि (हिं)	देवीहि (-हिं)	वहूहि (हिं)
५ मी	[मालाहिंतो	देवीहिंतो	वहूहिंतो]
६ ष्ठी	मालाण (-ण)	देवीण (ण)	वहूण (-ण)
७ मी	मालासु (-सु)	देवीसु (-सु)	वहूसु (-सु)

नोट—(१) ५मी एक० का प्रत्यय आदो, आओ पुल्लिङ्ग शब्दों की रूप रचना से लिया गया है। शौरसेनी में यह प्रत्यय आए भी होता है।

(२) ३या, ६ष्ठी, ७मी, एक० आए का मूल संस्कृत प्रत्यय आयै है जो यजुर्वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में ५मी ६ष्ठी एक० के लिये प्रयुक्त होता है।

(३) १मा बहु० मालाओ, देवीओ की अनुरूपता से (ईओ=ई+अस्)

§ ६२—विशेष रूप।

अकारान्त शब्द। (१) माग० और अमा० में १मा एक० के रूप एकारान्त बनते हैं। जैसे—माग० पुलिशे, अमा० पुरिसे=पुरुष। अपभ्रंश में १मा, २या के रूप उकारान्त होते हैं।

(२) अमा० में ४थी एक० के रूप देवत्ताए=देवत्वाय आदि होते हैं। ये रूप स्त्री० ४थी एक० के आधार पर हैं।

(३) माह०, अमा० में छन्दोभंग के कारण ५मी एक० के–आओ का–आउ बन जाता है। रण्णाउ=अरण्यात्।

माह० और अमा० में ५मी एक० के रूप आकारान्त भी बनते हैं। वसा=वशात्, घरा=गृहात्।

माह० में ५मी एक० के रूप हि प्रत्ययान्त भी होते हैं। जैसे—मूलाहि=मूलात्, दूराहि=दूरात्।

कभी हिंतो प्रत्यय भी लगता है—हिअआहिंतो=हृदयात् ।

(४) माग० में ६ष्ठी एक० का प्रत्यय-श्श या-ह होता है। जैसे—चालुदत्तश्श या चालुदत्ताह=चारुदत्तस्य ।

(५) माह० में ७मी एक० के-ए और-म्मि प्रत्ययान्त रूप इकट्ठे आ जाते हैं। जैसे—गअम्मि पओसे=गते प्रदोषे ।

अमा० में सब से अधिक रूप- सि प्रत्ययान्त होते हैं (सि=स्मिन् § ४७)। जैसे – लोगंसि=लोके ।

किसी प्राकृत में ७मी एक० के रूप हिं प्रत्ययान्त भी होते हैं। जैसे—माग० पवहणहिं=प्रवहणे ।

(६) नपु० १मा, २या बहु० के प्रत्यय माह० में -आइ, आइँ, आइं होते हैं। अमा० और शो० में आणि भी होता है।

किसी प्राकृत में वैदिक की भांति -आ भी होता है - शौ० मिधुणा=मिथुनानि, जाणवत्ता=यानपात्राणि ।

(७) कभी पु० २या बहु० का रूप आकारान्त होता है (-आ <-आन्)। जैसे—माह० गुणा गुणान्, अमा० आसा=अश्वान्। यह रूप अपभ्रंश में बहुत मिलता है।

§ ६३—इकारान्त और उकारान्त शब्द ।

(१) ५मी एक० के रूप । माह० उअहीउ=उदधे, अमा० कुच्छीओ=कुक्षे, जैमाह० रम्मागिणो=धर्माग्नेः ।

(२) ७मी एक० । अमा० में-हि प्रत्यय प्रसिद्ध है, आइहि =आदौ।

(३) १मा बहु० । अमा० रिसाओ=ऋषय, साहवो=साधव ।

नपु०—माह० अच्छीइ, अच्छीणि=अक्षीणि, अमा० मसूइ, मसूणि=श्मश्रूणि ।

(६) ईकारान्त और ऊकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के रूप ई, ऊ को ह्रस्व कर के इकारान्त, उकारान्त शब्दों की भांति बनते हैं।

§ ६४—स्त्रीलिङ्ग शब्द। आकारान्त।

(१) ३या, ६ष्ठी, ७मी एक० का प्रत्यय आए छन्द के अनुरोध से -आइ बन जाता है।

(२) वैयाकरण -आअ प्रत्ययान्त रूप का निषेध करते हैं परन्तु माह० में पाया जाता है—माह० जोण्हाअ=ज्योत्सनया।

(३) ५मी एक०। प्रसिद्ध रूप—माह०-आओ प्रत्यय, शौ० माग० -आदो। शौ० माग० में आए प्रत्ययान्त रूप भी होते हैं—इमाए मअतण्हिआए=अस्या मृगतृष्णिकाया।

(४) कभी १मा, २या बहु० के रूप आकारान्त होते हैं। जैसे—माह० रेहा=रेखा, शौ० पूइज्जन्ता देवदा=पूज्यमाना देवता।

§ ६५—इकारान्त (ईकारान्त), उकारान्त (ऊकारान्त)

(१) ३या, ६ष्ठी, ७मी एक०। माह० में-ईए के स्थान में कई बार ईअ आता है।

(२) शौ० दिट्ठिआ=दिष्ट्या, प्राचीन ३या एक० का अवशेष है।

(३) १मा, २या बहु० के -इओ, -ऊओ छन्द के अनुरोध से -ईउ, ऊउ हो जाते हैं।

§ ६६—सं० ऋकारान्त शब्दों के विकार।

कर्तृसूचक और सम्बन्धसूचक शब्दों की रूपरचना में भेद बना रहता है। १मा, २या एक० और १मा बहु० में प्राकृत संस्कृत का अनुकरण करती है। इतर विभक्तियों में उकारान्त (अथवा इकारान्त) अथवा द्वितीया के रूप से स्वतन्त्र शब्द बना लिया जाता है। जैसे—पिउ, पिइ, या पिअर=पितृ; भत्तु, भट्टि या भत्तार=भर्तृ।

§ ६७— कर्तृसूचक शब्द सम्बन्धसूचक शब्द

		भत्तु=भर्तृ	पिउ=पितृ
एकवचन	१मा	भत्ता	शौ० पिदा, माह० पिश्रा
	२या	भत्तार	शौ० पिदर, माह० पिअर
	३या	भत्तुणा	शौ० पिदुणा, माह० पिउणा
	६ष्ठी	भत्तुणो	शौ० पिदुणो, माह० पिउणो
	७मी	भत्तारे	
बहुवचन	१मा	भत्तारो	शौ० पिदरो, माह० पिअरो
	२या		शौ० पिदरो, पिदरे } माह० पिअरो, पिअरे
	३या	भत्तारेहिं	पिऊहिं
	६ष्ठी	भत्ताराण,(-ण)	पिऊण
	७मी	भत्तारेसु	पिऊसु, (सुं)

नोट—(१) "स्वामी"वाचक भर्तृ शब्द का विकार इकारान्त होता है। १मा एक० भट्टा, २या एक० भट्टार, ३या एक० भट्टिणा।

(२) मातृ शब्द के रूप—

१मा एक० माह० माश्रा	शौ० माग० मादा
२या एक० माह० माअर	शौ० मादर
३या एक० माआए	शौ० मादाए

इस की रूपरचना माआ, माइ, माउ या माअरा शब्द से भी हो सकती है।

§ ६८—अन् प्रत्ययान्त शब्द।

इन शब्दों की रूपरचना न् का लोप कर के अकारान्त शब्दों की भांति होती है, अथवा सुट् (सर्वनाम स्थान) के रूपों से एक नवीन अकारान्त शब्द बना लिया जाता है। पेम्म=प्रेमन्। १मा,

२या ए० पेम्म; ३या एक० पेम्मेण, ६ठी एक० पेम्मस्स, ७मी एक० पेम्मे (माह० पेम्मम्मि), १मा, २या बहु० पेम्माइ, ६ठी बहु० पेम्माण।

मुद्ध या मुद्धाण=मूर्धन्। १मा एक० मुद्धा या मुद्धाणो=मूर्धा, ३या एक० अमा० मुद्धेण या मुद्धाणेण। बहुत से शब्दों में १मा एक० का आकारान्त रूप ही प्राचीन युग का अवशेष है। राजन् और आत्मन् शब्दों में कुछ और अवशेष भी हैं।

§ ९९—राअ=राजन् शब्द के रूप।

एकवचन	१मा	राआ=राजा
	२या	राआण=राजानम्।
	३या	रण्णा=राज्ञा (§ ३६), अथवा इ स्वरभक्ति से राइणा रूप होता है।
	६ठी	रण्णो=राज्ञः, अथवा राइणो
	७मी	(राइम्मि, राअम्मि, राए)
	संबोधन	राअ=राजन्
बहुवचन	१मा (२या)	राआणो=राजान
	३या	राईहिं (इकारान्त शब्द की भांति, ३या एक० राइणा के आधार पर)
	६ठी	राईण

नोट—समस्त पदों में राअ शब्द सदा अकारान्त नहीं होता। शौ० महाराओ=महाराज, जुअराओ=युवराज, वच्छराओ=वत्सराज, परन्तु अमा० देवराया=देवराज। शौ० २या एक० महाराअ, ३या एक० महाराएण, ६ठी एक० महाराअस्स, परन्तु अमा० ३या एक० देवरन्ना, ६ठी एक० देवरण्णो।

§ १००—आत्मन् शब्द को अत्त-या अप्प-आदेश होता है (§ ३६)।

	माह०	शौ० माग०
१मा एक०	अप्पा	अत्ता
२या एक०	अप्पाणं	अत्ताणअं=*आत्मानकम्
३या एक०	अप्पणा	
६ठी एक०	अप्पणो अत्तणो	अत्तणो, माग० अत्ताणअश्श

नोट—(१) अमा० में १मा एक० का रूप अप्पो भी होता है।

(२) अकारान्त रूप १मा एक० अप्पाणो, अत्ताणो, तथा समास में अप्पण-अत्तण-रूप भी होते हैं।

§ १०१—इन् प्रत्ययान्त शब्द। इन के कुछ रूप संस्कृत शैली से और कुछ रूप इकारान्त शब्दों की शैली से बनते हैं। चूंकि प्राकृत में इकारान्त शब्दों की रूपरचना का कुछ अंश सं० इन् प्रत्ययान्त शब्दों की शैली पर होता है। इस लिये भेद केवल दो एक रूपों में ही दिखाई पड़ता है। जैसे—१मा एक० हत्थी=हस्ती, परन्तु २या एक० हत्थिं=हस्तिनम् (शौ० में कभी हत्थिणं भी होता है)। ६ठी एक० जैन प्राकृतों में कभी-इस्स प्रत्ययान्त होता है, अन्यथा सर्वदा-इणो प्रत्ययान्त होता है।

§ १०२—अत् प्रत्ययान्त शब्द। सं० अत्, मत् और वत् प्रत्ययान्त शब्द प्रा० में अन्त, मन्त और वन्त प्रत्ययान्त हो जाते हैं। जैसे—शौ० करेन्तो=कुर्वन्, पुलोअन्तो=प्रलोकयन्, करेन्तेण=कुर्वता, महन्तस्स=महत, गच्छन्तेहिं=गच्छद्भि।

§ १०३—अपवाद। अर्धमागधी में कई बार प्राचीन शैली के रूप पाए जाते हैं। जैसे—कुव्वं=कुर्वन्, महओ=महत। इतर प्राकृतों में भवत् और भगवत् शब्दों के ऐसे रूप मिलते हैं।

	भवत्	भगवत्
१मा	भव	भअव

	भवन्त	भअवन्त
२या		
३या	माह० भवआ, शौ० भवदा	माह० भअवन्तआ शौ० भअवदा
६ठी	माह० भवओ, शौ० भवदो	माह० भअवन्तओ शौ० भअवदो

§ १०४—सकारान्त शब्द। अस्, इस्, उस् प्रत्ययान्त शब्दों की रूपरचना अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त शब्दों की शैली पर होती है। जैसे—शौ० पुरूरवस्स=पुरूरवस, दीहाउ=दीर्घायुषम्, अमा० सजोइ=सज्योतिषम्।

अपवाद—कोई कोई रूप प्राचीन शैली के भी मिलते हैं। जैसे—पुरूरवा (१मा एक०), पुरूरवस (२या एक०), पुरूरवसि (७मी एक०)। प्राचीन शैली के ३या एक० के रूप अमा० और जैमहा० में बहुत पाए जाते हैं—मणसा, सहसा, तवसा=तपसा, तेयसा=तेजसा, चक्खुसा=चक्षुषा।

§ १०५—प्राचीन शैली के और कई रूप मिलते हैं जो प्राय नियत वर्णविकारों से उत्पन्न होते हैं। उन को किसी एक नियम के आश्रित नहीं किया जा सकता।

सर्वनाम।

§ १०६—उत्तम और मध्यम पुरुष के सर्वनामों के कई कई रूप पाए जाते हैं। जो बहुत प्रसिद्ध हैं वे नीचे दिये जाते हैं।

		उत्तमपुरुष	मध्यमपुरुष
एकवचन	१मा	अहं, हं	तुम (माह० तं)
	२या	मं (महा० ममं)	तुमं, ते
	३या	मए	तए, तुए
	५मी	(ममाओ)	(तुमाहिंतो) (बहु० रूप)
	६ठी	मम, मे, मह	तुह, ते, (अमा० तव)
	७मी	मइ	तइ (महा० तुमम्मि)

बहुवचन	१मा	अम्हे	तुम्हे
	२या	अम्हे, णो	तुम्हे, वो
	३या	अम्हेहिं	तुम्हेहिं
	५मी	(अम्हेहिंतो)	( )
	६ष्ठी	अम्हाण, णो	तुम्हाण
	७मी	अम्हेसु	(तुम्हेसु)

§ १०७—रूपान्तर।

उत्तम० एकवचन १मा—*अहम् या *अहम् से व्युत्पन्न—महा० अहअ, जैमा० अहय, माग० हगे, अप० हउँ।

२या—महा० अमा० जैम० मम (६ष्ठी एक० मम रूप से बना हुआ)

३या—अप० मइँ (२या का रूप भी मइँ होता है)

५मी—का प्रयोग बहुत अल्प है।

६ष्ठी—माह० मज्झ (-ज्झ), मह (ह), जो मह्यम् और मे से निकले हैं।

७मी—माग० मइ।

बहुवचन—१मा—अम्ह=वैदिक अस्मे, अमा० वय भी।

२या—शौ० अम्हे, णो, महा० अम्हे, अम्ह, णे माग० अस्मे।

६ष्ठी—माग० अस्माण, महा० अमा० जैम० अम्ह, शौ० में बहुत करके णो होता है।

मध्यम पु० एकवचन—१मा—सब से प्रसिद्ध रूप तुम। महा० में त भी बहुत आता है। अमा० तुमे, टक्की प्राकृत में तुह; अप० तुहुँ।

२या—प्राय १मा की भांति; अप० तइँ; अमा० ते; शौ० माग० ते या दे।

३या—लिखित प्रतियों में तए या तुए। महा० तइ, तुइ, तुमए, तुमाए, तुमइ, तुमाइ, तुमे।

५मी—शौ० तत्तो, तुवत्तो=त्वत्त । महा० तुमाहि, तुमाहिंतो, तुमाश्रो।

६ष्ठी—शौ० तुह, ते, महा० में तुह, तुज्झ (-ज्झ), तुम्म, तुम्हे, तु भी होते हैं।

७मी—शौ० तइ, तुइ, महा० तइ, तुवि, तुमम्मि तुमे।
बहुवचन—१मा—अम्हे की अनुरूपता से तुम्हे। अमा० तुब्भे।

६ष्ठी—माह० तुम्ह भी, अमा० तुब्भ, महा० शौ० वो।

५मी—व्याकरणों में कई रूप दिये हैं—तुम्हत्तो, तुब्भत्तो, तुज्झत्तो आदि।

§ १०८—प्रथम पुरुष— स-और त-शब्द

		पु०	नपु०	स्त्री०
एकवचन	१मा	सो	तं	सा
	२या	त	त	तं
	३या	तेण (ण)		ताए, तीए
	६ष्ठी	तस्स		ताए, तीए
	७मी	तस्सिं, तम्मि		ताए, तीए
बहुवचन	१मा, २या	ते	ताइं (अमा० ताणि)	ताओ, ता
	३या	तेहि, (हिं)		ताहि, (हिं)
	६ष्ठी	तेसिं, ताण, (-ण)		तासिं, ताण, (ण)
	७मी	तेसु		तासु

§ १०९—विशेष रूप।

स- के रूप—१मा एक० माग० शे, २या एक० अमा० से, ६ष्ठी एक० महा० अमा० शौ० से, माग० शे (त्रिलिंग)।

बहुव० १मा—अमा० से, माग० शे। २या-६ठी—से।

त- के रूप—एकव० ५मी–अमा० ताओ। शौ० माग० तदो=ततः। माह० ताउ=वै० तात्। ६ठी–माग० तश्श, महा० तास भी। स्त्री० महा० तिस्सा भी। अमा० तीसे। ७मी–शौ० तस्सिं, माग० तश्शिं, महा० तम्मि, अमा० तंसि।

बहुव० १मा० शौ० माग० ते का दूसरे सर्वनाम के परे दे रूप हो जाता है—एदे दे। ५मी—अमा० तब्भो, तेहिंतो।

§ ११०—इतर सर्वनाम रूप भी इसी प्रकार चलते हैं।

	पुं०	नपुं०	स्त्री०
एस—	एसो	शौ० एदं, महा० एअ=एतत्	एसा
ज—	जो	ज=यत्	जा
क—	को	किं	का
इम—	इमो	इमं, इण इदम्)	इमा

इदम् शब्द के और रूप—

शौ० अअं=अयम्, अमा० अयं (त्रिलिङ्ग) शौ० इअं=इयम्।

महा० अमा० शौ० इदं (केवल १मा में)।

महा० अस्स=अस्य, एण, अमा० शौ० अणेण=अनेन।

इम- को ए हो जाता है—ए णेण, णे।

अमा० में इमेण, इमाओ, इमस्स, इमंसि होते हैं।

अमू शब्द की रूपरचना उकारान्त संज्ञा शब्दों की भांति होती है।

§ १११—सर्वनाम विशेषण।

शौ० अण्णस्सिं=अन्यस्मिन्, कदरस्सिं=कतरस्मिन्, अवरस्सिं=अपरस्मिन्, परस्सिं=परस्मिन्, अण्णे=अन्यान्। शौ० सव्वाण, अमा० सव्वेसिं=सर्वेषाम्।

§ ११२—संख्यावाची शब्दों की रूपरचना।

१—एक्क (अमा० एग) की रूपरचना सर्वनामों की भांति होती है। ७मी एक० शौ० एक्कस्सिं, माग० एक्कश्शि, महा० एक्कम्मि, अमा० एगंसि, एगम्मि। बहु० एक्के, अमा० एगे।

२—दो (=द्वौ), दुवे (=द्वे), तिण्णि (=त्रीणि) की अनुरूपता से दोण्णि और दुण्णि रूप भी बनते हैं। ये तीनों रूप सब लिङ्गों में व्यवहृत होते हैं। जैसे—शौ० दोण्णि कुमारीओ=द्वे कुमार्यौ। ३या दोहि, (हिं), ६ष्ठी दोण्ह (-ण्हं); ७मी दोसु।

३—तिण्णि=त्रीणि, अमा० तओ=त्रय (प्रयोग लिङ्गनिर्विशेष)। ३या तीहिं, ६ष्ठी तिण्ह, (ण्हं) ७मी तीसु।

४—चत्तारि=चत्वारि सब से प्रसिद्ध रूप है। चत्तारो=चत्वार और चउरो=चतुर १मा और २या में निर्विशेष प्रयुक्त होते हैं। ३या चउहि, (हिं), ६ष्ठी चउण्ह, (ण्हं), ७मी चउसु।

५—पञ्च। ३या पञ्चहि, (हिं), ६ष्ठी पञ्चण्ह, (-ण्हं), ७मी पञ्चसु।

६—छ। ३या छहिं, ६ष्ठी छण्ह, (-ण्हं), ७मी छसु।

७-१८ तक इसी प्रकार रूपरचना होती है।

१६-५८ तक के शब्द १मा में अ अन्त नपु०, या आ अन्त स्त्री० होते हैं। और विभक्तियों में स्त्री० एक० होते हैं। जैसे—२०-१मा वीसं, वीसा, २या वीसं, ३या ६ष्ठी ७मी-वीसाए। १मा में वीसइ और वीसइं रूप भी होते हैं।

५६-६६—इ-अन्त नपु०, या ई-अन्त स्त्री० होते हैं।

१००—शौ० सदं, महा० सअं १०००—सहस्सं	इन की नपु० अकारान्त की भांति रूपरचना होती है।

अध्याय ६

क्रिया की रूपरचना।

§ ११३—संज्ञा की अपेक्षा प्राकृत अवस्था की क्रिया रूपावली में बहुत भेद आ गया है। गणविकारों ने कई एक गणभेद दूर कर दिये तथा अन्तिम व्यञ्जन के लोप ने कई एक क्रिया रूप सन्दिग्ध कर दिये। संज्ञा की भांति क्रिया की रूपरचना में भी यह प्रवृत्ति रही कि उसे एक ही शैली पर लाया जाय। इस प्रवृत्ति ने पाली आदि पुरानी प्राकृतों पर इतना प्रभाव नहीं डाला था जितना अर्वाचीन प्राकृतों पर। अपभ्रंश में तो प्राचीन शैली के कुछ अनियमित अवशेषों के अतिरिक्त केवल एक ही गण की क्रियारचना हो गई।

एक और बात भी है। रूपों की संख्या भी कम हो गई। द्विवचन के रूपों का सर्वथा लोप हो गया। आत्मनेपद भी लुप्तप्राय हो गया। इकले दुकले रूपों को छोड़ कर लङ्, लिट् और लुङ् लकार के रूपों का सर्वथा लोप हो गया है। भूत काल प्रकट करने के लिए क्तान्त रूप, कभी अकेला, कभी किसी सहायक क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है। इस प्रकार प्राचीन शैली के केवल लट्, लोट्, लिङ् और लृट् के रूप, कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य, तथा तुमुन्नन्त, क्त्वान्त, ल्यबन्त और कृदन्तों के रूप बाकी रह गए हैं।

धातुओं के दस गणों के स्थान में केवल दो गण बन गए हैं।

(१) अ गण के धातु—इन में धातुओं का बहुत बडा भाग तथा कर्मवाच्य रूप हैं।

(२) ए-गण के धातु—इन में णयन्त तथा नामधातु और कुछ अन्य धातु शामिल हैं।

दोनों की रूपरचना एक ही शैली पर होती है।

§ ११४—लट् के रूप (वर्तमान, सामान्य)

अ-गण

पुच्छ=प्रच्छ्

एकवचन—प्र० पु० शौ० पुच्छदि, महा० पुच्छइ
म० पु० पुच्छसि
उ० पु० पुच्छामि

बहुवचन—प्र० पु० पुच्छन्ति
म० पु० शौ० पुच्छध, महा० पुच्छह
उ० पु० पुच्छामो

ए-गण

कध (महा कह)=कथ्

एकवचन—प्र० पु०	शौ०	कधेदि	महा०	कहेइ
म० पु०	,,	कधेसि	,,	कहेसि
उ० पु०	,,	कधेमि	,,	कहेमि
बहुवचन—प्र० पु०	,,	कधेन्ति	,,	कहेन्ति
म० पु०	,,	कधेध	,,	कहेह
उ० पु०	,,	कधेमो	,,	कहेमो

नोट (१) अमा० रूप महा० के सदृश होते हैं—पुच्छइ, पुच्छह आदि। माग० के प्रत्यय वही हैं जो शौ० के हैं—पुश्चदि, पुश्चध, पुश्चशि।

(२) अपभ्रंश के रूपों में बहुत भेद पड़ गया है।

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पुच्छइ	पुच्छहिँ

	एकवचन	बहुवचन
म० पु०	पुच्छसि, पुच्छहि	पुच्छहु
उ० पु०	पुच्छउँ	पुच्छहुँ

इन में और हिन्दी के रूपों में थोड़ा ही भेद रह जाता है। जैसे—हिं० एकव० प्र०, म० पु० पुच्छे, उ० पु० पुच्छूं, बहुव० पुच्छें

§ ११५—आत्मनेपद।

शौरसेनी में यह प्रयोग बहुत विरला है। कभी कभी छन्दों में अथवा मुहावरों में आता है। महा०, अमा० और जैम० में बहुत मिलता है। प्रत्यय इन रूपों से प्रकट होते हैं—एकव० प्र० पु० जाणए (शौ० जाणदे), म० पु० जाणसे, उ० पु० जाणे। बहुव० प्र० पु० जाणन्ते।

उदाहरण—महा० शौ० जाणे=जाने, महा० मण्णए=मन्यते, शौ० लहे=लभे, इच्छे, महा० जाणसे, माग० इश्चशे=इच्छसे; महा० पेच्छए=प्रेक्षते, तीरए=तीर्यते (कर्मवाच्य)।

§ ११६—लोट् लकार अथवा आज्ञावाची क्रिया के रूप।

एकवचन—प्र० पु० शौ० पुच्छदु महा० पुच्छउ
म० पु० पुच्छ, कहेहि; पुच्छसु, कहेसु
उ० पु० (पुच्छामु)

बहुवचन—प्र० पु० पुच्छन्तु कहेन्तु
म० पु० शौ० पुच्छध महा० पुच्छह
उ० पु० पुच्छम्ह कहेम्ह

नोट—(१) म० पु० एकव० में दीर्घ स्वर के परे हि प्रत्यय जोड़ने का नियम है परन्तु अमा० में प्राय और महा० माग० में कभी कभी अकारान्त धातु के अ को दीर्घ करके भी हि प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। जैसे—अमा० गच्छाहि (शौ० गच्छ)।

(२) म० पु० एकव० सु प्रत्यय का मूल सं० आत्मनेपद स्व प्रत्यय है, परन्तु पिशल् महोदय (§ ४६७) का मत है कि यह प्रत्यय अनुरूपता से उत्पन्न हुआ है। लट्—पुच्छदि पुच्छन्ति'• लोट्—पुच्छदु• पुच्छन्तु; लट्—पुच्छसि, लोट—पुच्छसु। इसी प्रकार उ० पु० एकव०, लट्—पुच्छामि लोट्-पुच्छामु। यह आमु प्रत्यय व्याकरणों में ही मिलता है। यह भी सत्य है कि सु प्रत्यय अधिक शौरसेनी और मागधी में पाया जाता है परन्तु आत्मने पद के अन्य रूपों का प्रयोग बहुत विरला है। शौ० करेसु=कुरु, आणेसु=आनय, कधेसु=कथय। चूंकि पाली में स्व प्रत्यय के लिए स्सु आता है और वहां यह प्रत्यय परस्मैपद धातुओं के परे भी लगता है (ई० मूलर, पाली व्याकरण पृ० ११७) इस लिए सम्भव है कि सु का मूल स्व हो। अनुरूपता के कारण यह परस्मैपद धातुओं के परे भी लगने लग गया होगा।

(३) पिशल (§ ४७०) के मतानुसार उ० पु० बहु० म्ह=स्म जो लुट् लकार का प्रत्यय है, देखिये वैदिक—जेष्म, देष्म।

§ ११७—विधिलिङ्।

इस का प्रयोग अमा० और जैम० में बहुत है, माह० में थोड़ा और इतर प्राकृतों में विरला। इस के रूप दो प्रकार से बनते हैं—

(१) जो रूप महा० अमा० और जैम० में प्रचलित है वह संस्कृत के दिवादि गण के विधिलिङ् रूप से बनता है जिस के प्रत्यय यात्, यास्, थाम् आदि हैं। जैसे—

एकवचन—प्र० पु० वट्टेज्जा (-ज्जा)

म० पु० वट्टेज्जासि, (-ज्जासि), (-ज्जाहि), -ज्जाहि, -ज्जासु, -ज्जसु

उ० पु० वट्टेज्जा, -ज्ज, (वट्टेज्जामि, लट् रूपों के सा दृश्य पर)

बहुवचन—प्र० पु० वट्टेज्जा, -ज्ज

म० पु० वट्टेज्जाह, -ज्जह

उ० पु० वट्टेज्जाम

(२) संस्कृत के भ्वादि गणी धातुओं के विधिलिङ् रूप से निकला हुआ। शौरसेनी में तो केवल यही रूप मिलता है, औरों में भी पाया जाता है।

एकवचन—उ० पु० वट्टे (बहुव० में भी यही रूप है)

म० पु० वट्टे

प्र० पु० वट्टेअ (वट्टे भी होता है)

नोट—एज्जा के पूर्ववर्ती ह्रस्व ए, इ के स्थान में आया प्रतीत होता है (§ ७२)। इसी लिए स० जानीयात् से अमा० जाणिज्जा, जाणेज्जा बनते हैं परन्तु इस का इतना प्रचार भ्वादिगण के एत्, एस्, एयम् प्रत्यय के कारण हुआ।

§ ११८—लट् लकार—(भविष्यकाल)। प्रत्यय इस्स<इष्य

एकवचन—प्र० पु० पुच्छिस्सदि, महा० पुच्छिस्सइ (या पुच्छिहिइ)

म० पु० पुच्छिस्ससि (महा० अमा० पुच्छिहिसि)

उ० पु० पुच्छिस्सं (अमा० पुच्छिस्सामि)

बहुवचन—प्र० पु० पुच्छिस्सन्ति (अमा० पुच्छिहिन्ति)

म० पु० पुच्छिस्सध, महा० पुच्छिस्सह

उ० पु० पुच्छिस्सामो

नोट—सन्धिस्वर अथवा दीर्घ स्वरों के परे हि वाले रूपों से इहि वाले रूप बने हैं। प्र० पु० एक० पुच्छिहिइ का छन्द के अनु

रोध से पुच्छिहदी हो जाता है। व्याकरणों में उ० पु० एक० का इहामि और इहिमि वाला रूप भी दिया है; (अप० पेक्खिहिमि= प्रेक्षिष्ये), उ० पु० बहु०—इहिमो, म० पु० बहु० इहिह, इहित्थ वाले रूप।

§ ११६—कर्मवाच्य।

प्राकृत कर्मवाच्य रूप या (१) तो संस्कृत कर्मवाच्य का विकार होता है (-य का शौ० माग० में लोप हो जाता है, औरों में—इज्ज बन जाता है) या (२) धातु के परे अथवा (३) प्रत्यय वर्जित लट् रूप के परे इज्ज लगाने से बनता है। कर्मवाच्य में परस्मैपद प्रत्यय लगते हैं परन्तु महा० और अमा० में विशेष कर अपूर्ण कृदन्त में आत्मनेपद प्रत्यय भी लगते हैं।

उदाहरण—(१) महा० जुज्जइ, शौ० जुज्जदि=युज्यते। महा० गम्मइ=गम्यते, महा० दिज्जइ, शौ० दिज्जदि=दीयते।

(२) √ गम् धातु से—महा० गमिज्जइ, शौ० गमीअदि।

(३) प्रत्यय वर्जित लट् रूप गच्छ् से—शौ० गच्छीअदि।

एकवचन	शौरसेनी	महाराष्ट्री
प्र० पु०	पुच्छीअदि	पुच्छिज्जइ
म० पु०	पुच्छीअसि	पुच्छिज्जसि
उ० पु०	पुच्छीआमि	पुच्छिज्जामि
	इत्यादि	इत्यादि

§ १२०—प्रेरणार्थक या णिजन्त संस्कृत की भांति धातु के परे अय (जो -ए- हो जाता है) लगाने से बनता है। जैसे—हासेइ= हासयति। आकारान्त धातुओं के परे पुक् का आगम होता है और प्राकृत में पय का वे बन जाता है। णिव्वावेदि=निर्वापयति। प्राकृत में इस शैली का बहुत प्रचार है और धातु के परे आ लगा दिया जाता है जैसे—पुच्छावेदि=पृच्छयते।

§ १२१—कृदन्त। साधारण रूप नीचे दिये जाते हैं।

कर्तृ-प्रयोग

शतृ प्रत्ययान्त। पु० पुच्छन्तो, स्त्री० पुच्छन्ता, नपु० पुच्छन्त।
णिजन्त या प्रेरणार्थक—१मा एक० पुच्छावेन्तो आदि।

भविष्य—पुच्छिस्सन्तो, °ता, °त

आत्मनेपद (प्रयोग कर्तृवाच्य अमा० में बहुत)

वर्तमान—पुच्छमाणो, ०णा (णी), -ण।

भविष्य—पुच्छिस्समाणो आदि।

कर्मवाच्य

वर्तमान—शौ० पुच्छीअन्तो, महा० पुच्छिज्जन्तो, अमा० पुच्छिज्जमाणे।

भविष्य—पुच्छिदव्वो, महा० पुच्छिअव्वो, पुच्छणीओ, महा० पुच्छणिज्जो, कज्जो=कार्य (§ १३७)

भूत—शौ० पुच्छिदो, महा पुच्छिओ (§§ १२४-५)।

§ १२१ (क)—तुमुन्नन्त। सं० तुम् का शौ० माग० में दु और महा० में उ हो जाता है। यह प्रत्यय (१) धातु के परे या (२) इ का आगम कर के प्रत्यय रहित लट् के परे लगाया जाता है। शौ० पुच्छिदु, महा० पुच्छिउ।

उदाहरण—गन्तु, शौ० गच्छिदु, गमिदु, शौ० कामेदु=कामयितुम्, धारिदु=धारयितुम्, शौ० कादु, करिदु, महा० काउ=कर्तुम्।

(-तव्य प्रत्ययान्त रूपों के लिये देखो § १३६)

§ १२२—क्त्वा, ल्यप् प्रत्ययान्त या पूर्वकालिक क्रिया।

शौ० पुच्छिअ, महा० पुच्छिऊण, अमा० पुच्छित्ता या पुच्छिदूण।
शौ० माग० कदुअ=कृत्वा, गदुअ=गत्वा। कभी शौ० छन्द में -ऊण,

-दूण प्रत्यय होते हैं। जैसे—पेक्खिऊण। गद्य में इश्र प्रत्यय ही होता है।

उदाहरण—शौ० णइश्र=*नयिय=नीत्वा, अवणीश्र=अपनीय, ओदरिश्र (माग० ओदलिश्र)=अवतीर्य, पेक्खिश्र, भविश्र, पविसिश्र।

माग० में अधिक प्रयोग -ऊण प्रत्यय का है। जैसे—हऊण, गन्तूण, हसिऊण, काऊण।

अमा० में त्ता (नासिक्य के परे ता) प्रत्यय बहुत अधिक आता है। जैसे—भवित्ता, गन्ता, हसित्ता, करित्ता। त्ताण प्रत्यय भी होता है—भवित्ताण।

§ १२३—असाधारण रूप।

ऊपर दिये साधारण रूपों के अतिरिक्त बहुत से असाधारण रूप हैं। ये दो प्रकार के हैं--(१) जो शुद्ध संस्कृत रूपों में प्राकृत वर्णविकार के नियम लगने से बनते हैं। (२) जो दोनों संस्कृत और प्राकृत शैली के अनुसार असाधारण रूप हैं। दूसरी प्रकार के रूप बहुत अधिक नहीं। ये अनुरूपता के प्रभाव से बन गए होंगे अथवा प्राचीन लौकिक भारती से चले आए हैं जिन का प्रयोग पाणिनीय संस्कृत में नहीं हुआ।

§ १२४—प्राकृत के अधिकांश अनियमित धातु अपने क्रान्त रूप में ही भेद रखते हैं। प्राचीन क्रान्त रूपों का व्यवहार में रहना स्वाभाविक था क्यों कि गत कृत आदि शब्द इतने अधिक प्रचलित थे कि अनुरूपता से बनने वाले गच्छिदो, करिदो आदि रूप उन के प्राकृत विकार गदो, किदो का बहिष्कार न कर सके। एक और बात भी है। इस रूप ने अपने कृदन्त अर्थ के अतिरिक्त विशेषण का अर्थ धारण कर लिया था। आवश्यक नहीं कि स्निग्ध,

मुग्ध, शुद्ध आदि शब्द मिया या रूदा का बोध कराए, यद्यपि उन की व्युत्पत्ति यही है। अनुरूपता से बने हुए क्रान्त रूपों की तथा प्राचीन व्यवहृत रूपों की (अथवा संस्कृत से लिये हुए रूपों की) संख्या भिन्न २ प्राकृतों तथा ग्रन्थों में भिन्न २ है। न ये नियम पक्के हैं और न इन की पूरी सूची बनाने का कुछ लाभ है, तथापि कुछ ऐसे रूप हैं जिन का प्रयोग बहुत अधिक होता है, पाठकों को उन से परिचित हो जाना चाहिये। उन की सूची नीचे दी जाती है।

§ १२५—क्रान्त—

असाधारण रूप

क्रान्त रूप	संस्कृत मूल	लट् रूप
अवरद्ध	अपराद्ध	महा० अवरज्झइ
आढत्त	(*आधप्त)	महा० आढाइ,
	आहित	(प्रेरणा० आढवइ)
आणत्त	आज्ञप्त	शौ० आणवेदि (§३६)
आरद्ध	आरब्ध	शौ० आरम्भदि
आरूढ	आरूढ	महा० आरुहइ
आसण्ण	आसन्न	शौ० आसीददि
उत्त	उक्त, अमा० वुत्त	
उत्तिण्ण	उत्तीर्ण	महा० उत्तरइ
ओइण्ण, शौ० ओदिण्ण	अवतीर्ण	ओअरइ
महा० कअ, अमा० कय	कृत	महा० करेइ
शौ० किद (§११), कद (§६०)	कृत	शौ० करेदि
किलिट्ठ	क्लिष्ट	महा० किलिस्सइ
कुविद	कुपित	शौ० कुप्पदि

क्रान्त रूप	संस्कृत मूल	लट् रूप
*कन्त	*क्रान्त	शौ० कमदि
महा० खअ, खाअ शौ० खणिद	खात	महा० खणइ
महा० खअ, शौ० खद	क्षत	——
खिण्ण	क्षीण	महा० खिज्जइ
खित्त	क्षिप्त	खिवइ
महा० गअ, शौ० गद	गत	शौ० गच्छदि
गविट्ठ	गवेषित	महा० गवेसइ
महा० गहिअ, शौ० गहिद	गृहीत	शौ० गेण्हदि (§ ५२)
गीअ	गीत	महा० गाअइ
गूढ	गूढ	शौ० गूहदि
छिण्ण	छिन्न	महा० छिन्दइ, शौ० छिन्ददि
महा० जाअ, शौ० जाद	जात	शौ० जाअदि
महा० जिअ, शौ० जिद	जित	शौ० जअदि महा० जिणइ
जुत्त	युक्त	महा० जुञ्जइ, शौ० जुज्जदि (कर्मवा० §११९)
चत्त	त्यक्त	महा० चअइ
महा० ठिअ, शौ० ठिद (§ १२) महा० थिअ, शौ० थिद (§ ३८)	स्थित	शौ० चिट्ठदि
णद महा० णअ	नत	शौ० णमदि
णट्ठ	नष्ट	शौ० णस्सदि

क्रान्त रूप	संस्कृत मूल	लट् रूप
महा० णाअ, शौ० णाद ,, जाणिअ ,, जाणिद	ज्ञात	जाणादि
शौ० विण्णाद	विज्ञात	विण्णवीअदि (कर्मवा०)
पडिण्णाद	प्रतिज्ञात	
महा० णीअ, शौ० णीद	नीत	णेदि

[शौ० अवणीद=अपनीत; आणीद=आनीत, दुव्विणीद=दुर्विनीत, पच्चाणीद=प्रत्यानीत, उवणीद=उपनीत, परिणीद=परिणीत, महा० णिअ रूप भी होता है। अइणिअ=अतिनीत, आणिअ=आनीत]

क्रान्त रूप	संस्कृत मूल	लट् रूप
ण्हाअ	स्नात	ण्हाइ (अमा० सिणाइ)
तत्त, तविद	तप्त	——
तुट्ट (हिं० टूटा)	त्रुटित	तुट्टइ
तुट्ठ	तुष्ट	तुस्सदि
दट्ठ, डक्क शौ० दसिद	दष्ट	डसइ, शौ० दसदि
दड्ढ	दग्ध	दहइ, डहइ, शौ० डहदि
दित्त	दीप्त	दिप्पदि
दिट्ठ	दृष्ट	दीसदि (कर्मवा०)
दिण्ण	दत्त	देदि
पअट्ट, पयट्ट, पअत्त, पउत्त	प्रवृत्त	पयट्टइ
पउत्त	प्रयुक्त	पउञ्जइ
पउत्थ	*प्रवस्त=प्रोषित	[पवसइ (?)]
पइण्ण	प्रकीर्ण	[पइरिज्जइ, पकिरी अदि (?)]

क्षान्त रूप	संस्कृत मूल	लट् रूप
पडियएण	प्रतिपन्न	पडियज्जदि
पएणत्त	प्रज्ञप्त	पएणवेइ
पत्त	प्राप्त	पावइ, पावेदि
महा० पलाइअ, शौ० पलाइद महा० पलाअ जैम० पलाए	पलायित *पलात	पलायइ
पविट्ठ	प्रविष्ट	पविसदि
पसत्थ	प्रशस्त	पससदि
पीद	पीत	पिवदि
पुट्ठ, पुच्छिद	पृष्ट	पुच्छदि
पुट्ठ	स्पृष्ट	फुसइ
बद्ध	बद्ध	बन्धइ
बुद्ध	बुद्ध	बुज्झइ
भट्ठ	भ्रष्ट	——
भिएण	भिन्न	भिन्दइ
महा० भीअ, शौ० भीद	भीत	बिहेइ, शौ० भाअदि
शौ० भूद	भूत	भोदि
भुत्त	भुक्त	भुञ्जदि
मुक	*मुक, मुक्त	मुञ्चदि
महा० मुअ, मअ, शौ० मुद	मृत	मरदि
मूढ	मूढ	मुज्झइ
रअ	रत	रमइ
रत्त	रक्त	रज्जदि

प्राकृत रूप	संस्कृत मूल	लट् रूप
रइअ	रचित	रच्चइ, शौ० रच्चादि
रुट्ठ	रुष्ट	रुसइ
महा० रुएण, शौ० रुदिद	रुदित	महा० रुअइ, शौ० रुदि, रोअदि
रुद्ध	रुद्ध	रुन्धेदि
लग्ग	लग्न	लग्गइ, शौ० लग्गदि
लद्ध	लब्ध	लहइ
लीण, लिअ	लीन	लेइ
लीढ	लीढ	लिहइ
विण्णत्त	विज्ञप्त	विण्णवेइ
वूढ	ऊढ	वहइ
समासत्थ	समाश्वस्त	[समस्ससइ (?)]
सिट्ठ	शिष्ट (√शास्)	सासइ
सित्त	सिक्त	सिञ्चइ
सिद्ध	सिद्ध	सिज्झइ
सुत्त	सुप्त	सुवइ
सुद (महा० सुअ)	श्रुत	सुणेदि
सुद्ध	शुद्ध	सुज्झइ
महा० हअ, शौ० हद	हत	हणइ
हअ	हृत	हरदि
महा० हूअ, शौ० भूद	भूत	होइ[1]

(१) हेमचन्द्र के कथनानुसार महा० होइ, हुवइ, हवइ, भवइ शौ० हुवदि, भवदि, हवदि, भोदि, होदि रूप हो सकते हैं।

§ १२६—प्राकृत में लट् लकार के असाधारण रूप।

प्राकृत में लट् लकार के साधारण रूप पुच्छदि और करेदि की शैली पर बनते हैं (§ ११४), और वे (१) या तो संस्कृत के भ्वादिगणीय[1] लट् के विकार होते हैं या (२) इतर-गणीय धातुओं के भ्वादि-लट् की शैली पर बनाए हुए रूपों के विकार। अत हमें ये रूप नियमित ही समझने चाहियें—जैसे [१] गच्छदि, इच्छदि, सिञ्चदि, मुञ्चदि, मरदि, सुमरदि, पिबदि, फुसदि, कुप्पदि, एच्चदि, कधेदि, तक्केदि, चिन्तेदि, [२] हणदि [हन्], ससदि [√श्वस्)।

असाधारण रूपों के अन्तर्गत हैं—[१] जो रूप नियमित न हों—जैसे ठाइ, [२] जो धातु ए-गण के बना लिये हों—करेदि, [३] जो स० भ्वादि गण के रूपों से प्राकृत में कुछ विलक्षण हो गए हों, [४] नासिक्य अनुबन्ध वाले धातु, [५] जिन धातुओं में ण् गण चिह्न हो अथवा अनुरूपता से आ गया हो, [६] संस्कृत के इतर रूपों के विकार; [७] अनियमित।

§ १२७—(१) प्र० पु० एकव० के ऐसे रूप जिन के अन्त में आइ (शौ० आदि) है, वे (क) स्वर सन्धि का परिणाम हैं—अप० खाइ (=खाअइ)=खादति, या (ख) संस्कृत अदादि-गणीय रूपों के अवशेष हैं। जैसे—महा० वाइ=वाति (वाअइ, शौ० वाअदि रूप भी), महा० पडिहाइ=प्रतिभाति (शौ० पडिहाअदि), शौ० भादि=भाति, विहादि=विभाति, या (ग) अनुरूपता से बन जाते हैं—महा० ठाइ=स्थाति=तिष्ठति (शौ० चिट्ठदि) इसी प्रकार आकारान्त धातुओं से—धाइ या धाअइ, गाइ, झाइ=(आर्ष ध्याति)

---

[1] दिवादि, तुदादि और चुरादि सहित।

सम्भिन्नरूप इतर रूप—शौ० भोदि=भवति, होदि=भवति।

√दा धातु के देदि, देमि, दमि देमि आदि रूप हैं। देदि का मूल* ददाति है—देइ शौ० भविष्य० दइस्सं। पूर्वकालिक दइअ।

§ १२८—(२) ए-अन्त की शैली पर रूप बनाने वाले धातु—जैसे-करेदि=करोति (परन्तु प्रेरणा० कारेदि=कारयति), सुणेदि (प्रेरणा० सोआवेदि), हसेदि सुमरदि, जिणादि, सुणेदि, मरेदि, धुवेदि आदि।

§ १२९—(३) √रुद धातु से रुवइ (भ्वादि शैली) रुवइ (तुदादि शैली) और रोवइ, तुलनात्मक-रोविउ। शौ० रोदिदु रुद् धातु से बना है।

√धौ—महा० धुवइ, अमा० धोवइ, धोवेइ, शौ० धोअदि।

√भू से महा० होइ, हवइ शौ० भोदि होमि, होमि, विधिलिङ् भवे भवेअ, तुलना० भविदु।

रुच्चदि=*रुच्यते (दिवादि गण की शैली पर), रोअदि, माग० रोअदि रूप भी होते हैं। इसी प्रकार—लग्गदि, वज्जदि (√व्रज्), जुज्जदि=*युज्यति (आर्ष युञ्जति)।

§ १३०—(४) छिद् से छिन्दइ, छिन्ददि बनता है। यह रूप स्पष्ट सिद्ध है क्यों कि संस्कृत में लट् के रूपों में नासिक्य होता है। इसी प्रकार रुधादि गण के इतर धातुओं के रूप—भिन्दइ, भञ्जइ, मुञ्चदि।

√लभ् धातु के लम्भइ रूप का नासिक्य संस्कृत के लभन्त प्रयोग में भी दिखाई देता है। (आर्ष लम्भति)।

मुञ्चदि (महा० मुञ्चइ) साधारण है परन्तु महा० में मुचसि=*मुचामि रूप भी पाया जाता है।

§ १३१—(५) ग रहता है—चिणइ, शौ० चिणेदि=चिनोति; कुणइ=वै० कृणोति; सुणेदि, महा० सुणइ=शृणोति; जाणइ, शौ० जाणादि, न आणादि=न जानाति, किणइ=क्रीणाति; गेण्हदि=गृह्णाति, शौ० सक्कणोमि, सक्कुणोमि=शक्नोमि, धुणइ (शौ० धोअदि, पा० धोवति। अनुरूपता से जिणइ, शौ० जअदि (√जि), थुणइ (√स्तु)।

§ १३२—(६) गत्यर्थ √इ के एदि (महा०एइ), एसि, एमि, एन्ति आदि रूप बनते हैं। सत्ता अर्थ √अस् के अत्थि, सि, म्हि, सन्ति, त्थ, म्ह (महा० म्हो) रूप होते हैं।

(अत्थि रूप सब पुरुषों और वचनों में प्रयुक्त होता है)।

√भी—महा० बिहेइ शौ० भाअदि।

(७) भणादि (क्र्यादि गण की भांति भ-णा मि समझ कर), भणेदि रूप भी, सुणादि=सुणेदि।

√स्वप् का सुव् हो कर सुअइ, और फिर रुअइ • रोवइ की अनुरूपता से सोवइ, शौ० सोवदि रूप भी बनते हैं।

§ १३३—इतर लकारों के अवशिष्ट रूप।

लङ्—आसी=आसीत् (यह सब पुरुषों तथा वचनों में प्रयुक्त होता है)

विधिलिङ्—अमा० सिया=स्यात्, कुज्जा=कुर्य्यात्, बूया=ब्रूयात्, सक्का= वै० शक्यात् (पिशल् § ४६५)।

आशीर्लिङ्—महा० अमा० होज्जा=भूयात्, अमा० देज्जा=देयात्।

लुङ्—अमा० अकासि, (-सी)=अकार्षीत्, अकार्षी ।

बहु० प्रत्यय—इंसु—अकरिंसु (देखिये पाली रूप)

लिट्—अमा० आहु=आह , बहु० आहंसु।

§ १३४—भविष्य (लृट्) के असाधारण रूप।

इस्सदि (या महा० इहिइ) वाले लृट् के साधारण रूप प्रत्यय रहित लृट् से बनाए जाते हैं—पुच्छिस्स कधिस्स, महा० पुच्छिइ, कहेइ (§ ११८)। संस्कृत की भांति धातु से भी बनते हैं—महा० णेहिइ=नेष्यति, परन्तु शौ० णइस्सदि, शौ० गमिस्सदि।

√भू के लृट् के अनुसार यह रूप हैं—शौ० भविस्स, हुविस्स, माग० हुविश्श, महा० होहिइ, होस्स।

√स्था—महा० ठाहिइ (लृट्-ठाइ); शौ० चिट्ठिस्सदि [लट् चिट्ठदि]। दूसरे रूप स०-स्यति आदि के विकार हैं और विशेष कर महा० अमा० में पाए जाते हैं—दच्छं=द्रक्ष्यामि [प्र० पु० एक० दच्छिइ, म० पु० एक० दच्छिसि, प्र० बहु० दच्छिन्ति]; मोच्छं (√मुच्), वेच्छं (√विद्), रोच्छं (√रुद्); वोच्छं (√वच्)। दच्छं आदि रूप शौ० और माग० में प्रयुक्त नहीं होते। शौ० पेक्खिस्सं (महा० पेच्छिस्स), रोदिस्स, वेदिस्स।

णिजन्त तथा इतर ए गण के धातुओं का लृट् (१) संस्कृत की भांति य का लोप करने से बनता है—शौ० कधइस्सिं, मोआवइस्ससि=मोचापयिष्यसि; णिअट्टइस्सदि=निवर्तयिष्यति, (२) महा०, अमा० में ए रहता है वट्टेहामि=वर्तयिष्यामि, (३) अय=ए का लोप करने से—महा० कहिस्स, शौ० कधिस्स, महा० पुलोइस्स=प्रलोकयिष्यामि, शौ० तक्किस्सदि=तर्कयिष्यति, सुस्सूसइस्स=शुश्रूषयिष्यामि; माग० मालिश्शशि=मारयिष्यसि।

√दा का शौ० दइस्स, महा० दाह। √कृ का शौ० करिस्स, और महा० में काहं रूप भी होता है।

§ १३५—असाधारण कर्मवाच्य रूप।

(क) जो रूप शौ० इअ और इज्ज न रखने से असाधारण दिखाई पड़ते हैं वे वास्तव में संस्कृत रूपों के विकार हैं (§ ११६)। जैसे—जुज्जदि=युज्यते; गम्मइ=गम्यते। और उदाहरण—खिप्पइ (क्षिप्), लुप्पइ (लुप्), भज्जइ (भज्), वज्झइ (वन्ध्, ध्य 7 ज्झ § ४४), रुज्झइ (रुध्), आरब्भइ (आ+रभ्), गिज्जइ (गा), खज्जइ (खाद्), लब्भइ, शौ० लब्भदि (लभ्), छिज्जइ (छिद्), भिज्जइ। (भिद्), भुज्जइ (भुज्), मुच्चइ (मुच्), वुच्चइ (वच्), तीरइ (तृ), कीरइ (कृ)।

(ख) दूसरे उदाहरण भी अप्रचलित धातु अथवा रूपों के विकार हैं। जैसे—वुब्भइ=उह्यते (√वुभ्), दुब्भइ=दुह्यते, लिब्भइ=लिह्यते, रुब्भइ=रुध्यते, घेप्पइ=गृह्यते, उ, ऊ के स्थान में उव् करने से—रुव्वइ=*रुव्यते (शौ० रोदीअदि), सुव्वइ, शौ० सुणीअदि (श्रु) थुव्वइ (स्तु); धुव्वइ, धुणिज्जइ (धू)। इसी प्रकार के हैं चिव्वइ (चि के बदले चीव्) इस का चिणिज्जइ, [1]शौ० चीअदि भी बनता है, जिव्वइ (जि के बदले जिव्)।

(ग) आधप्पइ णिजन्त कर्मवाच्य है=आधाप्यते, इसी प्रकार विधप्पइ है।

(घ) जम्मइ (जन्म लेता है) जम्म=जन्मन् शब्द से बना है। इसी प्रकार हम्मइ (√हन्), खम्मइ [√खन्] बने हैं।

---

(1) वैयाकरण चिव्वइ, जिव्वइ को चि, जि धातुमूलक मानते हैं। ये उ,-ऊकारान्त धातुओं की शैली पर बने हैं। परन्तु पिशल् (§ ५३७) का कहना है कि चिव्वइ चिव् धातु से बना है जो धातुपाठ में ग्रहण करने या ढापने के अर्थ में पाया जाता है। इसी प्रकार जिव्वइ जिव् धातु से जिस का अर्थ है प्रसन्न करना।

सुम्मइ [√सु] सिम्मइ [√सि] के लिये कोई समाधान नहीं सूझता।

नोट—शौरसेनी और मागधी में प्राय: प्रत्यय सहित लट् से कर्मवाच्य रूप बनाए जाते हैं। जैसे—महा० लब्भइ, शौ० लब्भीअदि तथा लम्भीअदि; महा० सुणइ, शौ० सु-णीअदि; महा० सुव्वइ, शौ० सुणीअदि, माग० सुणीअदि, महा० रुव्वइ, शौ० रोदीअदि; महा० भुज्जइ, शौ० भुञ्जीअदि; महा० कीरइ शौ० करीअदि [अमा० कज्जइ=*कर्यते], महा० णज्जइ, शौ० जाणीअदि; महा० भण्णइ, शौ० भणीअदि।

§ १२६—तुमुन्त के विविध पर्याय।

इस का साधारण रूप, विशेष कर शौरसेनी में, प्रत्यय सहित लट् के परे इतुम् [महा० इउं, शौ० इदु] लगा कर बनाया जाता है। जैसे-गच्छिदु (गम्), अणुचिट्ठिदु [स्था], गेण्हिदुं [ग्रह्], जाणिदुं [ज्ञा] दहिदु [दह्], लिपिदु (लिप्), हरिदु (हृ)। णिजन्त—कारेदु धारेदु, दंसेदु=दर्शयितुम्। कभी अय का ए नहीं बनता—शौ० णिव्वत्ताइदु=निर्वर्तयितुम्। कभी अकारान्त धातु की भांति—धारिदु, मारिदु, कधिदु।

तुम् प्रत्ययान्त संस्कृत रूपों के विकार जो शौरसेनी की अपेक्षा माहाराष्ट्री में बहुत मिलते हैं। जैसे—शौ० ठादु [स्था]; पादु [पा='पीना']; कादु महा० काउ [कृ]; गन्तु [गम्]। महा० मोत्तु=मोक्तुम्, दट्ठु=द्रष्टुम्, दाउ [दा], णेउ [नी]; पाउ, शौ० पादु, जैम० पिविउ, [पा], सोउं=श्रोतुम्, जेउं, अमा० जिणिउं, [जि], लद्धु [लभ्], घेत्तु [ग्रह्], छेत्तु [छिद्], भेत्तु [भिद्], मोत्तु [मुच्],

णाउ [ज्ञा] । इसी प्रकार बने हैं घेत्तु [§ १६]=*घृप्तुम्=ग्रहीतुम्, सोत्तु=*सोप्तुम्=स्वपितुम्, देखिये रोत्तु=रोदितुम्।

वच् धातु का महा० में वोत्तु, शौ० में वत्तु बनता है।

अर्धमागधी में तुम् प्रत्ययान्त रूप बहुधा पूर्वकालिक क्रिया के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं—णाउ का अर्थ है 'ज्ञात्वा, कर के'। तुम्-अर्थ प्रकट करने के लिये इस प्राकृत में त्तए या इत्तए प्रत्यय होता है। चिट्ठित्तए [स्था], गच्छित्तए [गम्]।

ये रूप वैदिक भाषा के चतुर्थी विभक्ति के रूपों से बने हैं जो तुम् अर्थ में प्रयुक्त होते थे।

§ १२७—तव्य, य, नीय प्रत्ययान्त विविध रूप। [§ १२१]

[१]—[क] प्रत्यय रहित लट् अथवा [ख] धातु के परे तव्य लगाने से—[क] पुच्छिदव्व, गच्छिदव्व, होदव्व [§ ४] या भविदव्व, अणुचिट्ठिदव्व, दादव्व, सुणिदव्व, जाणिदव्व, गेण्हिदव्व।

[ख] सोदव्व, महा० सोअव्व (श्रु), घेत्तव्व, कादव्व, महा० काअव्व (कृ) [§ ६३]।

(२)—नीय (महा० अमा० -अणिज्ज शौ० माग० -अणीअ) लगाने से—शौ० करणीअ, दसणीअ, [लट् से-पुच्छणीअ, महा० करणिज्ज दसणिज्ज।

[३] -य लगाने से—कज्ज [१ ५०]=कार्य, अमा० वोज्झ=वाह्य। लट् से—गेज्झ [§ ७०]=*गृह्य जो प्रत्यय रहित लट् *गृह् से बना है[२]।

---

१ महा० गहिउ, अमा० गिण्हिउ, जैन० गेण्हिउ, शौ० गेण्हिदु रूप भी हैं।

२ यह पिशल् का मत है। पहिले ग्राह्य का *गज्झ बना, फिर गेण्हदि, घेत्तु आदि की अनुरूपता से अ का ए बन कर गज्झ का गेज्झ हो गया।

अध्याय १०

प्राकृतों के विविध भेद और उन के लक्षण।

पिछले छः अध्यायों में विशेषतया शौरसेनी और महाराष्ट्री के वर्णविकार तथा रूपरचना के नियम दिये गए, इतर प्राकृतों का प्रसङ्ग वश कुछ वर्णन किया। अब इस अध्याय में इतर प्राकृतों के विशेष लक्षण बतलाए जायेंगे।

मागधी।

कई कारणों से यह प्राकृत अधिक ध्यान देने के योग्य है परन्तु खेद है कि इस का ज्ञान प्राप्त करने के साधन विस्तृत नहीं। इस के अन्दर उच्चारण अर्थात् वर्णविकार के ऐसे भेद पाए जाते हैं जिन का समाधान करना कुछ आसान बात नहीं।

स के स्थान में श—यह बात तो पूर्वभारती अर्थात् गौडीय भाषाओं में आज भी पाई जाती है। यहां के लोग सामवेद, सीता आदि का न केवल उच्चारण प्रत्युत लेख भी शामवेद, शीता आदि करते हैं। चूंकि और प्राकृतों में केवल दन्त्य स होता है इस लिये तालव्य श से पाठक झट मागधी को पहिचान सकते हैं। झट जाना जाता है कि भविश्शदि शब्द शौरसेनी भविस्सदि का मागधी रूप होगा। इसी प्रकार तस्सि का तश्शि सा का शा, पुत्तस्स का पुत्तश्श इत्यादि।

र के स्थान में ल—यह विकार बहुत विचित्र है विशेष कर शब्द के आदि में—लाआणो=राजान, पुलिशे=शौ० पुरिसो=पुरुष, गलुड=गरुड, चालुदत्त=चारुदत्त, ओवालिदशलील=अपवारित-शरीर, शमल=समर, णगलन्तल=नगरान्तर।

र और ल का विनिमय इतर प्राकृतों में (§ २६), तथा पाली (तलुणो=तरुण) में भी पाया जाता है। यह विनिमय वेद में भी मिलता है जहा अरकृणोति के स्थान में अल √कृ, और √रुच् के स्थान में √लुच् मिलता है। और भाषाओं में इस के बहुत से उदाहरण मिलते हैं और इस बात का निर्णय करना कि मूलवर्ण कौनसा है प्राय कठिन होता है।

एक ऐसी आर्यभाषा का मिलना जिस में रेफ बिलकुल न हो बड़ी आश्चर्यजनक बात है। विहार और बगाल प्रान्त की आधुनिक भाषाओं में हर एक र के स्थान में ल नहीं हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि मागधी का र के स्थान में ल उच्चारण करना केवल कवि समय है जो इस बात की सूचना करता है कि पूर्वी भारत में ल बोलने की अधिक प्रवृत्ति थी। चूकि मागधी को बहुत ही नीच पात्र बोलते हैं, शायद यह विनिमय अनार्य लोगों के उच्चारण की नक़ल है जिन की भाषा में चीनी भाषा की न्याई र वर्ण नहीं था।

परन्तु यदि हम अशोक महाराज की धर्मलिपियों (वि० पू० २५० वर्ष) की ओर ध्यान करें तो लिपियों की पूर्वी भाषा में यह विकार पाया जाता है। यह भाषा पाटलिपुत्र के राजदरबार की भाषा थी जो इलाहबाद और देहली की धर्म लिपियों में तथा कुछ भेद के साथ कालसी की धर्मलिपियों में पाई जाती है।

य रहता है—बलकि ज के स्थान में भी य आता है। यधा=शौ० जधा (§ १); याणदि=जानाति।

याणिद्व्व=शौ० जाणिदव्व; यणवद=जनपद।

यायदे=जायते।

(झ का य्ह हो जाता है—य्हत्ति=झटिति)।

द्य, र्ज, य, ये सब य्य बन जाते हैं जिस का परिणाम यह है कि जहां शौरसेनी में ज्ज है वहा मागधी में य्य है। अय्य=अद्य या आर्य (शौ० अज्ज); अवय्य=अवद्य, मय्य=मद्य (ध्य का य्ह बनता है—मय्हण्ण=शौ० मज्झण्ण § ७४)। अय्युण=अर्जुन, कय्य= कार्य (शौ० कज्ज § ४०), दुय्यण=दुर्जन।

इन उदाहरणों से प्रतीत होता है कि मागधी में य का उच्चारण तालव्य ईषत्स्पृष्ट था जो अंग्रेजी शब्द yes (येस्) में y (वाई) के उच्चारण से भिन्न था। गान्धार देश में विदेशी भाषा के एक वर्ण विशेष को जिसे यूनानी लिपि में z (जैड) से प्रकट करते थे 'य' के प्राचीन चिह्न से प्रकट किया जाता था।

इस लिये पर्जीज के सिक्कों पर षष्ठी विभक्ति का रूप अयस है। बंगला भाषा की कई बोलियों में ज अक्षर का उच्चारण z (ज़) या zh (झ़) होता है जैसा कि अंग्रेज़ी शब्द zeal (जील्) और azure (एयर्) में z (जेड्) का उच्चारण होता है। कई शब्दों में 'य' का भी यही उच्चारण होता है। जैसे—बंगला में येशब्द को zhe ये उच्चारण करते हैं।

ण्य, न्य, ज्ञ और ञ्ज का ञ्ञ हो जाता है। यथा—

पुञ्ञ=पुण्य (शौ० पुण्ण § ७८), अञ्ञ=अन्य (शौ० अण्ण), कञ्ञका=कन्यका, लञ्ञो=राज्ञ (शौ० रण्णो § ६६), अञ्ञलि= अञ्जलि (शौ० में ञ्ज रहता है)।

स्वरमध्यवर्ती च्छ का श्च हो जाता है[1]। यथा—

गश्च=गच्छ, इश्चीश्चदि=इच्छति (* इच्छयते), उश्चलदि=उच्छलति, पुश्चदि=पृच्छति। तिलिश्चि पेस्कदि=महा० तिरिच्छि पेच्छइ=तिर्यक् प्रेक्षते।

यदि संयुक्त अक्षर में पूर्व वर्ण श् ष् स् हो वह वैसे बना रहता है। इस विषय में वैयाकरणों का मतभेद है कि कौन ऊष्म वर्ण मागधी में होगा। लिखित प्रतियों के वर्णविन्यास में बहुत विरोध है, कुछ निश्चय नहीं किया जा सकता।

ष्क—हेमचन्द्र के कथनानुसार शुष्क का शुस्क हो जाता है परन्तु पुस्तकों में शुश्के=शुष्क, तुलुश्क=तुरुष्क आदि मिलते हैं।

ष्ट, ष्ठ का स्ट (या श्ट) हो जाता है—कष्ट का कस्ट या कश्ट हो जाता है, सुष्ठु का शुस्टु या शुश्टु।

ष्प, ष्फ>स्प, स्फ। णिस्फल=निष्फल (पुस्तकों में णिप्फल, १ ३८)।

स्क, स्ख—पस्खलदि=प्रस्खलति।

स्त, स्थ>स्त (या श्त)—हश्ते या हस्ते=हस्त (महा० शौ० हत्थो § ३८), उवास्तिद्=उपस्थित।

---

1 चूंकि जिन सं० क्रियाओं में च्छ पाया जाता है वे इण्डोयोरुपियन स्क वाले रूपों से बनी हैं, इस लिये मागधी श्च वैदिक च्छ की अपेक्षा अधिक प्राचीन हो सकता है, उच्चारण चाहे इस का कुछ ही हो। परन्तु मागधी में हर प्रकार के च्छ को श्च हो जाता है। जैसे उश्चलदि=उच्छलति, मश्चली (=मत्स्य+ली—प्रा० मच्छ, हिं मछली)। लेकिन यदि पहिले पहिल इच्छदि आदि के च्छ को माग० में श्च हुआ तो शीघ्र ही यह प्रवृत्ति उन शब्दों में भी फैल गई जहां शौरसेनी आदि में च्छ था।

स्प—बहस्पदि या बिहस्पदि=बृहस्पति।

क्ष>स्क—पेस्कदि=प्रेक्षते; कभी क्ष>ह्क—पह्क=पक्ष। हेमचन्द्र विसर्ग या जिह्वामूलीय के साथ पᳵक, पᳵख भी लिखते हैं।

वास्तव में मागधी उच्चारण न 'स' था न 'श' जैसा कि ये वर्ण मध्यदेश में उच्चारण किये जाते थे। इस प्रकार के संयुक्त अक्षर प्राकृत में साधारण नहीं थे अतः लिखित पुस्तकों में प्रायः स्प आदि पाए जाते हैं।

र्थ>स्त या श्त—तिस्त=तीर्थ, अश्त=अर्थ।

यह केवल अनुरूपता से हो सकता था। जैसे—शौ० हत्थो माग० हस्ते शौ० अत्था माग० अस्ते।

रूपरचना में केवल दो बातें उल्लेखनीय हैं—१मा ए० के रूप एकारान्त—शे हस्ते=शौ० सो हत्थो और हगे=अहम् (§ १०७)। और बातों में मागधी की रूपरचना शौरसेनी से बहुत ही मिलती है।

नाटकों में मागधी की कई उपप्राकृतें पाई जाती हैं।

शाकारी—इसे मृच्छकटिक में राजा का साला बोलता है।

विशेषताएं—(१) तालव्य स्पर्शों के पूर्व लघुप्रयत्न यकार—यचिष्ठ=तिष्ठ (२) ऋकारान्त धातुओं के क्त रूपों में 'ड'—मडे=मृत (यह बात अमा० में भी पाई जाती है)। (३) षष्ठी एक० का प्रत्यय आह और अश—चालुदत्ताह (४) ७मी एक० का आहि—पवहणाहि=प्रवहणे। (५) संबोधन बहु०—आहो (वैदिक आसः)। पिछली तीन विशेषताएं अपभ्रंश में भी पाई जाती हैं।

चाण्डाली और शाबरी भी मागधी की उपप्राकृतें हैं।

---

१ मार्कण्डेय प्रायः यह बातें मागधी और व्राचड अपभ्रंश के लिये लिखी है—यचिर=चिरम्।

मृच्छकटिक में माथुर तथा द्यूतकार एक प्राकृत बोलते हैं जिसे पिशल् ढक्की के नाम से पुकारता है। वह इसे मागधी की उपप्राकृत मानता है। सर् जार्ज ग्रियर्सन ने सिद्ध किया है कि इस का नाम "टाक्की" अधिक शुद्ध है और यह स्यालकोट के निकट टक देश में बोली जाती थी[२]।

अर्धमागधी।

प्रो० जेकोबी इसे "जैन प्राकृत" पुकारता और महाराष्ट्री का प्राचीन रूप मानता है। भारतीय वैयाकरण प्राचीन जैन सूत्रों की भाषा को "आर्ष" (ऋषि सम्बन्धी) कहते हैं। हेमचन्द्र कहता है कि मेरे व्याकरण के सब नियमों के आर्ष में अपवाद होते हैं। एक और वैयाकरण त्रिविक्रम हुआ है। उस ने अपने व्याकरण में आर्ष को ग्रहण नहीं किया क्योंकि इस में शब्दों के रूढ अर्थ होते हैं और प्रकृति प्रत्यय से अर्थ की सूचना नहीं होती अर्थात् वे संस्कृत से नहीं निकले।

रुद्रट कृत काव्यालंकार (२।१२) पर टीका करते समय नमिसाधु प्राकृत शब्द को प्रकृति से निकालता है जिस का अर्थ है "व्याकरण नियमों से अनियन्त्रित साधारण लोक भाषा"। वह इस की व्युत्पत्ति "प्राक्कृत" (पूर्वनिर्मित) ऐसे भी करता है क्योंकि जैन सिद्धान्त ग्रन्थों की अर्धमागधी प्राकृत देवताओं की भाषा है। यथा—

आरिस वयणे सिद्ध देवाण अद्धमागहा वाणी।

स्पष्ट है कि नमिसाधु जैन था। जैनों का तो विश्वास है कि अर्धमागधी प्राकृत जिस में भगवान् महावीर स्वामी उपदेश देते थे मूल भाषा है जिस में से दूसरी सब भाषाएं निकली हैं।

---

२ पंजाब के पहाड़ी इलाके में "टाकरी" लिपि प्रचलित है जो शायद टक्क देश की सूचना देती है।

सिद्धान्त के गद्य और पद्य भाग की भाषा में कुछ भेद है। पद्य में १मा एक० प्राय ओकारान्त (न कि एकारान्त जो माग० की भाति अमा० का लक्षण चिह्न है) होता है। पद्य में पूर्वकालिक क्रिया के प्रत्यय तूण, ऊण होते हैं परन्तु गद्य में अधिकतया त्ता, त्ताण (§ १२२)। कुछ और भेद—पद्य में मेच्चु, गद्य में मिलक्खु; पद्य कुणइ गद्य कुव्वइ (=*कुर्वति)। गद्य की अपेक्षा पद्य की भाषा महाराष्ट्री से कुछ अधिक समानता रखती है।

अर्धमागधी इन बातों में मागधी से मिलती है—

१मा एक० का एकारान्त रूप, ६ष्ठी एक० तव, ऋकारान्त धातुओं के 'ड' वाले क्तान्त रूप; क को ग आदेश—असोग (यह विकार माग० में बहुत कम होता है); सबोधन एक० का दीर्घ आ (अपभ्रंश में बहुत है)।

मागधी से इस का प्रधान भेद यह है कि इस में स और र दोनों होते हैं। साधारणतया पाली की भाति अमा० में नाटकीय प्राकृतों की अपेक्षा प्राचीन रूपों का अधिक प्राचुर्य है। भारतीय नाट्यशास्त्र, तथा साहित्यदर्पण के अनुसार अमा० को दास, दासी, राजपूत तथा श्रेणिपति बोलते थे। नाटकों में जैन भिक्षुओं को अमा० बोलनी चाहिये थी परन्तु वे साधारण मागधी बोलते हैं।

अमा० कई बातों में महाराष्ट्री से भेद रखती है[1]।

उच्चारण—१ एव और अवि (=अपि) के पूर्व अम् का आम् हो जाता है।

२ "इति वा" में और प्लुत स्वर के परे 'इति' का इ हो जाता है।

---

[1] प्रो जकोबी का ख्याल था कि सिद्धान्त की भाषा महाराष्ट्री का प्राचीन रूप है (कल्प सूत्र, अनुवाद, सेक्रिड बुक्स आफ दी ईस्ट, पुस्त २२)। पिशल् इस मत के विरुद्ध है § १८।

३ प्रति के इ का लोप—पडुप्पन=प्रत्युत्पन्न(और प्राकृतों में विरला)

४ चवर्ग के स्थान मे तवर्ग—तेइच्छा=चिकित्सा

५ अद्दा=यथा

६ सन्धिव्यञ्जनों का प्रयोग (§ ७८)

संज्ञा की रूपरचना—१ ४थी एक० -ताए वाले (§ ६२)
२ ३या एक०–सा (§ १०४)
३ ७मी एक० सिं (§ ९२)

क्रिया की रूपरचना—१ √ख्या—आइक्खइ, पा० आचिक्खति, महा० अक्खाइ।
२ कुव्वइ (गद्य में)
३ लुङ् के अवशिष्ट रूप-प्र० पु० बहु० पुच्छिंसु।
४ -ट्टु, इत्तु वाले रूपों का पूर्वकालिक क्रिया की भाति प्रयोग—कट्टु (अर्थ-कृत्वा), अवहट्टु (अर्थ—अपहृत्य), सुणित्तु (अर्थ—श्रुत्वा), जाणित्तु (ज्ञात्वा)।
५ तुमुन् अर्थ में त्तए, इत्तए (§ १३६)।
६ त्ता, त्ताण, च्चा, च्चाण (-ण), याण (-ण) वाले पूर्वकालिक क्रिया के रूप।

जिन बातों में महा० और अमा० मिलती हैं, उन में भी जो महा० में विरली हैं वे अमा० में प्रचुर हैं। मूर्धन्यविधि तथा र के स्थान में ल—ये अमा० में बहुत अधिक हैं।

शब्द कोश में भी प्राय भेद होता है।
प्रकट है कि शौरसेनी से तो अर्धमागधी और भी भिन्न होगी।

जैन महाराष्ट्री।

सिद्धान्त के पीछे के ग्रन्थ उस समय लिखे गए जब जैन धर्म दूर दूर तक फैल चुका था। इस लिये इन ग्रन्थों में इतर प्राकृतों के

चिह्न पाए जाते हैं। श्वेताम्बर जैनों के आगम-वाह्य ग्रन्थ एक ऐसी प्राकृत में हैं जो महाराष्ट्री का रूपान्तर माना जा सकता है यद्यपि इस में अमा० के कई विशेष चिह्न पाए जाते हैं। यथा—तुमुन् अर्थ में -इत्तु, क्त्वा, ल्यप् के लिए इत्ता क के स्थान में ग। इस प्राकृत के प्रयोग का कारण शायद यह है कि जैन धर्म पश्चिम तट की वैश्य जातियों में बहुत प्रिय हो गया था। इस प्राकृत को जैन महाराष्ट्री कहते हैं और प्रो० जेकोबी सकलित प्राकृत पाठावली इसी में है।

जैन शौरसेनी।

दिगम्बर सम्प्रदाय के सिद्धान्त ग्रन्थों की प्राकृत में १मा एक० ओकारान्त होता है तथा त, थ का द, ध बन जाता है। इस कारण इसे जैन शौरसेनी कहते हैं। परन्तु इस में बहुत सी ऐसी बातें पाई जाती हैं जो शौरसेनी में तो नहीं मिलतीं, प्रत्युत महा० या अमा० में मिलती हैं। गुजरात देश की ओर जैन धर्म के कई केन्द्र स्थल थे और वहां शौरसेनी और महाराष्ट्री का आपस में मिलाप हुआ होगा। जैमहा० की अपेक्षा जैशौ० में अमा० की विशेषताएं अधिक पाई जाती हैं, इस का कारण शायद यह है कि जैशौ० कुछ अधिक प्राचीन है।

मुख्य प्राकृतों के जो भेद और समानताएं ऊपर दी गई हैं ज़रूरी नहीं कि उन के आधार पर प्राकृतों का निश्चित वर्गीकरण किया जा सके। एक तो पूर्वी प्राकृत (मागधी) थी दूसरी दक्षिणी (माहाराष्ट्री) और तीसरी मध्यदेशीय [शौरसेनी]। अर्धमागधी को मध्यदेशीय की अपेक्षा दक्षिणी प्राकृत से अधिक समानता है। वर्तमान आर्य भारती भाषाओं की तुलनात्मक परीक्षा के आधार पर हर्नले महोदय ने यह कल्पना की कि एक समय समस्त आर्य भारतवर्ष में दो भाषाएं थीं—एक शौरसेनी और दूसरी मागधी। माहाराष्ट्री के विषय में उस का यह मत था कि यह

कविकल्पित साहित्यिक प्राकृत है और महाराष्ट्र देश में बोली जाने वाली तत्कालीन भाषा से इस का कुछ सम्बन्ध न था। परन्तु प्राकृतों तथा आधुनिक भाषाओं की अधिक पड़ताल करने पर इस मत की पुष्टि नहीं होती।

माहाराष्ट्री तथा जैन माहाराष्ट्री में ऐसे विशेष चिह्न पाए जाते है जिन के अवशेष अब तक मराठी में विद्यमान हैं। और इस बात में कोई सदेह नहीं हो सकता कि माहाराष्ट्री प्राकृत का विकास महाराष्ट्र देश की प्राचीन बोली से हुआ।

ग्रियर्सन् महाशय के पास बहुत से साधन होने से उस ने प्राकृतों को आधुनिक भाषाओं से मिला कर प्राकृतों की स्थानीय बाट की है जो इस भाति है—

केन्द्रीय प्राकृत	शौरसेनी
बाह्य	[पूर्व] मागधी
	[दक्षिण] माहाराष्ट्री
अन्तरीय	अर्धमागधी।

प्राकृतों की यह बाट उचित है क्योंकि शोरसेनी सस्कृत से बहुत मिलती जुलती है और मध्यदेश की भाषा को प्रकट करती है जो वैदिक काल के पश्चात् हिन्दू सभ्यता का केन्द्र था। इस केन्द्र से जो जो स्थान दूरवर्ती थे वहा की भाषा स्वाभाविकतया सस्कृत से अधिक भेद रखती थी। आर्य भाषा बोलने वाली जातियों का भारत वर्ष में प्रवेश किस प्रकार हुआ, इस विषय में जो मन्तव्य है उस के साथ इस बाट का बड़ा सम्बन्ध है। विद्वानों का ख्याल है कि जिन भाषाओं के आधार पर पाणिनीय सस्कृत का जन्म हुआ और फिर जिन से शोरसेनी प्राकृत निकली उन भाषाओं के बोलने वाले आर्यों ने अपने से पूर्व आए हुए आर्यों से कुछ काल पीछे मध्यदेश में बलात्कार प्रवेश किया। जो आर्य पहिले आए थे उन की सन्तान की भाषाओं से बाह्य भाषाए निकली हैं।

यद्यपि भाषा सम्बन्धी कतिपय विषयों का समाधान करने वाले इस सिद्धान्त विशेष के पक्ष तथा विरोध में बहुत कुछ कहा जा सकता है, तथापि हम इस सिद्धान्त को न मानते हुए भी प्राकृतों की इस बाट को मान सकते हैं।

इस बाट में एक त्रुटि दिखाई पड़ती है और वह है अर्धमागधी का स्थान। यदि अर्धमागधी अवध प्रान्त में बोली जाती थी तो स्थूलतया यह प्राकृत आधी मागधी और आधी शौरसेनी होनी चाहिये थी। अब जो हम मागधी को देखते हैं तो वह अपने उच्चारण की विचित्रता के अतिरिक्त शौरसेनी से बहुत ही थोड़ा भेद रखती है। अगर हम शौरसेनी में १मा एक० एकारान्त, किसी२ शब्द में 'र' के स्थान में 'ल', 'स' के स्थान में 'श' और मागधी की कुछ उच्चारण विशेषताएं ले आवें तो एक ऐसी प्राकृत बन जायेगी जो उपर्युक्त बाट में तो ठीक बैठेगी परन्तु जैन सूत्रों की असली अर्धमागधी से बहुत भिन्न होगी। इस में शक नहीं कि पूर्वी हिन्दी तो पश्चिमी हिन्दी और बिहारी भाषा के मध्यवर्ती है और इस में दोनों भाषाओं की कुछ कुछ विशेषताएं पाई जाती हैं, परन्तु अर्ध मागधी प्राकृत में यह बात दिखाई नहीं देती अर्थात् न तो इस का वह स्थान है और न वह पूर्वी हिन्दी की मूल प्रकृति प्रतीत होती है।

मगर यह भी याद रखना चाहिये कि उपर्युक्त बाट प्रधानतया लोक भाषाओं की है जिन के आधार पर शिष्ट भाषाएं बनीं। शिष्ट प्राकृतें सभी एक समय पर नहीं बनीं इस लिये वे तत्कालीन लोक भाषाओं का स्वरूप प्रकट नहीं करतीं। शौरसेनी की अपेक्षा अर्ध मागधी स्पष्टतया पुरानी है। यह मत भी प्रकट किया गया है कि महाराज अशोक की पूर्वी धर्म लिपियों की भाषा को अर्धमागधी का पुराना रूप समझना चाहिये। प्रो० लूडर्स इसे पुरानी अर्ध मागधी ही कहता है। ख्याल किया जाता है कि यह मौर्य दरबार में प्रचलित भाषा थी। यह भी मन्तव्य है कि जिस भाषा में भग

वान् बुद्ध का उपदेश पहिले पहिल लेखबद्ध हुआ वह इस से बहुत ही मिलती थी। पाली और संस्कृत त्रिपिटक पीछे से बने।

यह भाषा जो समग्र गङ्गा दोआब में दूर दूर तक बोली जाती थी न तो वह शुद्ध मागधी ही हो सकती है और न शुद्ध शौरसेनी ही। यह भी ज़रूरी नहीं कि इस का स्वरूप सर्वथा काशी की भाषा जैसा हो। दोनों सीमाओं के अन्तर्गत मध्यप्रदेश की भाषा के आधार पर यह बनी होगी। पीछे से जब जैन धर्म का केन्द्र पश्चिम की ओर चला तब इस भाषा ने भी माहाराष्ट्री का कुछ रंग पकड़ लिया होगा जैसा कि जैन सूत्रों की अर्धमागधी में हम देखते हैं। इसी समय कुछ ऐसी घटनाएं हुईं जिन से बौद्ध त्रिपिटक का पाली भाषा में अनुवाद किया गया।

पैशाची प्राकृत।

जिन भाषाओं का अब तक वर्णन हुआ पैशाची उन से बाहिर रहती है। पैशाची शब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है–(१) भूत भाषा अर्थात् भूतों की भाषा के लिये, (२) कई एक असभ्य भाषाओं के लिये जिन में कुछ अपभ्रंश हैं (३) वैयाकरणों की (ख़ास कर हेमचन्द्र की) पैशाची भाषा के लिये जिस की उपभाषा चूलिका पैशाची (चू० पै०) है। इस पैशाची का स्वरूप कुछ प्राचीन प्रतीत होता है। इस की मुख्य विशेषता है घोष स्पर्शों के स्थान में अघोष स्पर्शों का होना—तामोतर=दामोदर, चू० पै० नकर=नगर, राचा=राजा, खम्म=धर्म, कन्तप्प=कन्दर्प।

'ण' का 'न' और 'ल' का 'ळ' हो जाता है। 'य' वैसा ही रहता है। स्वरमध्यवर्ती व्यञ्जनों का लोप नहीं होता। महाप्राण स्पर्शों को ह आदेश नहीं होता। ज्ञ, न्य का ञ्ञ हो जाता है जैसा मागधी में और शायद प्रत्येक प्राकृत के प्रारम्भ काल में।

इस प्राकृत को बोलते कौन थे? शाहबाजगढ़ी की अशोक धर्म लिपि में इस प्राकृत की कुछ विशेषताएं पाई जाती हैं। दन्तकथा के अनुसार गुणाढ्य ने अपनी बृहत्कथा पैशाची प्राकृत में रची। यह कथा १२ वा वि० शताब्दी में काश्मीर में प्रचलित थी। सोमदेव ने अपने कथासरित्सागर में इस की कथा दी है और क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथामञ्जरी इस का संक्षेप बनाया है। इन कारणों से कई एक विद्वानों का मत है कि चूलिका पैशाची पश्चिमोत्तर भारत की भाषा थी। सर् जॉर्ज ग्रियर्सन् का मानना है कि हिन्दूकुश की दारद और काफिर भाषाएं तथा शिणा और काश्मीरी की पूर्व प्रकृति पैशाची से सम्बन्ध रखती हैं[1]।

इस के विरुद्ध दूसरा मन्तव्य यह है कि गुणाढ्य दक्षिण का रहने वाला था। बृहत्कथा की रचना काश्मीर के उस साहित्यिक पुनरुत्थान से कई सौ बरस पहिले हो चुकी थी जो क्षेमेन्द्र, विल्हण, सोमदेव कल्हण आदि ने किया। ण का न होना और ल का ळ होना द्रविड प्रभाव की सूचना देते हैं।

दूसरी विशेषताएं—जैसे स्वरमध्यवर्ती त और थ का बने रहना केवल प्राचीन प्रयोग हैं। घोष वर्ण के स्थान में अघोष वर्ण का होना उत्तर और दक्षिण दोनों प्रान्तों में मिलता है। यह विकार उस समय बहुत देखने में आता है जब किसी भाषा को अन्य जाति ग्रहण करती है। पाठक को "मैरी वाइव्ज़ ऑफ विंडज़र" नामी नाटक के वेल्ज़ के रहने वाले सर् ह्यू एवन्ज् का स्मरण होगा। गाइलिक भाषा बोलने वालों में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है। आर्य भाषा की सीमा पर यदि कोई ऐसी म्लेच्छ भाषा होती भी, तो आर्य भाषा के विस्तार के साथ उस का लोप हो गया होता। इन विचारों के आधार पर इन चूडा धारी

[1] सर् जॉर्ज का यह मत सर्व मान्य नहीं।

भूतों का विन्ध्यवासी होना उतना ही सभव है जितना कि वे काश्मीरी पिशाच थे।

पुरानी प्राकृतें।

सब से प्राचीन प्राकृत जो लेखबद्ध मिलती है वह महाराज अशोक की धर्मलिपियें हैं। पश्चिमोत्तर प्रान्त (शाहबाज गढ़ी और मानसेहरा) की धर्म लिपियें खरोष्ठी लिपि में तथा इतर सब प्राचीन ब्राह्मी लिपि में खुदी हुई हैं, चाहे शैल पर हों या स्तम्भों पर। इन सब की भाषा एक समान नहीं है। पूर्वी और पश्चिमी धर्मलिपियों की भाषा में अतिस्पष्ट भेद है।

सूक्ष्म भेदों के साथ पूर्वी भाषा गङ्गा-जमना दोआब के स्तम्भों पर तथा कालसी और उड़ीसा के शैलों पर खुदे हुए लेखों में पाई जाती है। इस भाषा में 'र' के स्थान में 'ल' तथा अकारान्त पु० और नपु० सज्ञाओं के १मा एक० के रूप एकारान्त होते हैं जैसे मागधी में। इस के विरुद्ध इस में दन्त्य 'स' मिलता है न कि तालव्य 'श'(परन्तु कालसी के लेख में मूर्धन्य 'ष' भी मिलता है)। कई विद्वान् इसे मागधी के नाम से पुकारते हैं परन्तु प्रो० लूडर्स का कहना है कि यह असली अर्धमागधी है।

इस का नाम चाहे कोई भी उचित हो परन्तु यह वह भाषा है जिसे अशोक और उस के दरबारी बोलते थे। इस दरबारी भाषा का प्रभाव उत्तर तथा पश्चिम के लेखों पर भी पड़ा दिखाई देता है क्योंकि उन की भाषा शुद्ध स्थानीय भाषा प्रतीत नहीं होती। इस प्रभाव के कारण जो रूप व्यवहृत हुए हैं उन्हें मागध प्रयोग कहते हैं।

पश्चिमी भाषा गिरनार के शैल लेख में पाई जाती है। इस में पु० १मा एक० के रूप ओकारान्त हैं और नपु० रूपों के अन्त में 'अ'

होता है। इस में 'र' और 'स' पाए जाते हैं। (मागध प्रयोग हैं—प्रियो और जनो के स्थान में प्रिये और जने; मूल के-स्थान में मूले आदि)। इस की कई एक विशेषताएं पाली की याद दिलाती हैं परन्तु यह पूर्णतया पाली के समान नहीं है।

यह भी कह सकते हैं कि यह पश्चिमी भाषा उज्जैन की तत्कालीन भाषा का प्राय पूरा नमूना है क्योंकि उज्जैन मौर्य राज के एक प्रधान प्रदेश की राजधानी थी।

जो लेख दक्षिण में पाए जाते हैं वे पूर्वी भाषा की अपेक्षा पश्चिमी भाषा के अधिक समान हैं यद्यपि उन में अपनी विशेषताएं भी पाई जाती हैं।

पश्चिमोत्तरी लेखों की भाषा पूर्वी और पश्चिमी लेखों से भिन्न है। शाहबाजगढ़ी की अपेक्षा मानसेहरा लेख में मागध प्रयोग अधिक हैं। दोनों में र, स और श पाए जाते हैं। शाहबा० में १मा एक० के रूप ओकारान्त और नपु० रूप अनुस्वारान्त हैं, परन्तु मानसेहरा में (अर्ध)मागधी के एकारान्त रूप अधिक मिलते हैं। दोनों में 'र' वाले कई संयुक्त अक्षर मिलते हैं, जिन में प्राय वर्ण व्यत्यय हो जाता है। पियदसि के स्थान में प्रियद्रसि, भुतप्रुव=गिरनार भूतपुर्वं=धौली हुतपुलवा, शाहबा० ग्रयो=गिर० श्री, शाहबा० म्रुगो=मान० म्रिगे=गिर० मगो=पूर्वी मिगे। अन्तिम उदाहरण पूर्वी और पश्चिमी भाषाओं के एक और भेद को प्रकट करता है। (देखिये § ६०)।

शाहबा० में 'त्त' बना रहता है जैसे क्षमितविय में, परन्तु गिर० खमितवे, पूर्वी खमितवे (देखिये § ९०)।

प्रिय आदि में संयुक्त अक्षर प्र आदि जो दोनों पश्चिमी और उत्तरपश्चिमी लेखों में पाए जाते हैं पहिले उन को संस्कृत प्रयोगों के अवशेष मानते थे; परन्तु अब यह मन्तव्य है कि ये तत्कालीन

स्थानीय उच्चारण को प्रकट करते हैं क्योंकि उत्तर पश्चिम की आधुनिक भाषाओं में ऐसे सयुक्त अक्षर अब तक विद्यमान हैं। जैसे—लहदी त्रै, सिंधी ट्रे, गुजराती त्रण "तीन।"

जब उत्तरपश्चिमी रूपों को औरों से मिलाया जाय तो यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि खरोष्ठी लिपि में स्वरों की दीर्घता प्रकट नहीं की जाती।

यह बात भी याद रखने योग्य है कि अशोक के न तो खरोष्ठी लेखों में और न ही ब्राह्मी लेखों में व्यञ्जनों का द्विर्भाव प्रकट किया गया है। जैसे—चक्कवाके के स्थान में चकवाके, चक्खुदाने के स्थान में चखुदाने मिलता है।

वैरात के और भाब्रा के लेखों में जो अब कलकत्ता के अजायब घर में सुरक्षित हैं, अशोक अपने कुछ प्रिय शास्त्रों का उल्लेख करता है। इस लेख की भाषा पर बहुत विमर्श हुआ है। लाघुल शब्द जिस का पाली रूप राहुल मिलता है। तथा अधिगिच्य (=अधिरत्य) शब्दों की समानता वाले रूप और किसी लेख में नहीं पाए जाते। ऐसा प्रतीत होता है कि ये बोद्ध ग्रन्थों की पाली से भी पहिली भाषा के रूप हैं (देखिये पृ० ६१)। इस लेख में प्रो० हुलश् ने प्रियदसि, सर्वे, प्रासादे और अभिप्रेत ऐसे रूप पढ़े हैं परन्तु जिस भाषा में स्वरान्त 'र' को 'ल' हो जाता है उस में ऐसे रूप होना आश्चर्य की बात है। यह भी बतला देना चाहिये कि इन रकारों की सत्ता एक छोटी सी रेखा पर निर्भर है जो किसी हालत में भी स्पष्ट नहीं है और शायद पत्थर के केवल ऊंचा नीचा होने के कारण दिखाई देती है।

यह देखा जायगा कि अशोक के लेखों की भाषा की बाट पीछे की प्राकृतों की बाट से भिन्न है। यह भेद आश्चर्यजनक नहीं। अगर शिक्षा और साहित्य के कई केन्द्र अर्थात् विद्याविद्यालय

शिक्षा और साहित्य के लगातार प्रयोग न रखने से साधारण लिखने पढ़ने के काम में आने वाली भाषाओं की स्थानीय बाट कुछ काल के पीछे भिन्न हो जाती है। भारतीय प्राकृतों में पञ्जाब और पश्चिमोत्तर प्रदेश की भाषा को प्रकट करने वाली कोई भाषा नहीं मिलती। ऊपर देखा गया है कि कई विद्वान् पैशाची प्राकृत को इन प्रान्तों की भाषा मानते हैं। इस बात के कुछ प्रमाण मिले हैं कि उत्तर देश के बौद्ध लोग एक और प्राकृत का प्रयोग करते थे। खोतान नगर के निकट खरोष्ठी लिपि में लिखे हुए "धम्मपद" के कुछ टुकड़े मिले हैं जो "दुत्रुइल द रों" पुस्तक (Dutreuil de Rhins manuscript) के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस की भाषा में कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो आज कल की पश्चिमोत्तरी भाषाओं में पाई जाती हैं। (जर्नल एसियातीक सन् १८९८ पृ० १९३, १९१२ पृ० ३३१)।

पाली।

पाली शब्द का मूल अर्थ है "सीमा, या रेखा" और यह शब्द बौद्ध धर्म की हीनयान सम्प्रदाय के सिद्धान्त ग्रन्थों (त्रिपिटक) के लिये व्यवहृत होता था। तत्पश्चात् यह त्रिपिटक की भाषा के लिये व्यवहृत होने लगा जो त्रिपिटक के अतिरिक्त और ग्रन्थों में भी पाई जाती है। ये सब कुछ लंका, ब्रह्मा और स्याम देश के धर्म प्रचारक सघों में सुरक्षित रहे। फिर पाली शब्द कभी कभी इन अर्थों में प्रयुक्त होता रहा—(१) अशोक महाराज के लेखों की भाषा के लिये, यद्यपि इस भाषा के तीन या चार स्पष्ट रूप हैं, (२) अशोक राज्य की दरबारी भाषा के लिये जो एक प्रकार की दूर दूर समझी जाने वाली मध्ययुगीन भाषा थी, और (३) लेखों और शासनों की प्राकृत के लिये जो उस समय तक पाई जाती है जब तक कि संस्कृत ने पाली या प्राकृत का स्थान नहीं ले लिया। बौद्ध ग्रन्थों की पाली भाषा विश्वविद्यालय की पढ़ाई का एक पृथक् और

स्वतन्त्र विषय है जो ब्रह्मदेश वासी बौद्ध लोगों के लिये संस्कृत का स्थान रखती है परन्तु भारतवर्ष में इस का पठन पाठन बहुत थोड़ा होता है । तथापि (१) भारतीय भाषा इतिहास और (२) प्राचीन प्राकृत लेखों के अध्ययन के लिये यह अत्यावश्यक है।

पाली सीखने के लिये अनेक व्याकरण, पाठसंग्रह, मूलग्रंथ तथा अनुवाद विद्यमान हैं इस लिये यहां इस का संक्षेप वर्णन ही किया जायगा।

पाली की विशेषताएं।

अर्धमागधी की अपेक्षा पाली में प्राचीन व्याकरण के अवशेष अधिक मिलते हैं। आत्मनेपद के रूप बहुत हैं। लुङ् के रूप (विशेष कर स् वाले) प्रचुरता से मिलते हैं। (लुङ् और लङ् रूपों का भेद जाता रहा है)। अभ्यस्त लिट् के रूप विरले हैं पर मिलते ज़रूर हैं। प्राचीन गणों के भी कुछ अवशेष पाए जाते हैं। जैसे—सुणोति=शौ० सुणादि; करोति (आत्म० कुरुते)=शौ० करेदि; ददाति (देति भी)=शौ० देदि।

उच्चारण की मुख्य विशेषताएं—इस में केवल दन्त्य स् होता है, य् रहता है; र् कभी ल् बन जाता है (लेकिन मागधी की तरह सदा नहीं)। कभी न् को भी ण् हो जाता है। स्वरमध्यवर्ती व्यंजन बने रहते हैं और अघोष के स्थान में कभी ही घोष वर्ण आता है। जैसे—भवति या होति, कथेति, पुच्छति, गच्छति आदि, मतो=मृत; कतो=कृत ।

किसी किसी शब्द में द्र, ब्र आदि संयुक्त अक्षर बने रहते हैं।

स्वरभक्ति का प्रयोग प्रचुर है। आर्य शब्द का अय्य या अरिय बन जाता है।

पाली की जन्मभूमि के विषय में मतभेद है। आम्नाय के अनुसार बुद्धभगवान् ने मागधी में अपना उपदेश दिया। दक्षिणी बौद्धों का यह विचार उचित ही था कि त्रिपिटक बुद्ध की अपनी भाषा में है। इस हेतु से पाली मागधी (मगध देश की भाषा) होनी चाहिये। परन्तु वास्तव में यह बात ऐसे नहीं है—ईमा एक० के ओकारान्त रूप तथा स, र, ज का होना इस बात को स्पष्ट सिद्ध करते हैं। कई विद्वानों का मत है कि पाली उज्जैन की भाषा थी जहाँ से अशोक का भाई महेन्द्र त्रिपिटक को लङ्का द्वीप में ले गया। दूसरे विद्वान् इसे कलिङ्ग देश की आर्य भाषा ख्याल करते हैं।

घोष के स्थान में अघोष वर्णों का होना आदि कुछ बातों में पाली पैशाची से मिलती है। इस समानता के आधार पर कई विद्वान् इसे विन्ध्याचल के निकट देश की भाषा मानते हैं। इसी समानता के कारण कोई इसे तक्षशिला की भाषा कहते हैं। मागधी आम्नाय के आश्रय पर गाइगर् महाशय का ख्याल है कि पाली अर्धमागधी के किसी रूप से निकली है परन्तु यह किसी प्रदेश की शुद्ध भाषा नहीं है।

लेकिन अगर पाली त्रिपिटक सिद्धान्त का सब से प्राचीन रूप यह रूप नहीं है तो आम्नाय वाली युक्ति बाधित हो जाती है। इस में सन्देह नहीं कि बुद्ध भगवान् का उपदेश और उस की सूत्र रचना किसी पूर्वी भाषा में हुए। पीछे से उस का अनुवाद और भाषाओं में हुआ और इन ही में से एक अनुवाद पाली त्रिपिटक बन गया। डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी का कहना है कि वर्णविकार और रूपरचना के आधार पर यह पाली मध्यदेश की कोई पश्चिमी भाषा अर्थात् शौरसेनी का प्राचीन रूप होनी चाहिये जिस में कि बहुत से पुराने रूप मिलते हैं। जब मौर्य राज्य का पतन हुआ तो पूर्वी दरबारी भाषा (अर्धमागधी) का प्रचार भी बन्द हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस के बाद पाली से मिलती जुलती किसी

पश्चिमी भाषा का प्रचार हुआ जो कि खारवेल के लेखों में पाई जाती है।

यथार्थ तत्त्व कुछ ही हो परन्तु यह स्पष्ट है कि पाली में कई भाषाओं के अंश मिले हुए हैं और कि यह समय पा कर बदलती रही है। इस का सब से प्राचीन रूप गाथाओं में मिलता है। इस के पीछे त्रिपिटक का गद्य भाग, फिर त्रिपिटकबाह्य ग्रन्थ और अन्त में और भी पीछे के ग्रन्थ। संस्कृत ने भी पाली विकास पर कुछ प्रभाव डाला है।

अशोक से पीछे के प्राकृत लेखों में से बहुत से लेख तो इतने छोटे हैं कि उन की भाषा का स्वरूप निर्धारण नहीं किया जा सकता। खारवेल का लेख जो हाथीगुफा के द्वार पर खुदा हुआ है और जिस की मिति वि० पू० दूसरी शताब्दी है अशोक के पूर्वी लेखों की अपेक्षा पश्चिमी या दक्षिणी लेखों से अधिक मिलता है। कई बातों में यह पाली से मिलता है और कई बातों में उस से भिन्न है।

रामगढ़ पहाड़ी पर जोगीमार गुफा का लेख मागधी के किसी प्राचीन रूप में प्रतीत होता है।

अश्वघोष।

मध्य एशिया में ताडपत्र पर लिखे हुए ग्रन्थों के कुछ टुकड़े मिले हैं जिन को प्रो० लूडर्स ने जोड़ा है। उन में दो बौद्ध नाटकों के खण्ड पाए जाते हैं। उन में से एक तो केवल संस्कृत में है (कम से कम जो खण्ड मिला है वह केवल संस्कृत में है)। दूसरे नाटक में जो कनिष्क राजा के समकालीन प्रसिद्ध बौद्ध लेखक अश्वघोष की रचना मानी जाती है उस में कई प्राकृतें पाई जाती हैं। धूर्त तो एक प्रकार की मागधी बोलता है—स्>श, र्>ल, १मा एक० एकारान्त। कई बातों में यह भाषा व्याकरण और नाट

कीय मागधी से अधिक प्राचीन है—हगे के स्थान में अहक, कीश के स्थान में किश्श। लूडर्स इसे पुरानी मागधी कहता है। एक और पात्र की भाषा जो अशोक के स्तम्भ लेखों से मिलती है एक प्रकार की पुरानी अर्धमागधी मानी गई है। वेश्या और विदूषक की भाषा पुरानी शौरसेनी प्रतीत होती है। इस में स्वरमध्यवर्ती व्यञ्जन बने रहते हैं, न का ण नहीं होता और य का ज नहीं बनता।

भास।

इन के अतिरिक्त प्राकृत की एक और दशा है जो त्रिवन्द्रम से प्रकाशित हुए नाटकों में पाई जाती है। ये नाटक कवि भास की कृति माने जाते हैं। कई विद्वानों का मत है कि इन की प्राकृत अश्वघोष तथा कालिदास, भवभूति आदि के मध्यवर्ती प्राकृत की अवस्था को प्रकट करती है। नि संदेह पहिले पहिल यह प्राकृत अश्वघोष की प्राकृत से पीछे की और कालिदास आदि की प्राकृत से कुछ प्राचीन प्रतीत होती है। यदि भास का समय विक्रम की दूसरी या तीसरी शताब्दी माना जाय और ये नाटक भास की रचना माने जाय तो कई बातों का भली प्रकार समाधान हो जाता है।

मगर खेद है कि हम निश्चय पूर्वक इन नाटकों को भास की रचना नहीं कह सकते। इन की जो प्रतियां अब तक मिली हैं वे सब दक्षिण में लिखी गईं। सातवीं शताब्दी बलकि उस के पीछे भी जो नाटक रचे गए उन की दक्षिण में लिखी हुई प्रतियों में प्राकृत की ऐसी विशेषताएं पाई जाती हैं। उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में प्राकृत का परंपरागत वर्णविन्यास स्पष्टतया अधिक प्राचीन है। चूंकि दक्षिण में साधारण लोक भाषा द्राविड़ी है इस लिये उत्तर की अपेक्षा वहां प्राकृत का उच्चारण कम परिवर्तनशील होगा।

दक्षिणी प्रतियों में पाए जाने वाले प्राचीन रूप प्राकृत के इतिहास के लिये बड़े काम के हैं। परन्तु अब तक कोई ऐसा समर्थ प्रमाण नहीं मिला जिस से इन नाटकों को भास की कृति या इन का रचना काल विक्रम की दूसरी शताब्दी माना जा सके।

इस में संदेह नहीं कि ये कालिदास की हमारी प्रतियों और प्राकृत वैयाकरणों से अधिक प्राचीन है।

त्रिवन्द्रुम नाटकों में शौरसेनी और मागधी प्राकृतें पाई जाती हैं। कर्णभार नाटक में इन्द्र और दो सुभट एक ऐसी प्राकृत बोलते हैं जो अर्धमागधी से मिलती है।

इस शौरसेनी की मुख्य विशेषताएं ये हैं—ल्>ळ्, ञ्>ञ्ञ् या ण्ण्, न्य्>ण्ण्।

	त्रिवन्द्रुम	साधारण प्राकृत
	उद्य्>उय्य् (जैसे पाली में)	उज्ज्
	र्य्>य्य ,, ,, (अश्वघोष)	ज्ज्
२या बहु० पु०	आणि (देखिये पुरानी अमा०)	-ए
१मा, २या बहु० नपु०	आणि (पाली -आनि)	-आइ
७मी एक० स्त्री०	आअ [पाली आय (-य)]	-आए
	तव (अश्वघोष)	तुह
	किस्स [पाली, किस्स अश्वघोष, माग० किश्श]	कीस
	गण्हदि (पाली गन्हाति)	गेण्हदि
कृदन्त, वर्तमान कर्मवाच्य	-इअमाण (पाली इयमान केवल एक बार)	इअन्त
	कत्तु, कत्तव, कभी कादु	कादव्व
पूर्वकालिक क्रिया	करिअ	कदुअ
	गच्छिअ	गदुअ

अर्वाचीन प्राकृत—अपभ्रंश (देखो अध्याय २ पृ०)

भाषा विज्ञान के अभ्यासी के लिये अपभ्रंश अवस्था की मुख्य विशेषताओं का जानना लाभदायक होगा। वर्ण तथा रचना का परिवर्तन पुरानी प्राकृत में इतना नहीं हुआ जितना नाटकीय प्राकृतों में, परन्तु इन पीछे की प्राकृत में यह विकार बहुत अधिक हो गया है। जब कभी अपभ्रंश ग्रन्थ में प्राचीन रूप मिलें तो समझना चाहिये कि कर्ता ने इन को प्राकृत से लिया है या कभी कभी भाषा परिवर्तन का जो साधारण प्रवाह है उस के विरुद्ध किसी बोली में प्राचीन रूप प्रचलित रह जाते हैं। आर्य भारती की कई बाह्य भाषाओं में कई एक ऐसे प्राचीन रूप अब तक भी पाए जाते हैं।

हेमचन्द्र कृत व्याकरण के आधार पर नीचे के कोठे में संज्ञा और क्रिया रचना के वे रूप दिये हैं जो केवल अपभ्रंश में पाए जाते हैं और प्राकृत में नहीं मिलते।

संज्ञा की रूप रचना।

	एकवचन	बहुवचन
१मा	पुत्तु	पुत्त
२या	पुत्तु	पुत्त
३या	पुत्तें	पुत्तहि (हिं)
५मी	पुत्तहे, पुत्तहु	पुत्तहु
६ठी	पुत्तस्स पुत्तहु पुत्तह	पुत्तह
७मी	पुत्ति, पुत्तहिँ	पुत्तहिँ
नपुंसक-फल		
१मा, २या	फलु	फलइँ

यदि द्वितीयादि विभक्तियों को एक दूसरे के साथ मिलाया जाय तो मालूम होगा कि अन्तिम स्वर का अस्पष्ट उच्चारण करने से

एकवचन में सब का एक रूप हो जाता है। इसी प्रकार बहुवचन में अनुनासिक वाला एक रूप हो जाता है (देखो बीम्स पु० २ § ४२)। अपभ्रंश १मा एक० का 'उ' सिन्धी भाषा में पाया जाता है जहाँ रूपों के अन्त में बहुत ह्रस्व 'उ' रहता है[1]।

६ष्ठी एक० का स् वाला रूप भी अपभ्रंश में मिलता है। परन्तु हिन्दी में यह सर्वनाम की रूपरचना में पाया जाता है—तिस का, किस का। यूरोप के चगड़ों (जिप्सी Gypsies) की रोमनी भाषा में यह रूप मिलता है—चोरेस् केरो "चोर का।" कश्मीरी भाषा में भी मिलता है—चुरस् निश् "चोर के निकट", गुरस् निश् घोड़े के निकट। ये रूप ४र्थी का अर्थ देते हैं।

मराठी में भी ४र्थी के रूप स् वाले होते हैं।

क्रिया की रूपरचना।

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पुच्छइ	पुच्छहिँ
म० पु०	पुच्छसि, हि	पुच्छहु
उ० पु०	पुच्छउँ	पुच्छहुँ

यह रूपावली पुरानी हिन्दी से तो बहुत ही मिलती है और आधुनिक हिन्दी के रूपों पुच्छे, पुच्छूँ, पुच्छो, पुच्छें आदि से भी कुछ अधिक भेद नहीं रखती।

अपभ्रंश के वर्ण विकारों में मुख्य और विशेष उल्लेखनीय ये हैं-

'उ' के पूर्व 'व्' का लोप—आहवु के स्थान में आहउ=आहव, सहावु के स्थान में सहाउ=स्वभाव।

1 राजस्थानी और व्रज के १मा एक० रूपों का ओ, और पंजाबी और हिंदुस्तानी का आ अक वाले रूपों से आए हैं। -क् का लोप हो गया और अको>अओ>अप० अउ> ओ या आ।

उ और अ के पूर्व म् का लोप—जउणा=यमुना; भमुहा के लिये भउहा=भ्रू, दुग्गउ, दुग्गमु=दुर्गम।

अन्तिम इ, उ का अनुनासिकत्व। प्र० पु० एक० सुणइँ भणइँ। म० पु० एक० रमहिँ; उ० पु० १ एक० भणिउँ भमिउँ।

स्वरमध्यवर्ती म् का वँ या व् हो जाता है जो ँव ँव कर के भी लिखा जाता है। कुँवर=कुमर, कुमार; भँवण=भ्रमण, सवण=श्रमण, पवाण=प्रमाण।

दीर्घ स्वरों का ह्रस्व होना—वणिज्ज=वाणिज्य; करण=कारण; निय=नीत, पिय=पीत।

सजातीय स्वरों का एकादेश—अन्धार=अन्धकार; भण्डार=भाण्डागार, उण्हाल=उष्णकाल, पियार=*पिययर=प्रियतर।

द्विर्भूत व्यञ्जन का ह्रस्व होना, और तत्पूर्व ह्रस्व स्वर का दीर्घ होना—सहास=सहस्स=सहस्र; भवीस=भविस्स=भविष्य।

प्रातिपदिकों के परे -अ, (अ) ड, -उल्ल प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यद्यपि ये प्रत्यय प्राचीन प्राकृत में भी पाए जाते हैं परन्तु वहां इतने बहुत नहीं। प्राकृत में 'आल', 'आलु', 'इल्ल', '-उल्ल' प्रत्यय मतुप्, वतुप् के अर्थ में अथवा "तत्सम्बन्धी' अर्थ में आते हैं।

उदाहरण—

आल—महा० सिहाल=शिखावत्, अमा० सद्दाल=शब्दवत्; धणाल=धनवत्। आल+य—अमा० महालय=महत्।

आलु—णिद्दालु=निद्रालु (यह प्रत्यय संस्कृत में भी पाया जाता है)।

इल्ल—(महा० जैम० अमा० में बहुत मिलता है)

महा० केसरिल्ल, कन्दलिल्ल, तुलिल्ल, खेउरिल्ल। अमा० नियडिल्ल=निकृतिमत्, माइल्ल=मायाविन्; माइल्लग=भागिन्, गोइल्ल=गोमत्, कणइल्ल, "शुक, तोता" देशी शब्द 'कण' से, बाहिरिल्ल "बाह्य", महा०, अमा० गामिल्ल "गवार"; अमा० जैम० पुव्विल्ल "पूहिला।"

-'उल्ल'—(प्राकृत में विरला)-दप्पुल्ल=दर्पिन्।

और विशेषण प्रत्यय ये हैं—'-अल्ल' (-अल) और -इर। महा० अमा० महल्ल=महत्, नवल्ल=नव; भमिर "भ्रमण करता हुआ", लम्बिर "लटकता हुआ", हसिर "हसता हुआ।"

स्वार्थ में -क और -ड (सस्कृत -ट) प्रत्यय—देसड=देश, दोसड=दोष; रण्णडअ=अरण्य (क)।

अन्त के दोनों प्रत्यय अपभ्रश में बहुत मिलते हैं।

साधारण तौर पर कहा जा सकता है कि वर्तमान आर्य भाषाओं की व्युत्पत्ति तथा उन के उच्चारण पर ऐतिहासिक विचार करते समय अपभ्रश रूपों से जहा तक वे मिल सकें प्रारम्भ करना चाहिये[1]। इस प्रकार हिन्दी शब्द पहिला की व्युत्पत्ति करते समय हमें अपभ्रश पहिलउ से प्रारम्भ करना चाहिये न कि स० प्रथम या प्रा० पढमो से[2]।

प्राचीन वैयाकरणों के अनुसार साहित्य में प्रयुक्त होने वाली अपभ्रश तीन प्रकार की थी—व्राचड, नागर, उपनागर।

---

१ ग्रियर्सन् का लेख Phonology of the Indo-Aryan Vernaculars

२ ग्रियर्सन् अप० पढविल्लउ रूप मानता है (अमा० पढमिल्ल से)। पिशल् स० प्रथिल्ल से चलाता है (§ ४४१)।

जेकोबी ने सिद्ध किया है कि ब्राचड या ब्राचड सब से पुरानी है। सतरहवीं शताब्दी के वैयाकरणों का कहना है कि यह सिन्ध देश की भाषा थी। ऐसा प्रतीत होता है कि यह वही है जिसे 'आभीरि भाषा" (अहीरों की भाषा) कहते हैं। जेकोबी ब्राचड शब्द को व्रज शब्द से निकालता है और इस की पुष्टि में व्रज भाषा का उदाहरण देता है जो हिन्दी की एक साहित्यिक बोली का नाम है[1]। इस अपभ्रंश की मुख्य विशेषता थी—संयुक्त अक्षर में 'र' का रहना अथवा व्यञ्जन के परे 'र' का आगम और ऋ का रहना।

ब्राचड और उपनागर या ग्राम्य अपभ्रंश की अपेक्षा नागर अपभ्रंश अधिक समार्जित और शिष्ट प्रतीत होती है। यह वही अपभ्रंश है जिसे हेमचन्द्र ने वर्णन किया है और जिस के उदाहरण दिये हैं। जेकोबी ने इस के दो और रूप वर्णन किये हैं जो हेमचन्द्र से कुछ ही भिन्न हैं। उन में से एक में वि० सं० १२१६ में गुजरात की राजधानी अणहिल्लवाड में हरिभद्र ने "नेमिनाहचरिउ" की रचना की। इस भाषा को "गुर्जर अपभ्रंश" कह सकते हैं। श्वेताम्बर जैनों ने इस का बहुत प्रयोग किया है। दूसरे प्रकार की नागर अपभ्रंश को जेकोबी उत्तरी नागर अपभ्रंश कहता है। इस में धनपाल ने भविसत्त-कह" की रचना की। इस की शैली सरल है और इस में प्राकृत के शब्द थोड़े हैं। अलंकार भी सरल और थोड़े हैं। दिगम्बर जैनों ने इस का बहुत आदर किया। इन में मुख्य भेद संज्ञा की रूप-रचना के सुर-प्रत्ययों का है।

प्राचीन वैयाकरण तथा कवियों ने अपभ्रंश शब्द को नागर जैसी साहित्यिक भाषाओं के लिये प्रयुक्त किया प्रतीत होता है जो किसी स्थान विशेष में जन्म ले कर दूर दूर फैल जाती थीं। इस अर्थ में अपभ्रंश का सम्बन्ध पश्चिमी भारत से है जिस के अन्दर

१ 'भविसत्त-कह" की प्रस्तावना।

अब गुजराती, सिन्धी और राजस्थानी भाषाएं बोली जाती हैं। इस शब्द का व्यवहार और स्थलों में भी हुआ होगा। कुछ काल पीछे यह शब्द भिन्न २ देश भाषाओं के लिये भी प्रयुक्त होने लगा। इस अर्थ के अनुसार शौरसेनी अपभ्रंश कई प्रकार की थी जो मथुरा के आसपास उस समय बोली जाती थी जब कि शौरसेनी प्राकृत साहित्यिक भाषा बन चुकी थी। इसी प्रकार जहां मागधी और महाराष्ट्री प्राकृतें प्रचलित थीं वहां मागधी और महाराष्ट्री अपभ्रंश भी होंगी। जब इन अपभ्रंशों में कोई स्पष्ट और उल्लेखनीय भेद न होता होगा तो इन की ओर कोई ध्यान भी न देता होगा, और न ही कोई इन का वर्णन करता होगा जब तक इन में कुछ कविता न बन जाती होगी।

भरत मुनि ने कई एक विभाषाओं का उल्लेख किया है जिन्हें नाटकों के खास २ पात्र बोलते थे। इन में शाकारी (जिस का आधार मागधी है), चाण्डाली, शाबरी, आभीरी और टाक्की शामिल हैं[1]।

मार्कण्डेय ने इन का कुछ विस्तार से वर्णन किया है और वह द्राविड समेत २७ के नाम लेता है। द्राविड शब्द का अर्थ यहां तामिल आदि द्राविडी भाषा नहीं है किन्तु एक प्रकार की टूटी फूटी आर्य भाषा है जो द्राविड देश में प्रचलित थी। रामतर्क वागीश ने इन विभाषाओं में से पाञ्चाली, मालवी, मध्यदेशीया आदि पर कुछ टिप्पण दिये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब की सब साधारण अपभ्रंश अर्थात् पश्चिम की साहित्यिक अपभ्रंश के स्थानीय रूप थे। इन की स्वतन्त्र सत्ता न थी। महाराष्ट्री और मागधी से मराठी

---

१ ग्रियर्सन् JRAS 1918 pp 489 ff

१ ग्रियर्सन् JRAS 1913 p 875 अपभ्रंश और देश भाषा के विषय में जेकोबी का मत भेद है। देखो भविसत्त कह की उपोद्घात।

और बंगला का रूप धारण करते समय तक इन की किसी मध्यवर्ती अपभ्रंश का उल्लेख नहीं मिलता। पुरानी विभाषाएं किसी एक प्राकृत विशेष के स्थानीय या जातीय रूप होंगे न कि मध्यकालीन भारती भाषाओं का स्वतन्त्र रूप। इस लिये हम इन के थोड़े बहुत भेदादि तो जान सकते हैं परन्तु आर्य-भारती के विकास-क्रम में इन का स्थान-निर्देश नहीं कर सकते।



अध्याय ११

प्राकृत साहित्य ।

सब से प्राचीन प्राकृत जो लेखारूढ मिलती है वह वि० पू० तीसरी शताब्दी की महाराज अशोक की धर्मलिपियों की है। बौद्ध ग्रंथ तो पहिले भी विद्यमान थे और जैसा कि ऊपर कहा गया है, अशोक ने कुछ ऐसे पाठों के प्रतीक भी दिये हैं जो उसे विशेष प्रिय थे, परन्तु प्रतीकों के जो शब्द उद्धृत किये गए हैं उन से प्रतीत होता है कि वे अभी उस पाली भाषा में बद्ध नहीं हुए थे जिस में रचा हुआ त्रिपिटक लंका और ब्रह्मदेश के हीनयान संघ में प्रचलित है। हम किसी पाली ग्रंथ को निश्चय के साथ अशोक से पूर्वकालिक नहीं मान सकते।

जब किसी भाषा के साहित्य का वर्णन करना हो तो शिलालेख, ताम्रशासन आदि को प्राय साहित्य के अतगत नहीं करते। परन्तु यदि अशोक की धर्मलिपिया पुस्तकाकार में सुरक्षित होतीं तो प्रत्यक्ष है कि वे प्राकृत साहित्य का सब से प्राचीन ऐसा अश होतीं जिस का समय निश्चय पूर्वक ज्ञात है। इन लिपियों की भाषा तथा व्याकरण का पहले भी कुछ वर्णन किया जा चुका है। इन की रचना शैली गद्य के इतिहास में विशेष महत्त्व रखती है। वह अलकारों से सर्वथा शून्य है और महाराज अशोक की सत्यप्रियता तथा उद्योगशीलता का परिचय देती है। यह मानने में कुछ आ

पत्ति नहीं कि धर्मलिपियां महाराज ने स्वयं अपने मुख से लिखवाई होंगी क्योंकि इन में प्रशंसा या स्तुति का कोई लेश नहीं है जो इन में स्वाभाविक तौर पर पाया जाता, अगर वे किसी राजकवि या लिपिकार की रचना होतीं।

इन लिपियों की रचना की तुलना पारसीक महाराज दारा के लेखों से की गई है। यह तो सर्वथा संभव है कि अपनी जीवन घटनाओं को चट्टानों पर उत्कीर्ण करने का ख्याल महाराज अशोक को पारसीक देश के लेखों से आया हो। परंतु यह बात कि पाटलिपुत्र की राजसभा के सदस्य पारसीक भाषा से भली भांति परिचित थे एक हृदयग्राही उपन्यास है जो अभी तक निश्चयपूर्वक सिद्ध नहीं हो पाया है। और कुछ ही हो, परंतु इन दोनों लेखों की बाह्य आकृति में बड़ा भारी अंतर है।

महाराज दारा तो अपने इष्टदेव अहुमज़्द की सहायता से शत्रुओं पर विजय पाने और विशाल राज्य के स्थापन करने पर हर्ष प्रकट करता है परन्तु महाराज अशोक कलिङ्ग देश को विजय कर के पश्चात्ताप सा करता है। अशोक का मुख्य प्रयोजन यह है कि देश देशांतरों में धर्मवृद्धि हो अर्थात् बौद्ध धर्म फैले। इस निमित्त से जो जो उपाय उस ने किये उन का वर्णन कर के धर्म वृद्धि के लिये शासनों द्वारा उद्घोषण करता है। प्रसंगवश ये लेख मौर्य राज्य की शासन पद्धति तथा उस समय का प्रजाहितैषी राजा लोकोपकार के क्या काम कर सकता था इस विषय पर कुछ प्रकाश डालते हैं। इन लिपियों की सरलता एक विशेष महत्त्व रखती है जो उत्तरकालीन अलंकृत प्रशस्तियों में नहीं पाई जाती।

यदि "प्राकृत साहित्य" का व्यापक अर्थ लें, तो सब से प्रधान स्थान पाली को देना होगा। इस स्थान के लिये पाली का अधिकार केवल इस की प्राचीनता पर ही निर्भर नहीं है, प्रत्युत इस के

आनुषङ्गिक गुण और प्राचीन बौद्ध साहित्य के ऐतिहासिक गौरव पर भी है। भारत वर्ष के सब धर्मों में से बौद्ध धर्म ही ऐसा है जिस ने समस्त एशिया द्वीप पर अतीव गहिरा प्रभाव डाला है। इस धर्म के सब से प्राचीन ग्रंथ जो अब तक विद्यमान हैं पाली त्रिपिटक में ही शामिल हैं। इस बात के अतिरिक्त बौद्ध ग्रंथों में हमें भारतीय जीवन का ऐसा चित्र मिलता है जो कथा, आख्या यिका तथा ब्राह्मण धर्म के ग्रंथों में पाए जाने वाले आत्मश्लाघा के चित्रों का शेषपूरक है। भारतीय इतिहास के प्रत्येक अभ्यासी को कुछ न कुछ जातक अर्थात् बुद्ध भगवान् के पूर्व जन्मों की कथाएं अवश्य पढ़ लेनी चाहियें। बौद्ध स्तूप तथा विहारों के किवाडों पर इन जातकों और बुद्ध भगवान् की जीवन-घटनाओं के चित्र निरंतर खुदे हुए मिलते हैं। सच तो यह है कि बौद्ध दर्शन का थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त किये बिना और बौद्ध भिक्षु तथा उपासकों का जीवन चरित्र जाने बिना जैसा कि इन प्राचीन ग्रंथों में मिलता है कोई अभ्यासी उस सत्ता का यथार्थ स्वरूप नहीं जान सकता जो बुद्ध भगवान् के निर्वाण के पश्चात् एक हज़ार वर्ष तक भारत के इतिहास में प्रधान रही। इसी प्रकार भारतीय दर्शन के अभ्यासी को पता लगेगा कि अतिसूक्ष्म तर्क वितर्क तथा उच्च और प्रगल्भ विचार ब्राह्मण दर्शनों तक परिमित न थे किन्तु बौद्धों में भी पाए जाते थे।

पाली में ऐतिहासिक साहित्य का उदाहरण भिक्षुसमुदाय का गाथाबद्ध वृत्तांत है जो लंका के प्राचीन इतिहास का वर्णन करने वाले "महावंस" में मिलता है।

साधारण तौर पर पाली साहित्य प्राकृत साहित्य के अंतर्गत नहीं गिना जाता। यदि पाली ग्रंथों को पृथक् कर दें तो समग्र प्राकृत साहित्य का अधिकांश जैन साहित्य ही रह जाता है। जैसा कि पहले कहा गया है यह साहित्य तीन भिन्न२ प्राकृतों में मिलता है।

अर्धमागधी सब से पुरानी जैन ग्रन्थों की भाषा है। ये ग्रन्थ श्वेताम्बर सम्प्रदाय का सिद्धान्त या आगम कहलाते हैं। सिद्धान्त में सब ४८ ग्रन्थ हैं जिन में ११ अङ्ग और १२ उपाङ्ग भी शामिल हैं। इन का उल्लेख कभी प्राकृत नामों से और कभी संस्कृत नामों से किया जाता है।

१म अङ्ग—आयारंगसुत्त=आचाराङ्गसूत्रम्।
२य अङ्ग—सूयगडंग=सूत्रकृताङ्गम्।
७म अङ्ग—उवासगदसाओ=उपासकदशाः।
१म उपाङ्ग—ओववाइयसुत्त=औपपातिकसूत्रम्।

विक्रम की पांचवीं शताब्दी में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने सिद्धान्त को एकत्र कर के लेखारूढ किया। यह काम भगवान् महावीर के निर्वाण से ६८० वर्ष पीछे समाप्त हुआ अर्थात् वि० सं० ५११ में (या शायद वि० सं० ५७१ में)।

ये प्राचीन ग्रन्थ जिन्हें पूर्व कहते थे और जिन के आधार पर सिद्धान्त की रचना हुई सर्वथा नष्ट हो गए हैं। अब सिद्धान्त के अन्दर भिन्न २ काल के रचित ग्रन्थ और अध्याय शामिल हैं और उन को एक दूसरे से पृथक् करना कठिन कार्य है। कई ग्रन्थ और अध्याय भद्रबाहु स्वामी की रचना माने जाते हैं जो भगवान् महावीर से १७० वर्ष पीछे हुए। उन में से एक ग्रन्थ कप्पसुत्त (कल्पसूत्रम्) है जिस में भगवान् महावीर का जीवन चरित्र वर्णन किया गया है। वास्तव में यह देवर्द्धि गणि से पहिले का नहीं।

प्राचीन गद्य ग्रन्थों की रचनाशैली बड़ी शब्दबहुला है। इन में ग्राम, नगरआदि के लम्बे लम्बे वर्णन पाए जाते हैं तथा बहुत से पाठ बार बार दोहराए जाते हैं। आम पाठकों के लिये उन की महत्ता इस बात में है कि उन में प्रसङ्ग वश भारतीय जीवन का वृत्तान्त तथा घटनाओं का वर्णन पाया जाता है।

जैन साहित्य का सब से प्राचीन काव्य "पउमचरिय" है जिस में रामायण की कथा पाई जाती है। इस का रचना काल विक्रम की चतुर्थ शताब्दी प्रतीत होता है।

जैन माहाराष्ट्री में श्वेताम्बरों के आगम-बाह्य ग्रन्थ रचे हुए हैं। इन में अधिक तर कथा संग्रह हैं, जिन में तीर्थंकर आदि शलाका पुरुषों और मुनियों के जीवन चरित्र तथा अन्य तीर्थियों के जैन धर्म ग्रहण करने का वृत्तान्त है। वर्तमान युग के विद्वानों ने श्वेताम्बर साहित्य का कुछ भाग ही दृष्टिगत किया है। भाषाविज्ञान तथा इतिहास के लिये अभी बहुत सा भाग दृष्टिगोचर करने योग्य है।

जैन शौरसेनी में रचे हुए दिगम्बर ग्रन्थ और भी कम प्रसिद्ध हैं। सर् भाण्डारकर ने कुन्दकुन्दाचार्य कृत "पवयण सार" और कार्त्तिकेय स्वामि कृत "कत्तिगेयाणुपेक्खा" के कुछ पाठ प्रकाशित किये हैं। ये दोनों ग्रन्थ छन्दोबद्ध हैं।

जैन साहित्य न तो इतना प्रसिद्ध है और न इस का इतना पठन पाठन किया जाता है जितना बौद्धों के पाली साहित्य का। बहुत सा तो अभी तक हस्तलिखित ही पड़ा है या अशुद्ध प्रकाशित हुआ है। और बहुत सा तो टीका की सहायता से भी समझना कठिन है, टीका के बिना तो कहना ही क्या है।

जैन आगम ग्रन्थों के पूर्व भी अर्धमागधी का प्रयोग साहित्य में होता था। इस में प्रमाण यह है कि अश्वघोष तथा उस के सह कालीन कवियों के बनाए नाटकों में और कई एक लेखों में अर्ध मागधी पाई जाती है[१]। जैन माहाराष्ट्री कक्कुक के शिलालेख में मिलती है।

---

१ देखो अध्याय १०, "पाली" तथा "अश्वघोष"।

काव्य रचना के लिये देर से मुख्य प्राकृत माहाराष्ट्री रही है[१] । यही भाषा है जिस में प्राकृत महाकाव्य तथा गाढ काव्य रचे जाते हैं और इसी का वर्णन प्राकृत व्याकरणों में सब से पहिले पाया जाता है।

सब से प्रसिद्ध महाकाव्य सेतुबन्ध है । इस की रचना शैली इतनी अच्छी है कि कई विद्वान् इसे कवि कालिदास की कृति मानते हैं । प्राकृत में इस काव्य को रावणवहो या दहमुहवहो कहते हैं । इस में रामायण की कथा वर्णन की गई है परन्तु ख्याल किया जाता है कि इस की रचना काश्मीर के राजा प्रवरसेन के श्रीनगर में पुल बनवाने की यादगार के लिये हुई ।

विक्रम की आठवीं शताब्दी के आरम्भ में कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा ने बंगाल देश (गौड) पर विजय पाई इस विजय की स्मृति में "गउडवहो" काव्य रचा गया । इस के कर्ता का नाम वप्प इराअ (वाक्पतिराज) शायद कवि का गुप्त नाम है । इस कवि ने एक और काव्य "महुमहविअअ' रचा परन्तु इस के एक दो श्लोक ही बचे हैं, शेष नष्ट हो गया है ।

रावणवहो और गउडवहो की रचना शैली पर संस्कृत काव्यों का गहरा प्रभाव पड़ा है । इन दोनों में खूब लम्बे २ समास पाए जाते हैं ।

हेमचन्द्र कृत द्व्याश्रय महाकाव्य के अन्तिम आठ सर्गों का छोटा सा प्राकृत महाकाव्य बन जाता है जिस का नाम है 'कुमार पाल चरित' । इस में अणहिलवाड (गुजरात) के राजा कुमारपाल के पराक्रम का वर्णन है । समग्र काव्य की न्याईं इन आठ सर्गों का

---

१ प्रा० जेकोबी का विचार है कि माहाराष्ट्री ने यह प्रधान पद ५वें शताब्दी में प्राप्त कर लिया था (प्राकृत कथा १८८६) । इस से पहिले के लेख जो महाराष्ट्र में मिलते हैं उन की भाषा पाली जैसी है । तीसरी शताब्दी के कई लेखों में स्वरमध्यवर्ती व्यञ्जनों का लोप देखा जाता है । जैन आगम विक्रम की छठी शताब्दी के प्रारम्भ में लेखारूढ हुए और इन की अर्धमागधी पर माहाराष्ट्री का अच्छा प्रभाव है । दण्डी कवि सेतुबन्ध की बड़ी प्रशंसा करता है ।

प्रयोजन भी कवि के अपने बनाए 'सिद्ध-हेमचन्द्र' नामी संस्कृत प्राकृत व्याकरण के सूत्रों के उदाहरण देना है।

माहाराष्ट्री के ज्ञान के लिये सब से मुख्य ग्रन्थ हाल कृत सत्तसई (सप्तशतकम्) है। यह ग्रन्थ बहुत से कवियों के श्लोकों का संग्रह है। एक टीकाकार ११२ कविनामों का उल्लेख करता है। परन्तु भुवनपाल ३८४ कवियों के नाम प्रकट करता है। भिन्न २ प्रतियों में श्लोकों का क्रम भिन्न २ है और अब थोड़े ही श्लोक ऐसे हैं जो निश्चय से किसी एक कवि के बनाए कहे जा सकते हैं। इस संग्रह से अनुमान किया जा सकता है कि माहाराष्ट्री में कितनी कविता बनी होगी जो अब नष्ट हो चुकी है। हाल की बाबत ख्याल किया जाता है कि यह राजा सातवाहन था जिसे शालिवाहन आदि भी कहते हैं। और साधनों से हाल के अतिरिक्त कई दूसरे कवियों का पता भी लगता है। राजशेखर अपनी कर्पूर मञ्जरी (अङ्क १) में हरिउड्ढ, णन्दिउड्ढ और पोट्टिस का उल्लेख करता है। विदूषक कहता है—"ता उज्जुअ जेव किं ण भणीअदि, अम्हाण चेडिआ हरिउड्ढ-णन्दिउड्ढ-पोट्टिस-हाल प्पहुदीण पि पुरदो सुकइत्ति[1]।"

इस सप्तशती के रचना काल का अभी निश्चय नहीं हुआ। प्रो० वेबर तीसरी और सातवीं शताब्दी के बीच इस की रचना मानता है। मैकडानल का कहना है कि हाल दसवीं शताब्दी से पहिले हुआ।

इस हाल-सातवाहन को आन्ध्रवंश का १७ वां (वि० स० १२५) का राजा मान लेने से कुछ गड़बड़ सी हो गई है। जेकोबी कहता है कि यह हाल प्रतिष्ठान नगर का राजा सातवाहन था जिसने वि० स० ५२४ में जैनों के संवत्सरी पर्व की तिथि में कुछ परिवर्तन किया था।

इस में सन्देह नहीं कि यह सप्तशती जिस के संग्रहीत कवि राजशेखर के समय तक प्रसिद्ध थे, प्रथम शताब्दी की रचना

---

१ अनुवाद—तो स्पष्ट क्यों नहीं कह देते कि यह हमारी दासी हरिवृद्ध, नन्दिवृद्ध, पोट्टिस, हाल आदि से भी बढ़िया कवि है।

नहीं हो सकती, क्योंकि उस समय की प्राकृत पाली से
जुलनी होनी चाहिये। सप्तशती के प्रारम्भ के श्लोक
सूचना देते हैं कि दक्षिण के ये शृङ्गाररस भरे श्लोक उस
इतने प्रचलित नहीं थे जितने कि वे पहिले हुआ करते थे।

इसी प्रकार की एक और सप्तशती है जिस का नाम ज
या वज्जालग्ग है। इस का सकलन श्वेताम्बर भिक्षु जयव
किया। इस में भी ७०० छन्द हैं जिन में से कई एक हाल की
शती में भी मिलते हैं।

नाटकीय प्राकृतें।

संस्कृत का प्रत्येक पाठक जानता है कि संस्कृत ना
तीन प्राकृतें (महा०, शौ०, माग०) भी व्यवहृत होती हैं।
कौन से पात्र को कौन कौन सी प्राकृत बोलनी चाहिये इस
मत भेद हैं। मृच्छकटिक में प्राकृतों की सब से अधिक सं
जाती है। नाटक के नायक तथा विदूषक को छोड कर उस
सार्थी संस्कृत में बोलते और गाते हैं। स्त्री पात्र संस्कृत नहीं
परन्तु मालती माधव में बौद्ध भिक्षुणी संस्कृत बोलती है।[1]
प्राकृत का नाटक जिस में नायक भी प्राकृत बोलता हो
भूत समझना चाहिये। ऐसे नाटक का प्रसिद्ध उदाहरण
मञ्जरी है। इस के कर्ता कवि राजशेखर ने यह बतलाना
समझा कि इस में संस्कृत का प्रयोग क्यों नहीं किया। प्रस
में सूत्रधार चिन्तन करता है, "फिर किस लिये कवि ने र
को छोड कर प्राकृत में ही रचना की है?" इस के उत्तर में
पार्श्वक माहाराष्ट्री में कहता है—

परुसा सक्कअबन्धा पाउअबन्धो वि होइ सुउमारो।
पुरिस महिलाण जेत्तिअमिहन्तरं तेत्तिअमिमाण॥

संस्कृत रचना कठोर होती है लेकिन प्राकृत रचना कोमल भी

[1] भास के 'कर्णभार' में ब्राह्मण रूप धारी इन्द्र भी प्राकृत बोलता है।

सकती है। इस विषय में उन में इतना अन्तर है जितना स्त्रीपुरुष में होता है।

स्त्री पात्र और विदूषक साधारण बात चीत शौरसेनी में करते हैं परन्तु गीत महाराष्ट्री के गाते हैं। दास, दासी, वामन, परदेसी आदि मागधी बोलते हैं। जैसे—शकुन्तला में दोनों राजपुरुष तथा धीवर। जैन भिक्षु तथा छोटे बालक भी इसी प्राकृत को बोलते हैं[1]।

लिखित तथा छापे की पुस्तकों में पात्रों की भाषा बहुधा अलङ्कार ग्रन्थों और टीकाकारों के मत के विरुद्ध होती है। वे

---

[1] पिशल् (§ २३) के अनुसार निम्नलिखित पात्र मागधी बोलते हैं—

मृच्छकटिक—शकार, उस का नौकर स्थावरक, संवाहक, कुम्भीलक, वर्धमानक, दोनों चाण्डाल और रोहसेन।

शकुन्तला—धीवर, राजपुरुष, सर्वदमन।

प्रबोधचन्द्रोदय—चार्वाकशिष्य और उत्कलदून।

मुद्राराक्षस—दास, जैनभिक्षु, दूत, सिद्धार्थक और समिद्धार्थक जब चाण्डाल बनते हैं।

ललितविग्रहराज—वैतालिक और गुप्तचर (जो कभी शौ॰ बोलता है), तुरुष्क बन्दीजन और गुप्तचर। भारतवासी गुप्तचर शौ॰ बोलता है।

वेणीसंहार—राक्षस और उस की भार्या।

मल्लिकामारुत—हस्तिपालक।

नागानन्द—नौकर चाकर।

चैतन्य चन्द्रोदय—नौकर चाकर।

चण्डकौशिक—चाण्डाल और धूर्त।

धूर्तसमागम—नापित।

हास्यार्णव—साधुहिंसक।

लटकमेलक—दिगम्बर भिक्षु।

कंसवध—कुब्जा।

अमृतोदय—जैन भिक्षु।

नहीं हो सकती, क्योंकि उस समय की प्राकृत पाठों से मिलती जुलती होनी चाहिये। सप्तशती के प्रारम्भ के श्लोक इस बात की सूचना देते हैं कि दाक्षिण के ये शृङ्गाररस भरे श्लोक उस समय इतने प्रचलित नहीं थे जितने कि ये पहिले हुआ करते थे।

इसी प्रकार की एक और सप्तशती है जिस का नाम <u>वज्जालग्ग</u> या <u>वज्जालग्ग</u> है। इस का सङ्कलन श्वेताम्बर भिक्षु जयवल्लभ ने किया। इस में भी ७०० छन्द हैं जिन में से कई एक हाल की सप्तशती में भी मिलते हैं।

नाटकीय प्राकृतें।

संस्कृत का प्रत्येक पाठक जानता है कि संस्कृत नाटकों में तीन प्राकृतें (महा०, शौ०, माग०) भी व्यवहृत होती हैं। कौन कौन से पात्र को कौन कौन सी प्राकृत बोलनी चाहिये इस में कुछ मत भेद है[१]। मृच्छकटिक में प्राकृतों की सब से अधिक संख्या पाई जाती है। नाटक के नायक तथा विदूषक को छोड़ कर उस के शेष साथी संस्कृत में बोलते और गाते हैं। स्त्री पात्र संस्कृत नहीं बोलते परन्तु मालती माधव में बौद्ध भिक्षुणी संस्कृत बोलती है। केवल प्राकृत का नाटक जिस में नायक भी प्राकृत बोलता हो अपवाद भूत समझना चाहिये। ऐसे नाटक का प्रसिद्ध उदाहरण कर्पूर मञ्जरी है। इस के कर्ता कवि राजशेखर ने यह बतलाना उचित समझा कि इस में संस्कृत का प्रयोग क्यों नहीं किया। प्रस्तावना में सूत्रधार चिन्तन करता है, "फिर किस लिये कवि ने संस्कृत को छोड़ कर प्राकृत में ही रचना की है?" इस के उत्तर में पारिपार्श्वक माहाराष्ट्री में कहता है—

परुसा सक्कअबन्धा पाउअबन्धो वि होइ सुउमारो।
पुरिस महिलाण जेत्तिअमिहन्तरं तेत्तिअमिमाण॥

संस्कृत रचना कठोर होती है लेकिन प्राकृत रचना कोमल भी हो

१ भास के 'कर्णभार' में ब्राह्मण रूप धारी इन्द्र भी प्राकृत बोलता है।

सकती है। इस विषय में उन में इतना अन्तर है जितना स्त्री पुरुष में होता है।

स्त्री पात्र और विदूषक साधारण बात चीत शौरसेनी में करते हैं परन्तु गीत महाराष्ट्री के गाते हैं। दास, दासी, वामन, परदेसी आदि मागधी बोलते हैं। जैसे—शकुन्तला में दोनों राजपुरुष तथा धीवर। जैन भिक्षु तथा छोटे बालक भी इसी प्राकृत को बोलते हैं[१]।

लिखित तथा छापे की पुस्तकों में पात्रों की भाषा बाट बहुधा अलङ्कार ग्रन्थों और टीकाकारों के मत के विरुद्ध होती है। वे

---

१ पिशल् (§ २३) के अनुसार निम्नलिखित पात्र मागधी बोलते हैं—

मृच्छकटिक—शकार, उस का नौकर स्थावरक, संवाहक, कुम्भीलक, वर्धमानक, दोनों चाण्डाल और रोहसेन।

शकुन्तला—धीवर, राजपुरुष, सर्वदमन।

प्रबोधचन्द्रोदय—चार्वाकशिष्य और उत्कलदूत।

मुद्राराक्षस—दास, जैनभिक्षु, दूत, सिद्धार्थक और समिद्धार्थक जब चाण्डाल बनते हैं।

ललितविग्रहराज—वैतालिक और गुप्तचर (जो कभी शौ॰ बोलता है), तुरुष्क बन्दीजन और गुप्तचर। भारतवासी गुप्तचर शौ॰ बोलता है।

वेणीसंहार—राक्षस और उस की भार्या।

मल्लिकामारुत—हस्तिपालक।

नागानन्द—नौकर चाकर।

चैतन्यचन्द्रोदय—नौकर चाकर।

चण्डकौशिक—चाण्डाल और धूर्त।

धूर्तसमागम—नापित।

हास्यार्णव—साधुहिंसक।

लटकमेलक—दिगम्बर भिक्षु।

कंसवध—कुब्जा।

[illegible]—जैन भिक्षु।

भली प्रकार पढा लिखा पुरुष संस्कृत बोल सकता था इसलिये नायक संस्कृत बोलता था और नाटकीय नियम के अनुसार सदैव संस्कृत बोलता था जैसे असली राजा तो कभी ही मुकुट पहिनते हैं परन्तु नाटकों में राजा सदैव मुकुट पहिनते है।

उपर्युक्त विचार से यह सूचना भी होती है कि संस्कृत नाटक ने शूरसेन में स्थिर रूप प्राप्त किया[1]। गीतों में माहाराष्ट्री का प्रयोग करना—इस के लिये एक और युक्ति देनी पड़ेगी। यह भी कवि समय की बात है दक्षिण में गीतात्मक कविता ने ऐसी उन्नति की कि वह दूर २ फैल गई। निःसन्देह माहाराष्ट्री गीत समग्र भारत में गाए जाते थे, जैसा कि अब फारसी के छन्द गाए जाते हैं। स्वाभाविक था कि प्राकृत गीतों के लिये लोग इसी भाषा को उपयुक्त समझने लगे। इस युक्ति के आधार पर नाटक में दूसरी प्राकृतों के प्रयोग का समाधान करना कठिन न होगा। इस प्रश्न का संस्कृत नाटक के विकास और इतिहास के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। परन्तु इस विषय में हमारा ज्ञान बहुत ही कम है। इस बात में मतभेद है कि किसी नाटक में प्राकृतों की संख्या का अधिक होना (जैसा कि मृच्छकटिका में) उस की प्राचीनता का द्योतक है या अर्वाचीनता का। फिर कई एक विद्वानों का मत है कि पहिले पहिल नाटक प्राकृत में ही होते थे। उन में संस्कृत का प्रयोग पीछे से हुआ।

प्राकृत मूल न केवल नाटक का ही बल्कि इतिहास और पुराणों का भी माना गया है[2] यह तो स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि

---

१ सिलवां लेवी (भारतीय नाटक १८९० पृ० ३३१, फ्रेंच भाषा) का कहना है कि नाटक में शौरसेनी के प्रयोग का सम्बन्ध तो मथुरा को कृष्ण सम्प्रदाय के साथ है, और मागधी मगध देश के मागध (भाटों) की बात है।

२ पार्जिटर्—कलियुग के राजवंश। ग्रियर्सन्। Encycl Brit. प्रो० हर्टेल ने पञ्चतन्त्र का भी प्राकृत मूल माना है। कोई गीतगोविन्द का भी प्राकृत मूल मानते हैं।

बृहत्कथा पैशाची प्राकृत में थी महाभारत और पुराणों का भी मूल प्राकृत में ही बताया जाता है। इस में प्रमाण यह है कि उन के वर्तमान संस्कृत रूप में व्याकरण तथा छन्द सम्बन्धी कई ऐसी बातें हैं जो इस बात की सूचना करती हैं कि ये प्राकृत से अनुवाद किये गए हैं। इस विषय पर यहां विचार नहीं किया जा सकता। तथापि यह याद रखना चाहिये कि वह कविता अथवा छन्द जो मूलतः साधारण लोकों में प्रचलित हो, वह संस्कृत में अनूदित होने से पहिले किसी न किसी साधारण लौकिक भाषा में (चाहे वह कितनी ही अनियत और परिवर्तनशील हो), रची हुई होगी। यदि ऐसी कविता बहुत पुरानी हो तो उस का मूल प्रथम युग की प्राकृत में होगा न कि मध्य युग की प्राकृत में। प्रथम युग की प्राकृत पाणिनीय संस्कृत के सर्वथा सदृश तो न होगी, हां उन में समानता बहुत होगी। (तदुत्तरवर्ती काल में किसी ग्रन्थ को संस्कृत रूप देने की उत्तरोत्तर चेष्टा जिस से उस ग्रन्थ के सब भागों को एक जैसी सफलता न हो वर्तमान महाभारत तथा पुराणों की सी भाषा को ही जन्म देगी)। इस प्रकार प्रथमयुगीन प्राकृत का संस्कृत रूप और बात है और मध्य-युगीन प्राकृत से पाणिनीय संस्कृत में अनुवाद करना और बात है।

प्राकृत व्याकरण प्राकृत साहित्य का एक विशेष अङ्ग है। सब से प्राचीन ग्रन्थ भारतीय नाट्यशास्त्र है जिस के अध्याय १७ में श्लोक ६—२३ में प्राकृत व्याकरण का संक्षिप्त वर्णन पाया जाता है। अध्याय ३२ में प्राकृत के उदाहरण दिये हैं। खेद है कि इस का पाठ इतना भ्रष्ट हो गया है कि अब यह काम में नहीं लाया जा सकता।

पाणिनि को भी प्राकृत लक्षण नामी एक प्राकृत व्याकरण का

यन का प्राकृत प्रकाश है। यह वही वररुचि है जो पाणिनि का वार्त्तिककार है। प्राकृत प्रकाश पर सब से प्राचीन टीका भामह कृत मनोरमा है। इस टीका के साथ इस व्याकरण का कौवल महाशय ने अंग्रेजी अनुवाद सहित सपादन किया है। दसवें अध्याय में भामह ने पैशाची के दो छोटे से पाठ दिये हैं। ये शायद बृहत्कथा से उद्धृत किये हैं[1]।

चण्ड अपने प्राकृत लक्षण में महाराष्ट्री तथा जैन प्राकृतों (अमा०, जैम०, जैशौ०) का वर्णन करता है। इस के विषयक्रम के आधार पर कह सकते हैं कि यह खासा पुराना है।

सब से अधिक उल्लेखनीय प्राकृत व्याकरण हेमचन्द्र का है (वि० स० ११४५—१२२६) जो उस के सिद्धहेमचन्द्र का आठवा अध्याय है। इस से पहिले सात अध्याय संस्कृत व्याकरण का प्रतिपादन करते हैं। हेमचन्द्र ने देशीनाममाला कोश भी लिखा है।

और व्याकरण ये हैं—

क्रमदीश्वर के संक्षिप्तसार का अन्तिम अध्याय। यह वररुचि का अनुसरण करता है और किसी काम का नहीं।

त्रिविक्रमदेव का प्राकृत व्याकरण जो तेरहवीं शताब्दी में लिखा गया, हेमचन्द्र का अनुसरण करता है।

प्राकृत सर्वस्व—इस का कर्ता मार्कण्डेय कवीन्द्र सत्रहवीं शताब्दी में उड़ीसा के राजा महेन्द्रपाल के समय में हुआ।

रामतर्कवागीश का प्राकृतकल्पतरु।

इन के अतिरिक्त और कई व्याकरण हैं जो अधिक प्रसिद्ध नहीं।

---

१ सूत्र ४ के नीचे—हुवरय पिव ॥ कमल पिंव मुरा। सूत्र १४— हृदयस्य हितयकम् ॥ हित अक हरासि मे तलुनि।

अपभ्रश के फुटकर श्लोक जैन ग्रन्थों में, अलकारशास्त्रों में तथा शुकसप्तति, वेतालपञ्चविंशति आदि अर्वाचीन कथासगूहों में पाए जाते हैं। आश्चर्य की बात है कि विक्रमोर्वशीय नाटक की कई प्रतियों में चौथे अङ्क में राजा पुरुरवा के मुख से अपभ्रश के श्लोक कहलवाए हैं[1]। चौदहवीं शताब्दी के छन्दोगून्थ प्राकृत पिङ्गल में भी अर्वाचीन प्राकृत या अपभ्रश के पद्य पाए जाते हैं। इन की भाषा इतनी अर्वाचीन है कि जेकोबी इस को अपभ्रश कहना उचित नहीं समझता। इसे तो आधुनिक भाषाओं का आदि रूप कहना चाहिये।

अपभ्रश का सब से प्रसिद्ध ग्रन्थ जो अब मिलता है धणवाल कृत भविसत्तकह है। इस में एक वणिक्पुत्र भविष्यदत्त का चरित वर्णन किया गया है। किस प्रकार उस ने यात्रा करते समय कुरु जाङ्गल और पोतन के युद्ध में भाग लिया। जेकोबी के मतानुसार पोतन तक्षशिला का नाम है। इस के पश्चात् मुख्य कथा पात्रों के पूर्व तथा उत्तर भावों का वर्णन है।



---

१ शङ्कर पाण्डुरङ्ग ने अपने सस्करण में इन श्लोकों को नहीं दिया। अब ये प्रक्षिप्त माने जाते हैं।

दूसरा भाग।

पाठावली

पाठ १

[शौरसेनी]

श्रीहर्षकृत ' रत्नावली " नाटक के द्वितीय अङ्क का प्रवेशक । नायिका की दो सखियों सुसगता और निपुणिका का सलाप ।

(तत प्रविशति सारिकापञ्जरव्यग्रहस्ता सुसगता ।)

सुसगता—हद्धी हंद्धी ! अध कहिं दाणिं मम हत्थे इम सारिअं णिक्खिविअ गदा मे पिअसही साअरिआ भविस्सदि ! (अन्यतो दृष्ट्वा) एसा खु णिउणिआ, इदो ज्जेव्व आअच्छदि ।

---

१ हद्धी=हा धिक्। अध § १४। कहिं ७मी एक० का रूप=कस्मिन्, "कहाँ" और "किधर" का अर्थ भी देता है। दाणिं § ७४।

२ णिक्खिविअ=निक्षिप्य। इस से पहिले अङ्क में लिखा है कि सागरिका ने मैना सुसगता के हाथ सौंप दी थी। गदा § १२२। पिअसही §§ ४, ४९, १२।

३ इदो ज्जेव्व § ६८ (२)

(सत प्रविशति निपुणिका)

निपुणिका—उवलंद्धो[1] खु मए भट्टिणो वुत्तन्तो, ता जाव गदुअ भट्टिणीए णिवेदेमि । (इति परिक्रामति)

सुस०—हला णिउणिए ! कहिं दाणिं विम्हआक्खित्तहिअआ[2] विअ इधट्ठिद म अवधीरिअ इदो अदिक्कमसि ?

णिपु०—कध सुसगदा ? हला सुसगदे ! सुट्ठु[3] तए जाणिद । एदं[4] खु मम विम्हअस्स कारण । अज्ज[5] किल भट्टिणा सिरि पव्वदादो आअदस्स सिरिपण्डदासनामधेअस्स धम्मिअस्स सआसादो अआल-कुसुम-सजणण-दोहल सिक्खिअ, अत्तणो[6] परि-गहिद णोमालिअ कुसुम-समिद्धिं[7] सोहिद करिस्सदि त्ति एद वुत्तन्तं देवीए णिवेदिदु पेसिद म्हि । तुम उण[8] कहिं पट्ठिदा ?

सुस०—पिअसहिं साअरिअ अण्णेसिदु[9] ।

---

१ उवलद्धो §§ १७, १२५ । मए § १०६ । भट्टिणो § ६६ । ता=वैदिक तात् "इस लिये" । जाव §§ १, २१ । गदुअ=गत्वा § १२२ ।

२ विम्हअ § ४७ । आखित्त (आ+क्षिप्) § १२५ । हिअअ §§ ६, ६० विअ=इव (ए=क्रम इव) । ठिद (स्था) § १२५ । अदिक्कमसि (अति=क्रम्) ।

३ सुठ § ३८ । जाणिद § १२५ (ज्ञा) ।

४ एद § १२ ।

५ अज्ज § ४४ । सिरि § ६८ । पव्वदादो=पर्वतात् § ५०, § ८६ । आअद § २ । धम्मिअ=धार्मिक, यहां अर्थ है ' जादूगर, इन्दजालिया ।" सआसादो=सकाशात् । अआल=अकाल ।

६ अत्तणो § १०० । गहिद [ग्रह] § १२५ । णोमालिआ § ७५ ।

७ समिद्धि=समृद्धि । त्ति § ७४ । पेसिदम्हि § ६८ [१] ।

८ उण ' परन्तु " § ३, " लेकिन ?' अर्थ में पुणो । पट्ठिदा [प्र+स्था] ।

९ अण्णेसिदु, तुमुन्नन्त [अनु+इष्] ।

सअवुढ्ढिदं इमं जणं परिच्चइअ पण्णमेत्त-दंसण परिचिदं[1] अणु
गच्छन्तो ण लज्जसि? अधवा को तुह दोसो? असरण-राए पहरणे-
मीदेण तए पच्च अज्झवसिदं। भोदु[2]! असरणं दाव उवालहिस्सं[3]
[सास्रम्] भअव कुसुमाउह! णिज्जिद-सुरासुरो[4] भविअ
इत्थीजणं पहरन्तो ण लज्जसि? अण्णधा मम मन्दभाइणीए इमिणा
दुण्णिमित्तेण[5] अवस्सं मरणं उवट्ठिदं। [प्रत्यक्षमवलोक्य] ता जाव ण
को वि इध आअच्छदि ताव आलेक्ख-समप्पिदं[6] से अद्दिमदं जणं
पेक्खिअं[7] जधासमीहिदं करिस्सं [साध्वसमेकमना भूत्वा माल्येन पत्रक
गृहीत्वा निश्वस्य] जइ वि अदिसद्दमेणं[8] वेवदि अअं अद्दिमेत्त मे
अग्गहत्थो, तधा वि तस्स जणस्स अण्णो दंसणोवाओ[9] णत्थि त्ति
जधा तधा आलिहिअ पेक्खिस्सं। [ततः प्रविशति सुसंगता]

सुस०—एदं क्खु चित्तफलअं ता जाव पविसामि [प्रविश्यावलोक्य
च सविस्मयम्।] किं उण एसा गरुअ[10] आउराआसित्त-हिअआ आलिहन्ती
ण मं पेक्खदि। ता जाव दिट्ठिवधं से[11] परिहरिअ णिरूवइस्सं।

---

१ दंसण। § ४१ ६४।

२ पच्चअ § २० [देखो हि० पहला]। अज्झवसिद § ४४ [अधि+अव+√सो] भोदु ॥ ७५।

३ उवालहिस्स=उपालप्स्ये।

४ णिज्जिद=निर्जित। भविअ § ११२। इत्थी=स्त्री, यह शब्द प्राचीन रूप इत्थी की सूचना देता है। पहरन्तो=प्रहरन्।

५ दुण्णिमित्त=दुर्निमित्त। उवट्ठिद=उपस्थित।

६ आलेक्खसमप्पिद=आलेख्यसमर्पित।

७ पेक्खिअ § १२१।

८ सद्दस=साध्वस।

९ उवाअ=उपाय § १७। णत्थि=नास्ति § ८३।

१० गरुअ=गुरु [क] ' भारी " § ७१।

११ दिट्ठिवध=दृष्टिपथ। से=तस्या § १०१।

कध ? भट्टा आलिहिदो ! साहु साथरिए साहु ! अध वा ए कमलाअर वज्जिअ राअहंसी अण्णस्सिं अहिरमदि।

साग०—(सास्रम्) आलिहिदो मए एसो। किं उण णिवडन्त वाह-सलिलो मे दिट्ठी पेक्खिदुं ण पभवादि !

कध सुसंगदा ? सहि सुसंगदे, इदो उवविसं।

सुस०—(उपसृत्य फलकं गृहीत्वा दृष्ट्वा च) सहि, को एसो तए आलिहिदो ?

साग० (सलज्जम्)—सहि, ण पउत्त महूसँवो भअवं अणगो।

सुस०—(सस्मितम्) अहो दे णिउणत्तण ! किं उण सुण्णं विअ चित्तं पडिभादि ! ता अहं पि आलिहिअ रदि-सणाध करिस्सं ।

साग०—(विलोक्य सक्रोधम्) कीसं तए अहं एत्थ आलिहिदा ?

सुस०(विहस्य)—सहि, किं अआरेण कुप्पासि? जादिसो तए कामदेवो आलिहिदो, तादिसी मए रदी आलिहिदा ता अण्णधा सभाविणि किं तुह एदिणा आलविदेण ? कधेहि सव्वं वुत्तन्तं।

साग०-(सव्रीड स्वगतम्) णं जाणिदम्हि पिअसहीए। पिअसहि,

---

§ १०६ । परिहरिअ क्त्वान्त (परि+हृ)। णिरूवइस्स निरूपण करूंगी § १७ ।

१—कमलाअर 'कमलों का ढेर', कमलों की बावड़ी । वज्जिअ वज्जदि (वृज्) का क्त्वान्त रूप, 'छोड़कर'।

२—णिवडन्त § १७ ।-बाह-(बाष्प) § ३८ के विरुद्ध । "आँसू" के लिये प्रत्यक्त बप्फ *बाफ—बाह (§§ ६, १३) हो जाता है। "भाप" इत्यादि के अर्थ में वह बप्फ रहता है (तुलना करो—हिन्दी भाफ, भाप) (पिशल § ३०५)।

३—उवविस (उप+विश्)।

४—पउत्त § १२५ (प्र+वृत्)।

५—कीस "क्यों ?"। एत्थ "यहाँ" § ७०।

६—कुप्पसि 'तू क्रोध करती है"।

७—एदिणा=एदेण। आलविद (आ+लप्)। सव्व § ४५ (हिन्दी सब)।

८—ण=नून ।

मदही सु मे सज्जा। ता तथा करेतुं जधा ण पद पुरुन्तं अवरो को वि आलिसंदि।

सुस०—सहि, मा लज्ज, मा लज्ज।

अनुवाद

सागरिका—हृदय, शान्त हो जा, शान्त हो जा। इस दुर्लभ जन की प्राप्ति के लिए आशा बनाये रखने में क्या फायदा है? इसका परिणाम केवल क्लेश है। एक और बात—यह कैसी मूर्खता है कि यद्यपि उसके दर्शनमात्र से ऐसा सन्ताप होता है तथापि तू उसको फिर देखना चाहता है! निष्ठुर, ऐ निष्ठुर हृदय! क्या तुझे लज्जा नहीं आती कि तू इस जन को छोड़कर जो जन्म से ही तेरे साथ बढ़कर बड़ा हुआ है, एक ऐसे व्यक्ति के पीछे जा रहा है जिसको तूने केवल एक क्षणिक झलक में देखा है? नहीं इसमें तेरा क्या दोष है? तूने कामदेव के बाणों के गिरने से भयभीत होकर ऐसा निश्चय किया। अस्तु मैं काम को डाटूंगी। (आँसू बहाती हुई) भगवन् कुसुमायुध! सुर और असुरों को हराने के बाद क्या तुम्हें स्त्रियों पर प्रहार करने में लज्जा नहीं आती? इस दुर्निमित्त से मुझ सर्वथा मन्दभागिनी का मरण अवश्य निकट है। (चित्रफलक को देखती है) इसलिए जब तक कोई दूसरा नहीं आता तब तक इस अभिमत जन को चित्र में बना कर मैं अपने अभिलाष को पूरा करूंगी। (चित्रफलक को बडे ध्यान से देखकर आह भरती हुई) यद्यपि सक्षोभ के कारण मेरी उंगली अत्यन्त काँप रही है तथापि उसे देखने का और कोई उपाय नहीं है। इसलिए यथा कथञ्चित् चित्र बनाकर उसे देखूंगी। (सुसंगता आती है)।

सुसंगता—निःसन्देह यह कदली गृह है। इसलिए मैं पहिले अन्दर जाऊँगी। (अन्दर जाती है और विस्मय से देखती है)

१—करेतु § ११६। अवरो § १० (हिन्दी और)।

यह क्या, इसका हृदय उत्कट अनुराग से इतना तन्मय हो रहा है कि चित्र बनाती हुई यह मुझे नहीं देखती। तो पहिले आँख बचाकर वास्तविकता का पता लगाऊँगी। (चुपके चुपके उसके पीछे जाती है और उसके कन्धे के ऊपर से देखती है, प्रसन्न होकर) यह क्या, महाराज का चित्र बनाया गया है? साबाश, सागरिका साबाश! अथवा कमलाकर को छोड़कर राजहसनी दूसरे के साथ रमण नहीं करती।

सागरिका—(आखों में आँसू भरे हुए) मैंने इसका चित्र बना लिया है। किन्तु मेरी दृष्टि गिरते हुए आँसुओं में डूबकर इसे देख नहीं सकती। कैसे, सुसगता? सखी सुसगता, इधर बैठ।

सुसगता—(निकट आकर और चित्र फलक को देखकर) सखी! यह तुमने किसका चित्र बनाया है?

सागरिका—सखी! भगवान् अनङ्ग का, जिनका महोत्सव मनाया जा रहा है।

सुसगता—(मुसकराती हुई) अहो! बलिहारी है तेरी निपुणता की! किन्तु चित्र सूना जैसा लगता है इसलिए मैं भी इस के पार्श्व में रति का चित्र बनाये देती हूँ। (कूर्ची को लेकर चित्र बनाती है)।

सागरिका—(चित्र को पहिचान कर, रोष से) क्यों, तूने इस पर मेरा चित्र बनाया है?

सुस०—सखी, अकारण क्रोध क्यों करती है? जैसा तूने कामदेव बनाया है वैसे ही मैंने रति बना दी है। अतएव ऐ पाखण्डिनी! तेरे इस प्रलाप का क्या प्रयोजन? सारा वृत्तान्त कह सुना।

सा०—(सकुचाती हुई, आप ही आप) अच्छा, तो प्यारी सखी ने मेरे दिल की बात जान ली। (प्रगट) प्यारी सखी, मैं

बहुत लज्जित हूँ। इसलिए ऐसा कर जिससे इस बात को कोई दूसरा न जाने।

सुस०—सखी न लजा, न लजा।

उद्धरण नं० ३

शौरसेनी।

यह उद्धरण पिशल के द्वारा सम्पादित (१८७७) बंगाल संस्करण से लिया गया है, पृष्ठ २६ (अङ्क २, आरम्भ)। साधारण देवनागरी संस्करणों के साथ इसकी तुलना करने से मालूम होगा कि मूल पुस्तक में अन्धाधुन्ध हेरफेर किया गया होगा। यहाँ राजा अपने हाथ में धनुष धारण किये हुए है और वनपुष्पों की माला पहिने हुए है, दूसरे विवरण में वह यवनस्त्रियों से (जवनीहिं) परिचारित है जो धनुष धारे और फूल पहिने हुई हैं। वहाँ राजा अपनी प्रेमिका के चिन्तन में जाग कर रात बिताता है यहाँ राजा नहीं किन्तु विदूषक है जो सो नहीं सकता, यद्यपि वह निद्रा की गोद में विश्राम लेने की चेष्टा में व्यग्र है।

शकुन्तला के दूसरे अङ्क में विदूषक मृगयाशील राजा के वयस्यभाव के कारण होनेवाले अपने दुःखों का वर्णन करता है।

ही माणहे[1], हदो म्हि, एदस्स मिअआसीलस्स[2] रण्णो वअस्सभावेण णिव्विण्णो। 'अअं मओ[3], अअं वराहो' त्ति मज्झन्दिणे

१—ही माणहे, खेद सूचक शब्द जो साहित्यकारों के मतानुसार विदूषक के मुँह से निकलता है। पाठान्तर–ही ही भो, यह विस्मय सूचक है।

२—मिअआ=मृगया 'शिकार'। रण्णो § ६६। णिव्विण्णो=निर्विण्णः। (निर्+विद्)।

३—मओ="मृग"। मज्झन्दिणे, तुलना करो § ६६। गिम्हे=ग्रीष्मे § ४७। पादव='पेड़' § १७।

वि गिम्हे विरल पादव च्छाआसु वण राईसुं आहिण्डिअ, पत्त-सकर कसाअ विरसाइं² उण्ह कडुआइं पिअन्ति गिरिणई सलिलाइं। अणिअद वेलं³ च उण्हुण्ह मस भुञ्जीअदि। तुरअ गआण च सद्देण रत्तिं⁴ पि णत्थि पकाम सुइदव्व।

महन्ते जेव पच्चूसे⁵ दासीए पुत्तेहिं⁶ साउणिअ लुद्धेहिं कण्णो घवादिणा वणगमणं⁶ कोलाहलेण पबो धीआमि⁷। एत्तिकेणावि⁸ दाव पीडा ण णुत्ता जदो गण्डस्स उवरि विप्फोडओ सवुत्तो। जेणं

१—वणराईसु='जगली पगडण्डियों में'। आहिण्डिअ 'भटकते हुये' हिण्डू 'भटकना' धातु प्राकृतिक शायद अनार्य धातु है, तुलना करो, आहिण्डअ 'पथिक' (मृच्छकटिक)।

२—पत्त='पता' § ४५। सकर 'मिश्रण'। उण्ह=उष्ण § ४७। कडुअ कटुक। पिअन्ति=पिये जाते हैं (कर्मवाच्य)।

३—अणिअद=अनियत (√यम्)। भुञ्जीअदि= खाया जाता है (कर्मवाच्य)।

४—रत्तिं पि, कालावधि-सूचक कर्मकारक 'रात भर' पाठान्तर रत्तिम्मि वि 'रात को भी'। सुइदव्व=प्रा० सुविदव्व, सुवदि (सोता है) क्रिया से।

५—पच्चूसे= सुबह' तुलना करो § ४४। साउणिअ=(शाकुनिक)- लुद्ध=(लुब्ध, अधिक प्रचलित रूप लुब्धक), 'चिड़ीमार', 'शिकारी'।

६—कानों को फाड़ने वाला, कण्ण=कर्ण, तुलना करो प० कन्न हिं०कान। वणगमण (चिड़ीमारों का) 'तपस्वियों का नहीं।' पाठान्तर वणग्गहण "जगल को घेरना और जीवों को बाहर न निकलने देना", यह पाठ अच्छा अर्थ देता है।

७—पबोधीआमि=(कर्मवाच्य) 'जगाया जाता हूँ'।

८—शौ० एत्तिक एत्तिअ=एतावत्। वुत्त=(वृत्त) "समाप्त हुआ"। विप्फोडओ=विस्फोट (क), "फोड़ा"।

९—पाठान्तर हिओ=ह्यस्, कल § २८। अम्हेसु, सप्तमी बहु० § १०६, अनुस्वार वैकल्पिक है।

१०—दासीपुत्र गाली है, जैसे हिं० हराम जादा प० कजर दा पुत्त।

११—पाठ,—ग्गहण।

किरा अग्गेदसु अवहीवेसु तरुथमवदा मआणुसारिणा अस्समपद पविट्ठेण[1] मम अधण्णदाए सउन्तला णाम काबि तावसकण्णा दिट्ठा। तं पेक्खिअ सम्पदं णअरगमणस्स कधं[2] पि ण करेदि। एवं ज्जेव चिन्तअन्तस्स मम पहादा[3] अच्छीसु रअणी। ता का गदी? जाव णं किदाआरपरिकम्मं[4] पिअवअस्सं पेक्खामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) एसो बाणासणहत्थो हिअ णिहिद पिअ अणो वण पुप्फमालाधारी इदो ज्जेव आअच्छदि पिअवअस्सो। भोदु अङ्ग मङ्ग विअलो[5] भविअ चिट्ठिस्सं, एवं पि णाम विस्सामं[6] लहेअ। (दण्डकाष्ठमवलम्ब्य स्थितः)।

अनुवाद

ऊः! मैं इस मृगयाशील राजा के वयस्य भाव से तंग आ गया हूँ। 'यह मृग है, यह सुअर है' इस प्रकार ग्रीष्म के मध्याह्न समय भी ऐसे वन मार्गों में भटक कर जहाँ प्राय कोइ छाया वृक्ष नहीं है, पत्तों के मेल से कसैले गिरि नदियों का नीरस

१—पविट्ठ=(प्र+विश्)। अधण्णदा='अधन्यता' § ४८। शुद्ध पाठ सउन्तला है, न कि सउन्दला।

२—कध=कहानी § १३ (कथाम्)।

३—पहादा=प्रभाता (प्र+भा)। 'प्रभात हो गई'। अच्छीसु, सप्तमी बहु°, § ३१।

४—किद § १२५, आआर=(आचार), परिकम्मो=नित्यकर्म।

५—मङ्ग=मृद 'मदन, मुरकना" पाठान्तर भङ्ग। विअलो=(विकलो)। लङ्गड़ा।

६—विस्साम=विश्राम। लहेअ, विधिलिङ् उ° पु° एकव § ११७ (२) लभ्।

कड़ुवा जल पीना पड़ता है। अनियत समय जला भुना मास खाना पड़ता है। हाथी घोड़ों के कोलाहल से रात को भी मन भर कर सोना नहीं मिलता। सुबह बड़े तड़के दासीपुत्र चिड़ीमार मुझे जगल को घेरने के कर्ण भेदी कोलाहल से जगा डालते हैं। और यह सब कुछ होते हुए भी मेरे क्लेशों का अन्त नहीं हो पाता, क्योंकि फोड़े के ऊपर यह एक और फुन्सी निकल आई है। क्योंकि (कल) हमें पीछे छोड जाने के बाद महाराज हिरन का पीछा करते करते एक आश्रम में जा निकले और मेरे दुर्भाग्य से उनकी दृष्टि शकुन्तला नाम की तापस कन्या पर पड़ी। जब से उन्होंने उसको देखा है वे नगर को लौटने का नाम तक नहीं लेते। मैं इसी विचार में पड़ा हुआ था कि मेरी आँखों में ही रात कट गई। तो अब क्या हो सकता है? चलकर अपने सखा के दर्शन करता हूँ जो स्नानादि नित्य कर्म से निवृत्त हो चुके हैं। (<u>घूमकर ऊपर को देखता है</u>) ये हाथ में धनुष लिये हृदय में प्रियजन को रक्खे और गले में जगली फूलों का हार पहिने वे आ रहे हैं। अच्छी बात, अङ्ग अङ्ग के टूटने की विकलता दिखलाकर खड़ा हो जाता हूँ। इस तरह शायद विश्राम मिल जाय। (<u>लाठी पर झुककर खड़ा होता है</u>)

उद्धरण ४

शौरसेनी

राजा के सामने शकुन्तला, जिसे वह भूल गया है।

अङ्क ५[1] (<u>स्वगतम्</u>) इम अवत्थंतर गदे तादिसे अणुराए

१—पिशल् का सस्करण, पृ० १०४। तुलना करो मोनियर् विलियमस् पृ० २०३।

२—अवस्थान्तरम्, बदली हुई दशा।

किं वा सुमराविदेणे। अध या अत्ता दाणिं मे सोधणीओ। भोदु, ववसिस्सं। (प्रकाशम्) अज्जउत्त—(अर्धोक्ते) अध या सम्म ईदो दाणि एसो समुदाआरो। पोरव! जुत्त णाम तुह पुरा अस्सम पदे सब्भावु त्ताण हिअअं इम जण तधा समअ पुव्वं सम्माविअ संपदं ईदिसेहिं अक्खरेहिं पच्चाचिक्खिदुं।

राजा हैरानी और रोष की हालत में।

शकुन्तला आगे कहती है—

भोदु। परमत्थेदो जइ पर-परिग्गह-सङ्किणा तए एवं पउत्त ता अहिण्णाणेण इमिणा तुह आसङ्कं अवणइस्सं।

१—सुमरेदि धातु का विध्यन्त भ्रात रूप।

२—सोधणीओ-शुध्+णिच्+अनीय। पाठान्तर सोअणीओ=शोचनीय।

३—ववसिस्स वि+अव+सो का लृट् रूप, मैं निश्चय करूँगी। टीका में 'रहस्य की बात कहना' दिया गया है। अज्जउत्त § २।

४—सशयित सशयात्मक" (सम+शी) शायद 'कोशिश करूँगी।"

५—समुदाचारो 'उचित सबोधन" अर्थात् अज्जउत्त" शब्द। नाटकों में स्त्री अपने पति को इसी शब्द से सबोधन करती है। यह शब्द और सम्बन्ध में भी व्यवहृत होता है।

६—जुत्त णाम 'यह तो ठीक ही है" § ३४। पाठान्तर-ण जुत्त णाम।

७—' स्वभाव से शुद्ध और सरल हृदय वाली '

८—समयपूर्वम् समय=कौल। सभाविअ का पाठान्तर पतारिअ "धोखा देकर"। अक्खर=अक्षर।

६—प्रति+आ+चक्ष् प्रत्याख्यान करना।

१०—शौरसेनी सवादों के बीच जो सस्कृत वाक्य थे वे छोड़ दिये गये हैं।

११-परमार्थत 'वास्तव में'। "इ शौरसेनी में जदि भी होता है § १। परिग्गह 'परिग्रह'=पत्नी। पउत्त=प्रयुक्तम् § १२२ (युज्)।

१२-निशानी। शौरसेनी में इस नाटक का नाम अहिण्णाण-सउन्तल होगा।

१३-पिशल का पाठ तव। सन् १६०० में उन्हें भी 'तुह' पाठ ग्राह्य होता। तुलना करो ग्रामर § ४२१।

[राजा 'प्रथम समय' के सम्बन्ध में व्यावहारिक शब्द कहता है]।

हद्धी ! हद्धी ! अगुलीअअ-सुण्णा मे अगुली । (सविषादं गौतमीमुखमीक्षते)।

गौतमी--जादे ण दे सक्कावदारे सचीतित्थे उदअं वन्दमाणाए पब्भट्ठ अगुलीअअं।

[राजा स्त्रियों की चतुराई पर मुसकराता है]।

शकु०--एत्थे दाव विहिणा दसिद पहुत्तणं, अवरं दे कधइस्सं।

[राजा अब भी सुनने के लिए इच्छुक है]

ण एक्कदिअम वेदस-लदा-मण्डवए णालिणी-वत्त-भाअणगेंद उदअं तुह हत्थे सण्णिहिद आसी।

[राजा अब भी सुनता है]।

तक्खणं सो मम पुत्त-किदओ मअ-सावओ उवत्थिदो। तदो तए अअं दाव पढेम पिवदु त्ति अणुकम्पिणा उवच्छन्दिदो। ण उण दे अवरिचिदस्सं हत्थादो उदअं अवगदो पादु। पच्छा तस्सिं

१—" अगूठी से सूनी।"

२—जाद " पुत्र "।

३—शक्रावतारे शचीतीर्थे। पब्भट्ठ=गिरगयी (प्र+भ्रश्)।

४—एत्थ ' यहाँ " § ७०।

५—=(प्रभुत्वम्), यथा, इसकी उत्पत्ति-स्वन से है।

६—कधइस्स § १३४।

७—कमल के पत्तों के " दौने में "।

८—आसी § १३३।

९—=तत्क्षणम्। पुत्तकिदओ " गोद लिया हुआ बच्चा "। इस समास में पदव्यत्यय है। मअसावओ=मृगशावकः " हरिण का बच्चा "।

१०—पढम § २०। उवच्छन्दिदो (उप+छन्द्) "पुचकार कर बुलाया गया"।

११—अपरिचिद=अपरिचित (अ+परि+चि)।

उद्धरण नं० ५

शौरसेनी

कर्पूरमञ्जरी अङ्क ४

चरित्र-नायिका कर्पूरमञ्जरी रानी के महल के एक कमरे में बन्द की गई है। किन्तु इस कमरे से महल के उद्यान तक एक सुरङ्ग है। रानी ने इस सुरङ्ग के उद्यान वाले द्वार को बन्द करवा दिया है।

सारङ्गिका राजा के पास प्रवेश करती है और विदूषक रानी से सन्देश लेकर उसके पास आता है।

सारङ्गिका—(पुरतोऽवलोक्य) एसो महाराश्रो मरगद-पुञ्जंदो कश्रली-घर श्रणुप्पविट्ठो। ता गदुश्र देवीए विएणाविदं णिवेदेमि। (उपागच्छति) जश्रदु जश्रदु भट्टा। देवी विएणवेदि जधा साश्रस-मए तुम्हे मए परिणायिदव्वे त्ति।

विदूषक—भोदि किं एद श्रकएड-कुम्भएड-पडेण ?

राजा—सारङ्गिए सव्व वित्थरेण कधेसु।

सारङ्गिका—एद विएणवीश्रदि। अणन्तरादिक्कन्त-चदुद्दसी दिवसे देवीए पोम्म-राश्र-मई गोरी भेरवानन्देण कदुश्र पदिट्ठा

१-मरगद § १२। "मरकतपुञ्ज" अव्यक्त किसी आसन या कुञ्ज का नाम है, जहाँ से राजा कर्पूरमञ्जरी को हिंडोले पर झूलती देखा करता था। श्रणुप्पविट्ठो (अनु+प्र+विश्)।

२-णिजन्त क्तान्त (वि+ज्ञा)।

३-साश्रसमये "सांझ समय"।

४-णिजन्त-विधि-कृदन्त (परि+नी)।

५-अकण्ड (अकाण्ड) 'अनपेक्षित' कुम्भण्ड 'सफेद मुम्बी' § ६२। लैनमैन इसका अनुवाद करते हैं—"विमल आकाश से तरबूजों की बौछार।"

६-' णिजन्त कर्मवाच्य।

७-'चौदहवें दिन जो अभी बीता है'। पोम्म § ३६ 'लालों का बना हुआ'।

विदो। अज्ज च दिक्खा-विहि प्पविट्ठाए देवीए विएणत्तो जोईसरो गुरु-दक्खिणा-णिमित्त। भणिद च तेण "जइ अवस्स दक्खिणा दादव्वा, ता एसा दीअदु।" तदो देवीए विएणत्त। "ज आदिसदि भअव" त्ति। पुणो वि उल्लविद तेण। "अत्थि एत्थ लाडदेसे चण्डसेणो णाम राआ तस्स दुहिदा घण-सार मञ्जरि त्ति। सा देव्वएणएहि णिद्दिट्ठा जधा एसा चक्कवट्टि घरिणी भविस्सदि त्ति। तदो सा महारायेण परिणेदव्वा जेण गुरुस्स वि दक्खिणा दिएणा भोदि, भट्टा वि चक्क-वट्टी किदो भोदि।" तदो देवीए विहसिअ भणिद "ज आदिसदि भअव" त्ति। अह च विएणवेदु पेसिदा। गुरु दक्खिणा वि दिएणा।

विदूषक—(विहस्य) एद त सीसे सप्पो, देसन्तरे वेज्जो। इध अज्ज विवाहो, लाडदेसे घणसार-मञ्जरी!

राजा—किं दे भेरवाणन्दस्स पहावो परोक्खो?

१– णिजन्त क्रान्त (प्रति+स्था)।

२-दिक्खा 'दीक्षा' विहि विधि 'प्पविट्ठ (प्र+विश्) 'आरम्भ किया गया।'

३-विएणत्तो 'परामृष्ट' (=विज्ञप्त), जोईसरो 'जादूगर'–योगेश्वर। दक्खिणा 'दक्षिणा'

४—दीअदु कर्मवाच्य आज्ञा 'दिया जावे'।

५—(उद्+लप्)

६—देव्वएणअ 'दैवज्ञ' (दैवज्ञ+क), णिद्दिट्ठा (नि+दिश्)।

७—घरिणी 'पत्नी' चक्कवट्टी 'चक्रवर्ती'।

८—ब्याही जानी चाहिये।

९—गुरुस्स § १०। दिएण § १२५। विएणवेदु "सूचना देने को"।

१०—कहावत "सांप सिर पर, और वैद्य दूर देश में", वेज्जो=वैद्य § ११।

११—पहावो, "प्रभाव" (प्र+भू), परोक्ख 'परोक्ष'।

सारंगिका—देवीए कारिदं पमदुज्जाणस्सि मज्झ ट्ठिद-चंदण-वड मूले चामुण्डा अदंण । भेरवाणन्दो वि देवीए सम तहिं आग मिस्सदि । तग्गेदे अ तक्करा विहिदे कोदुअ घरे विवाहो भवि स्सदि (परिक्रम्य निष्क्रान्ता)।

राजा—वअस्स ! सव्व एव भेरवाणन्दस्स विअम्भिदं ति तक्केमि।

विदूषक—एव्व एदं । ए हु मअ-लञ्छण अन्तरेण अण्णो मिअङ्क मणि पुत्तलिअ पज्झरावेदि सेहालिआगु सुमुदार वा करेदि ।

(तत प्रविशति चन्द्रजालिको भेरवानन्द)।

भैरवानन्द—इअ सा चडतरुमूले णिब्भिण्णस्स सुरंगा दुवा रस्स पिधाए चामुण्डा । (तामाराधयितु हस्तौ प्रसारयति मद्य राष्ट्रीमाधिरथ श्लोकमेकञ्च पठति) । " जयतु काली " इत्यादि (प्रविश्य उपविशति) अज्ज वि ए निग्गच्छदि सुरंगा दुआरेण कप्पूरमञ्जरी ।

(सुरंगामुखे छिद्रं विधाय कर्पूरमञ्जरी प्रविशति)।

कर्पूरमञ्जरी—भअव पणमामि !

१— पमदोद्यान ' (प्र+मद्), मज्झ § ४४,-ट्ठिद §§ १८, ११२ ।

२—आअदण ' धर्मस्थान ' (आयतन), तहिं § ११ ।

३—तग्गेदे=संस्कृत तद् गते, कोदुअ=कौतुक ।

४—विअम्भिदं ' प्रपञ्च, षड्यन्त्र ' (वि+जृम्भ्) । तक्केमि § ४१ ।

५—ए+हु ।

६—' चन्द्रमा ' (मृग-लाञ्छन) ।

७—मिअङ्कमणि ' चन्द्रकान्तमणि ', पुत्तलिआ ' पुतली ', पज्झरावेदि ' चुवाता है ' णिजन्त (प्र+क्षर्) § ४० । सेहालिआ (=शेफालिका) उक्कर ' ढेर '।

८—णिब्भिण्ण (निर्+भिद्), दुआर ' दरवाजा ' § ४७ ।

९—(प्र+नम्) ।

भैरव—उइंद घर लहसु। इध ज्जेव्व उवविस।

कर्पूरमञ्जरी उपविशति)

भैरव—(स्वागतम्) अज्ज वि ण पदि देवी।

(तत प्रविशति राज्ञी)

रानी—(परिक्रम्य पुरतोऽवलोक्य) इअ भअवदी चामुण्डा (परिणमति) (ततः परितोऽवलोकयन्ती) इअ कप्पूरमञ्जरी। ता किं णेद ? (भैरवानन्द प्रति) इद विण्णवीअदि, णिअ-भवणे विवाह-सामग्गि कदुअ आअदम्हि। ता गेण्हिअ आगमिस्स।

भैरव—वच्छे एवं करीअदु।

(राज्ञी निष्क्रमण नाटयन्तीव परिक्रामति)।

भैरव—(विहस्य स्वगतम्) इअ कप्पूरमञ्जरी ठाण अप्पणे सिदु गदा।

(प्रकाशम्) पुत्ति कप्पूरमञ्जरि सुरङ्गा-दुआरेण ज्जेव तुरिद-पेद गदुअ सट्ठाणे चिट्ठ। देवीए आगमणे पुणो आगन्तव्व।

(तथा करोति)

रानी—इद रक्खा-घर। (प्रविश्य परितोवलोक्य)

(स्वगतम्) अप, इअ कप्पूरमञ्जरी ! सा का वि सारिक्खा

१—उचितम्। लहसु § ११६, नोट २ (लभ्), उवविस (उप+विश्)।

२—विण्णवीअदि णिजन्त कर्मवाच्य (वि+ज्ञा)। णिअ-भवणे 'स्वयं मेरे घर में'।

३—गेण्हिअ गेण्हदि (ग्रह्) का क्त्वान्त रूप, वच्छा 'लड़की' (=वत्सा)।

४—'ढूँढना'

५—'तेज चाल से' § ७५। गदुअ § १२२। सट्ठाणे स्वयं तुम्हारे कमरे में, तुलना करो § २०।

६—रक्षा-गृहम्।

७—सारिक्खा 'सदृशो' §§ ६६, ४०।

विट्ठा। (प्रकाशम्) धच्छे कप्पूरमञ्जरी कीदिसं दे सरीर?

(आकाशभाषितम्) किं भणासि मह सिरो वेअणा समुप्पण त्ति। (स्वगतम्) ता पुणो तहिं गमिस्स। (प्रविश्य समन्तादव लोक्य) हला सहिओ विवाहोवअरणाइं लहु गेण्हिअ आअच्छध (परिक्रामति)।

(कर्पूरमञ्जरी प्रविश्य यथापूर्वमुपविशति)।

रानी—(पुरतोऽवलोक्य) इअ कप्पूरमञ्जरी।

भैरव—वच्छे विब्भमलेहे आणीदाइं विवाहोवअरणाइं?

रानी—अध इ! किं उण घणसारमञ्जरी-समुइदाइं आहरणाइं विसुमरिदाइं। ता पुणो गमिस्स।

भैरव—एव्व भोदु।

[राज्ञी निष्क्रमणं नाटयन्ती]

भैरव—पुत्ति कप्पूरमञ्जरि त जेव करीअदु।

[निष्क्रान्ता कर्पूरमञ्जरी]

रानी—(कारागारप्रवेशं नाटयन्ती कर्पूरमञ्जरीमवलोक्य) अए! सारिक्खदाये विणडिदं म्हि। (स्वगतम्) भाणविमाणेण खिविग्ध परिसप्पिणा त आणेदि जोईसरो। (प्रकाशम्) सहीओ ज ज णि वेदिद त गेण्हिअ आअच्छध। (चामुण्डामन्दिरं प्रति निवर्तनं नाटयन्ती कर्पूरमञ्जरीमवलोक्य) अहो सारिक्खदा!

१-कीदिस § ७०।

२—सिरो वेअणा 'सिर दर्द', शिरो वेदना।

३—उवअरण=उपकरण § १७। लहु 'तेजी से' (=लघु)।

४—(आ+नी)।

५—आहरण 'आभरण', विसुमरिद 'विस्मृत', तुलना करो सुमरदि § २७।

६-होद्, कर्मवाच्य।

७-विणडिदा " विकल

भैरव—देवि उवविस, महाराओ वि आअदो ज्जेव वट्टदि।

अनुवाद

सारंगिका—(सामने देखकर) ये महाराज तो मरकत के कुञ्ज में कदली गृह के अन्दर बैठे हैं। सो जाकर राजा को विज्ञापनीय (बात) निवेदन करती हूँ। (निकट आकर) महाराज की जय हो! महारानी कहती हैं कि हम सांझ को तुम्हारा विवाह करेंगे।

विदूषक—अरी यह आकस्मिक श्वेत वज्रों का गिरना क्या?

राजा—सारङ्गिका, सारी बात विस्तार से कहो।

सारङ्गिका—यह विज्ञापनीय निवेदन करती हूँ। गत चतुर्दशी के दिन देवी ने भैरवानन्द द्वारा पद्मराग मणि की गौरी बनवा कर प्रतिष्ठापित की थी और यह योगीश्वर दीक्षा विधि में तत्पर महारानी द्वारा गुरुदक्षिणा के लिए निमन्त्रित किया गया था। इस पर उसने कहा- यदि अवश्य दक्षिणा देनी ही है तो लाइए, दीजिए।' तब महारानी ने कहा—'जो भगवान् आज्ञा करते हैं वही होगा'। उसने फिर कहा—'लाट देश में चन्द्रसेन नाम का एक राजा है। उसकी कन्या घनसारमञ्जरी के विषय में ज्योतिषियों ने बताया है कि यह चक्रवर्ती राजा की गृहिणी होगी। इसलिए उसका महाराज से विवाह होना चाहिए जिससे गुरु की दक्षिणा भी दी जावे, साथ में महाराज भी चक्रवर्ती बन जावें'। तब महारानी ने हँस कर कहा—जो भगवान् की आज्ञा है वही हो। मैं आपको सूचना

'जादू' § ४४ निव्विग्घ 'निर्विघ्न' § २६। वट्टदि § ४५। इस प्रकार की थोड़ा बहुत निष्प्रयोजन "होना" क्रियाओं में हम सहायक क्रियाओं की उत्तरकालीन प्रथा के आरम्भों में पाते हैं। आअदो वट्टदि, तुलना करो आ गया है; दिण्णो ओदि—तुलना करो, दिया है; किदो भोदि—तुलना करो, किया है।

देने के लिए भेजी गई हूँ। गुरुदक्षिणा भी दे दी गई है।

विदूषक—(हस कर) इधर यह सिर पर साप है और वैद्य कहीं दूर देश में है। इधर आज विवाह, और लाट देश में घन सारमञ्जरी!

राजा—तुझे इस से क्या, भैरवानन्द के प्रभाव से सब कुछ परोक्ष है।

सारङ्गिका—महारानी ने प्रमदोद्यान के मध्य में स्थित वटवृक्ष के नीचे चामुण्डा का मन्दिर बनवाया है। भैरवानन्द भी महारानी के साथ वहाँ आयेगा। और उसी सुरङ्ग कौतुकगृह के बन जाने के पश्चात् उसी के अन्दर विवाह होगा। (जाती है)

राजा—मित्र! मेरा विचार है कि यह सब भैरवानन्द का ही प्रभाव है।

विदूषक—ठीक है। चन्द्र को छोड़ कर चन्द्रकान्तमणि की मूर्त्ति को कौन द्रवित करता है अथवा शेफालिका कुसुम स्तबक को बनाता है।

[भैरवानन्द जादूगर का प्रवेश]

भैर०—इस वट के मूल में सुरङ्ग के दरवाज़े पर चामुण्डा की मूर्त्ति है। (आराधना करने के लिए हाथ फैलाता है और महाराष्ट्री में एक श्लोक पढ़ता है "काली की जय हो" इत्यादि, प्रवेश करके बैठ जाता है) अभी तक सुरङ्ग द्वार से कर्पूरमञ्जरी नहीं निकली!

[सुरङ्ग के मुख पर छेद करके कर्पूरमञ्जरी प्रवेश करती है]

कर्पू०—भगवन्, प्रणाम करती हूँ।

भैर०—योग्य वर पाओ। आओ, यहाँ बैठो।

[कर्पूरमञ्जरी बैठ जाती है]

भैर०—(आप ही आप) अभी तक महारानी नहीं आई!

(रानी का प्रवेश)

रानी—(आगे होकर उसकी तरफ देखती है) अरे, यही भगवती चामुण्डा है (झुक कर इधर उधर देखती है) और यह कर्पू

रमञ्जरी है। तो यह सब क्या है ? (भैरवानन्द के प्रति) प्रार्थना है कि मैं अपने घर में विवाह सामग्री तय्यार कर आई हूँ सो उसे ले आती हूँ।

भैर०—बेटी, ऐसा ही करो।

[रानी जाने का नाट्य करती हुई घूमती है]

भैर०—(हस कर) यह कर्पूरमञ्जरी का स्थान ढूंढने गई है। (प्रकट) बेटी कर्पूरमञ्जरी सुरङ्ग द्वार से शीघ्र जाकर अपने स्थान पर ठहर। महारानी के आने पर फिर आ जाना।

[कर्पूरमञ्जरी ऐसा ही करती है]

रानी—यह रक्षा गृह है। (प्रवेश करके चारों ओर देख कर आप ही आप) अहो यह कर्पूरमञ्जरी है! यह बहुत बुरी हालत में दिखाई देती है। (प्रकट) पुत्री कर्पूरमञ्जरी, तेरा शरीर कैसा है ? (आकाश में) क्या कहती है कि बड़ी भारी शिरोवेदना हो रही है। (आप ही आप) तो फिर वहीं चलती हूँ। (प्रवेश कर के चारों ओर देखती है) प्यारी सखियो, विवाह-सामग्री शीघ्र ले आओ। (घूमती है)

[कर्पूरमञ्जरी प्रवेश करके पहिले ही की भांति बैठ जाती है]।

रानी—(देखकर) यह कर्पूरमञ्जरी है।

भैर०—पुत्री विभ्रमलेखा, क्या विवाह सामग्री ले आई हो ?

रानी—और क्या ? परन्तु घनसारमञ्जरी के योग्य आभरण लाना भूल गई। सो फिर जाती हूँ।

भैर०—ऐसा ही हो।

[रानी बाहर निकल जाने के बहाने नृत्य के साथ]।

भैरव—पुत्री कर्पूरमञ्जरी फिर वैसा ही करो।

[कर्पूरमञ्जरी का प्रस्थान]।

रानी—(बन्दीगृह में प्रवेश करने के बहाने कर्पूरमञ्जरी की ओर देखकर) अहो ! मैं सदृशता के कारण भ्रम में पड़ गई हूँ।

(आप ही आप)।

(प्रकट) सखियो जो कुछ तुम्हें कहा है वही लेकर आओ। (चामुण्डा के मन्दिर में जाने का बहाना करके कर्पूरमञ्जरी को देखती है) अहो!

भैर—देवि बैठो। महाराज भी आते होंग।

उद्धरण नं० ६।

शौरसेनी]

कर्पूरमञ्जरी अक २।

श्लेषपूर्ण शैली का नमूना—विदूषक अपने स्वामी के प्रेम ज्वर का वर्णन करता है।

एसो विअवअस्सो हमो विअ मुक्कमाणसो, करी विअ मअ क्खामो मुणालदण्डो विअ घणघम्ममिलाणो, दिणदिण्णदीवो विअ विअलिदच्छाओ पभाद-पुण्णिमा-चन्दो विअ पण्डुर-परिक्खीणो चिट्ठदि।

१—(क) 'शून्यहृदय' (ख) 'मानस (झील) को छोड़कर'।

२—(क) 'काम से दुर्बल' (काम) (ख) मद से दुर्बल (हाथी)'।

३—मुणाल § ६०।

४—(क) 'अत्यधिक काम से पीया' (ख) 'अत्यधिक धूप से कुम्ह लाया हुआ' मिलाया § ६७।

५—'दिन के समय दिया गया प्रदीप' अनुप्रास को देखो 'दिन के समय प्रज्वलित दीपक की भांति'।

६—विअलिद 'विगलित-चली गई' (वि+गल्)। छाआ (क) रंग (ख) प्रकाश।

अनुवाद

यह शून्यहृदय प्यारे मित्र मानस (झील) को छोड़े हुए हंस के समान, दुर्बल मद रहित हाथी के समान मद क्षाम मुरझाए हुए कमल की डण्डी की नाईं अत्यधिक काम-ज्वर से क्षीण, दिन के समय प्रज्वलित दीप की भान्ति शोभा रहित प्रात काल के पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान कान्ति रहित और उदास होकर बैठे हैं।

उद्धरण नं० ७

शौरसेनी

मृच्छकटिक अङ्क ६

वसन्त सेना और एक चेटी

चेटी—कध अज्ज वि अज्जआ ण विवुज्झदि । भोदु । पवि सिअ पडिबोधइस्स । (इति नाट्येन परिक्रामति) ।

(तत प्रविशति आच्छादितशरीरा प्रसुप्ता वसन्तसेना) ।

चेटी—उत्थेदु उत्थेदु अज्जआ ! पमाद सवुत्त ।

वस०—(प्रतिबुध्य) कध रत्ति ज्जेव पमाद सवुत्त ?

चेटी—अम्हाण एसो पमादो । अज्जआए उण रत्ति ज्जेव ।

वस०—हंजे, कहिं उण तुम्हाण जूदिअरो ?

१—अज्जआ ' आर्या ' । विवुज्झदि ' जागती है ' (वि+बुध्) ।

२—उत्थेदु ' उठे ' (उद्+स्था) । पमाद ' प्रभात ', सुबह ।

३—' कैसे, अभी तो रात है सवेरा कैसे होगया ?' सवुत्त नपुसक लिङ्ग है। अगले वाक्य में पमादो पुल्लिङ्ग है ।

४—हजे शब्द से कोई भी महिला अपनी चेटी को सदा सम्बोधित करती है । जूदिअरो ' जुआरी ' (द्यूतकरो) ।

चेटी—अज्जए, पवहणं अ समादिसिअ पुप्फकरण्डअं जिण्णुज्जाणं गदो अज्ज चारुदत्तो।

वसं०—किं समादिसिअ?

चेटी—जोएहि रत्तीए पवहणं, वसन्तसेणा गच्छदु त्ति।

वस०—हञ्जे! कहिं मए गन्तव्वं?

चेटी—अज्जए, जहिं चारुदत्तो।

वस०—(चेटीं परिष्वज्य) सुट्ठु ण णिज्झाइदो रत्तीए। ता अज्ज पच्चक्खं पेक्खिस्सं। हञ्जे, किं पविट्ठा अहं इह अब्भन्तर चदुस्सालअं?

चेटी—ण केवलं अब्भन्तर-चदुस्सालअं। सव्वजणस्स वि हिअअं पविट्ठा।

वस०—अवि संतप्पदि चारुदत्तस्स परिअणो।

चेटी—संतप्पिस्सदि।

वस०—कदा?

चेटी—जदो अज्जआ गमिस्सदि।

वस०—तदो मए पढमं संतप्पिदव्वं (सानुनयम्) हञ्जे, गेण्ह एदं रअणावलिं। मम बहिणिआए अज्जा-धूदाए गदुअ समप्पेहि।

१—पुप्फ § ३८। करण्डअ 'टोकरी', जिण्ण 'पुराना' जीर्ण, (जॄ), उज्जाण 'उद्यान'।

२—जोएहि 'युञ्जय' (युज्) का णिजन्त लोट् रूप। रत्तिए, जैसाकि उद्धृत संस्करण में पाया जाता है, असम्भव है। बम्बई संस्करण में रत्तीए।

३—=निध्यातः।

४—प्रत्यक्ष। चदुस्सालअ 'जिसके चार कमरे हों'।

५—'सङ्कट में है'।

६—रअण 'रत्न' § ५१। शौरसेनी में भी रदण है।

७—बहिणिआ 'बहिन'। * बहिनी=भगिनी, तुलना करो हिन्दी बहिन

भणिदव्व च ' अह सिरिचारुदत्तस्स गुणणिज्जिदा दासी, तदा तुम्हाण पि । ता एसा तुह ज्जेव कण्ठाहरणं होदु रअणावली ' ।

चेटी—अज्जए, कुप्पिस्सदि चारुदत्तो अज्जाए दाव ।

वसन्त०—गच्छ । ण कुप्पिस्सदि ।

चेटी-(माला गृहीत्वा) जं आणवेदि । (इति निष्क्रम्य पुन प्रविशति) अज्जए, भणादि अज्जा धूदा—' अज्जउत्तेण तुम्हाणं पसादीकिदा । ण जुत्त मम एद गेण्हिदुं । अज्जउत्तो ज्जेव मम आहरण-विसेसो त्ति जाणादु भोदी' ।

(ततः प्रविशति दारकं गृहीत्वा रदनिका)

रद०—एहि वच्छ,—सअडिआए कीलम्ह ।

दारकः—(सकरुणम्) रदणिए ! किं मम एदाए मट्टिअआए सअडिआए ? तं ज्जेव सोवण्ण-सअडिअं देहि ।

रद०—(सनिर्वेदं नि श्वस्य) जाद, कुदो अम्हाणं सुवण्णववहारो । तादस्स पुणो वि रिद्धीए सुवण्ण-सअडिआए कीलिस्ससि । ता जाव विणोदेमि णं । अज्जआ-वसन्तसेणाए समीवं उवसप्पिस्सं (उपसृत्य) अज्जए पणमामि ।

पसादीकिद । समप्पेहि णिजन्त ओट् लकार (सम्+अ)।

१—कुप्पिस्सदि ' क्रोध करेगा ' ।

२—' उसे तुम्हें दिया ', अर्थात् माला को ।

३—सअडिआ ' खिलौना गाड़ी ' (शकटिका) । कीलम्ह ' हम खेलें ' § २१, § ११६ ।

४-मट्टिआ मिट्टी' § ५५ (तुलना करो हिन्दी मिट्टी, माटी) ।
चारुदत्त के लड़के रोहसेन को मागधी बोलनी चाहिए किन्तु यहाँ उसके मुख में साधारण शौरसेनी रक्खी गई है ।

५—रिद्धि=ऋद्धि § ६० ।

६—णिजन्त ओट् (वि+नुद्) ।

७—(उप+सृप्) H P में सेणाआए पाठ है ।

चेटी--अज्जए, वड्ढमाणअ समादिसिअ पुप्फकरण्डेअ जिण्णु ज्जाण गदो अज्ज चारुदत्तो।

वस०--किं समादिसिअ?

चेटी--जोएहि रत्तीए पवहणं, वसन्तसेणा गच्छदु त्ति।

वस०--हञ्जे! कहिं मए गन्तव्व?

चेटी--अज्जए, जहिं चारुदत्तो।

वस०--(चेटीं परिष्वज्य) सुट्ठु ण णिज्झाइदो रत्तीए। ज अज्ज पच्चक्खं पेक्खिस्सं। हञ्जे, किं पविट्ठा अहं इह अब्भन्त चदुस्सालअं?

चेटी--ण केवलं अब्भन्तर-चदुस्सालअं। सव्वजणस्स हिअअं पविट्ठा।

वस०--अवि सन्तप्पदि चारुदत्तस्स परिअणो।

चेटी--सतप्पिस्सदि।

वस०--कदा?

चेटी--जदो अज्जआ गमिस्सदि।

वस०--तदो मए पढमं सतप्पिदव्वं (सानुनयम्) ह पद्द रअणावलिं। मम बहिणिआए अज्जा-धूदाए गदुअ ग

१--पुप्फ § ३८। करण्डअ 'टोकरी', जिण्ण 'पुराना' जी उज्जाण 'उद्यान'।

२--जोएहि 'जुतवाओ' (युज्) का णिजन्त लोट् क जैसाकि उद्धृत सस्करण में पाया जाता है, असम्भव सस्करण में रादीये।

३--=निध्यात।

४--प्रत्यक्ष। चदुस्सालअ 'जिसके चार कमरे हों'।

५--'सकट में है'।

६--रअण 'रत्न' § ५१। शौरसेनी में भी रदण

७--बहिणिआ 'बहिन'। * बधिनी=भगिनी,

घस०—पिदुणो दे गुणणिज्जिदा दासी।

रद०—जाद, अज्जआ दे जणणी मोदि।

दारक—रदणिए, अलिअं तुम भणासि। जइ अम्हाण अज्जआ जणणी, ता कीस अलंकिदा ?

घस०—जाद, मुद्देण मुहेण अदिकरुणं मन्तेसि (नाट्येनाभरणानि अवतार्य्य रुदती) एसा दाणि दे जणणी संवुत्ता। ता गेण्ह एदं अलंकारअं। सोवण्ण-सअडिअं घडावेहि।

दारक—अवेहि। ण गेण्हिदस्सं। रोदसि तुमं।

घस०—(अश्रूणि प्रमृज्य) जाद, ण रोदिस्सं। गच्छ कील। (अलङ्कारैर्मृच्छकटिकं पूरयित्वा) जाद! कारेहि सोवण्णसअडिअं (इति दारकमादाय रदनिका निष्क्रान्ता)।

अनुवाद

चेटी—अरी! बाई जी अभी तक नहीं उठीं, अच्छा तो अब चल के जगाऊँ। (घूम कर)

(सोकर उठी हुई जैसी चादर ओढ़े वसन्तसेना आती है।)

चेटी—उठिए उठिए, बाई जी, सवेरा हो गया।

वसन्त०—(आँखें खोलकर) अरी, रात ही को सवेरा होगया?

चेटी-हमारे लेखे तो सवेरा हो गया, आप चाहे रात ही समझें।

वसन्त—अच्छा तुम्हारे जुआरी कहाँ गये?

चेटी—जी, श्रीचारुदत्त वर्द्धमानक से कहकर पुष्पकरण्ड बाग में चले गये।

वसन्त—क्या कहकर?

चेटी—कि रात ही को बहेली जोत छोड़ना ताकि वसन्तसेना जा सके।

वसन्त—अरी! मुझे कहाँ जाना है?

चेटी—बाई जी, जहाँ चारुदत्त जी हैं।

१—अलिअं § ६७।

२—घट् घड़ना का णिजन्त (तुलना करो हिन्दी घड़ना, घड़ाना)।

से तुम अत्यन्त करुण बातें कहता हो। (गहने उतार कर रोती हुई) लो, अब मैं तुम्हारी माँ हो गई। इन्हें ले जाओ, सोने की गाड़ी बनवा लेना।

बालक—जाओ, मैं तुम्हारे गहने नहीं लेता। तुम तो रोती हो।

वसन्त—(आँसू पोंछ कर) न रोऊँगी। जाओ, खेलो। (गाड़ी को गहनों से भरकर) जाओ बेटा, सोने की गाड़ी बनवा लेना।

(बालक के साथ रदनिका बाहर जाती है)

उद्धरण नं० ८

शौरसेनी

मृच्छकटिक में विदूषक की बात में लम्बे समासों के दो नमूने (अङ्क ४)—

चेटी—पेक्खदु अज्जो। अम्हकेरअ गेहदुआरं।

विदूषक—(अवलोक्य सविस्मयम्) अहो सलिलसित्त मज्जिद किद हरिदोवलेवणस्स विविह सुअन्धि-कुसुमोवहार चित्त लिहिद भूमिभाअस्स गअण तलावलोअण कोदूहल-दूरुण्णामिदसीसस्स दोलाअमाणावलम्बिदेरावण हत्थ-ब्भमाइद मल्लिआ दाम गुणा लङ्किदस्स समुच्छिद दन्ति दन्त तोरणाअभासिदस्स महा-रअणो

१—सित्त 'सींचा गया' (सिच्), मज्जिद 'बुहारा गया' (मृज्), हरिद 'हरित', उवलेवण 'लेप' (गोबर से) (उप+लिप्)।

२—सुअन्धि 'सुगन्धित', उवहार 'उपहार', चढ़ावा, चित्त लिहिद शब्दार्थ 'चित्र लिखित'। भाअ=भाग।

३—'गअण=' आकाश, (गगन), तल+अ (व्) अलोअण, उण्णामिद 'उठा हुआ' (उन्नामित), सीस 'सिर, सिरा'।

४—अवलम्बिद 'लटकना हुआ'।-ब्भमाइद टीका में भ्रमागत दिया गया है। इससे शौरसेनी में ब्भमाअद होना चाहिये। बेहतर यह लगता है कि यह ब्भमा (व्)इद 'सतृष्ण' है, इस नाटक में तुलना करो रोदाविद, 'रुलाया गया'। मल्लिआ दाम-गुण "चमेली के हार"।

५—'हाथी दान्त के ऊँचे तोरण से देदीप्यमान'।

परागोवसोहिणा पवण चलंदोलण ललन्त-चञ्चलग्गाहत्थेण 'इदो एहि' त्ति वाहरन्तेण विब्भम सोहग्ग पडाआ णिवहेणोवसोहि दस्सं तोरण धरण त्थम्भ वेदिआ णिक्खित्त समुल्लसन्त हरिद-चूद-पल्लव ललाम फटिह मङ्गल कलसाभिरामोहय पासस्सं महासुर वक्ख त्थल दुब्भेज्ज वज्ज णिरन्तर पडिबद्ध-कणअ-क्वाडस्स दुग्गद जणमणोरहाआस करस्स वसन्तसेणा भवण दुआरस्स सस्सिरीअदा । ज सच मज्झत्थस्स वि जणस्स बलादिदिट्ठ आर्श्नारेदि ।

१-सोहग्ग 'मङ्गलमय' पडाआ 'पताकाओं' के णिवहेण 'समूह से' उवसोहिद 'देदीप्यमान बनाया गया' वाहरन्तेण 'पुकारते हुए' (वाहरदि का सतत रूप-(वि+आ+ह)), महारअण 'बहुमूल्य रत्न' या (=महा रजन) 'अग्निशिख' के उवराअ 'रंग' से उवसोहिणा 'देदीप्यमान', अग्गहत्थेण 'उंगली से' चञ्चल 'कम्पायमान', पवण 'पवन' के बल से अन्दोलणा 'झूले' के साथ ललन्त 'आगे पीछे लहराता हुआ' ।

२—'जिसके दोनों (उदय) पार्श्व (पास, § ४४) स्फटिक (फटिह § १६, फलिह या फलिह बेहतर होगा देखो पिशल § २०६) के बने हुए मङ्गल-कलशों से मनोहर (अभिराम) जो फाटक (तोरण) को थामने वाले (धारण) स्तम्भों (त्थम्भ) की वेदी (वेदिआ) या अट्टालिका पर रक्खे हुए (निक्खित्त) हैं और जो आम की हरी कोंपलों (हरिद चूद-पल्लव) के शिरोभूषणों (ललाम) से देदीप्यमान (समुल्लसन्त) हैं' । (पास्स असम्भव है)।

३-' विशाल दानव (महासुर) के वक्ष स्थल (वक्ख-त्थल) जैसे दुर्भेद्य (दुब्भेज्ज (दुर्+भिद्) वज्र (वज्ज) से निरन्तर (णिरन्तर) खचित (पडिबद्ध) सोने के किवाड़ (कणअ-कवाड)।'

४-' जो ग़रीबों (दुग्गद=दुर्गत) को दु:ख (आयास) देता है (कर)।'

५-सस्सिरीअदा=सश्रीकता सुन्दरता लावण्य,-स्स-मानो स्वरभक्ति का स्वर प्रयुक्त नहीं किया गया हो, तुलना करो सक्कुणोदि=शक्नोति ।

६-प्रस्तुत संस्करण में बलादिट्ठीं' पाठ है जो सम्भव नहीं है। बला माहा

चेटी—एदु एदु । इम पदम पओदट्ठ पविसदु भट्टा ।

विदूषक—(प्रविश्यावलोक्य च) ही ही भो ! इधो वि पदमे पओदट्ठे मणि-कण्ठ मुणाल गवक्खाहोओ खिणिदिद-सुरूप मुदिद-पाडुरीअवा विविद-रदण पडिबद्ध कञ्चण-सोवाणे सोहिदाओ पासाद पन्तीओ ओलम्बिद मुत्ता-दामेहि फलिह-पादोमण मुहवन्देहि णिज्झाअन्ति विअ सन्नादि । सोत्थिओ विअ सुदोअपिरदो णिहा आदि दुवारिओ । कदलिदो चकमोरएहिं पओदिदा ण मअयन्ति पावसा वहि सुधा-धवलदार । पविसदु भट्टी ।

राष्ट्री में प्रयुक्त होता है । इसपर बनाये गये शौरसेनी है । कण्णोरिदे दिक्ना (फा+इ) मान्य 'अदृशीत' मध्यात ।

१-पमादुईं भीतर' (=ऊक्षेइ) ।

२-'काशी के जैसे रंग वाला (गण्डकाश्च, तुलना करो महाराष्ट्री मयण-छाया', किन्तु महाराष्ट्री शौरसेनी धाया, गुन्दरगा' । नियम (§ १५२) से मुदा की उत्पत्ति *छायाका से *छुप्पा या *छायाका से अज्ञात है । 'चन्द्रमा, कपूर या कमल-नाल' ।

३—मुदिद ' मुद्रत मुदय ' घूमा ' (अपभ्रंश मुस्कट, हिन्दी घूम) ।

४—सोवाण ' सीढ़ियाँ ', सोपान, § ११ ।

५—' महलों की पंक्तियाँ ', § १२ ।

६—' खिड़कियाँ ' ' जहाँ हवा अन्दर आती है " (गवाक्ष) ।

७—णिज्झअन्ति ' देखते हैं ' (निर्+ध्यै) ।

८—सोत्थिओ=सौस्तिको, णिहाअदि 'सोता है " (हिन्दी नींद), दोवारिओ (दौवारिक) ।

९—कदलिदा करणकारक ' दही से ' दधि, तुलना करो हिंदी दही कदम ' पारदयन्तु के भाव', पओदिद (प्र-तुम्) मअयन्ति ' खाते हैं ' (मध्), पायसा ' कौवे , [प्रस्तुत संस्करण में पायसा है जो संस्कृत है न कि शौरसेनी] ।

अनुवाद

चेटी—आर्य, हमारे घर के द्वार को देखिये।

विदूषक (देखकर, विस्मय से)—क्या कहना है ! इस पर जल छिड़का गया है, मार्जन किया गया है और हरा रग चढ़ाया गया है। नाना प्रकार के सुगन्धित कुसुमों के उपहार से देहली चित्र जैसी सुहावनी हो रही है। यह फाटक गगन तल को देखने के कौतूहल से अपने सिर को बहुत ऊचा उठाए हुए है, चमेली के बन्दनवारों की लटकती हुई लड़ियों से अलकृत है जो सुरगज की सूड की भाति भूल रही हैं, हाथी-दात के बने हुए उच्छ्रित तोरण से भासमान और मगलमय पताकाओं से सुहावना है जो महारत्नों के उपराग से रञ्जित हैं और हवा में फहरातीं और अपनी चञ्चल उगलिओं को थिरकाती हुई मानो मुझे भीतर बुला रही हैं ('इधर आओ' यह कह रही हैं)। दोनों पार्श्व तोरण के आधार-स्तम्भों की वेदिका पर रक्खे हुए, समुल्लसन्त हरित आम्र-पल्लवों से रमणीक, स्फटिक के बने हुए, मङ्गल-कलशों से सजे हुए हैं (मनोभिराम हो रहे हैं)। सोने के किवाड़ों (कनक-कपाटों) पर निरन्तर महा असुर के वक्ष स्थल जैसे कठोर हीरे जड़े हुए हैं। वसन्तसेना के गृह द्वार की सश्रीकता का क्या कहना है ! यह दुर्गत मनुष्यों के मनोरथों के लिए आयासकारी है।

चेटी—आइए, आइए। यह पहला प्रकोष्ठ है। श्रीमान् प्रवेश करें।

विदूषक—(अन्दर जाकर और देखकर)—ह ह ह ! इस पहले प्रकोष्ठ में चन्द्रमा जैसी, कमल नाल जैसी शुभ्र प्रासाद पङ्क्तिया ऊपर फेंकी हुई चूर्ण मुष्टियों से धवल और नाना प्रकार के रत्नों से जड़े हुए स्वर्ण सोपानों से सुशोभित हो रही हैं। ये प्रासाद-पङ्क्तिया मानो स्फटिक के बने हुए झरोखों के रूप में अपने मुख-चन्द्रों से, जिन पर मोतियों की झालरें लटक रही हैं, उज्ज

यिनी को निहार रही है। श्रोत्रिय की भांति आराम से बैठा हुआ द्वारपाल नींद ले रहा है। दही और भात से प्रलोभित कौवे चूने की सफ़ेदता के कारण बलि को भक्षण नहीं करते। श्रीमती जी आगे चलिए।

उद्धरण नं० ६
हाल की सत्तसई।

माहाराष्ट्री

श्लोक २ अमिश्र पाउअ-कव्व
पढिउ सोउ अ जे ण आणन्ति,
कामस्स तत्त-तन्ति
कुणन्ति, ते कह ण लज्जन्ति ?

अमिअ=अमृत। पाउअ, शौरसेनी पाउद § १२। कव्व § ५०। पढिउ, 'पढ़ना', हिन्दी पढ़, सोउ 'सुनना'। आणन्ति 'जानते हैं' § १२१। तत्त तन्ति। काव्यमाला में यह पाठ है जिसमें इसका संस्कृत पाठ तत्त्वचिन्ता दिया गया है। यह पाठ गङ्गाधर भट्ट की टीका के अनुसार है जिस में तन्त्रयात्ता भी दिया गया है। वेबर (१८७०) को त त्ततन्ति पाठ उपलब्ध हुआ जिससे उन्होंने तन्त्र तन्त्री का अनुमान किया। अपने संस्करण में (१८८१) उन्होंने दूसरी हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर तत्ततत्ति (=तत्ति) पढ़ा। इसका अनुवाद या तो यह हो सकता है—प्रेम के रहस्यों का अभ्यास करना या 'प्रेम के सिद्धान्तों के विषय में चिन्ता करना', अर्थात् उन सिद्धान्तों का चिन्तन करना जो कामशास्त्र में दिये गये हैं। कह=कह, 'कैसे'।

जो प्राकृत काव्यामृत को पढ़ना और सुनना नहीं जानते (और) काम शास्त्र का तत्त्व चिन्तन करते हैं वे क्योंकर लज्जित न होंगे ?

श्लोक ३—सच्च सआइ कइ वच्छलेण कोडीअ मज्झआरम्मि ।
हालेण विरइआइ सालकाराण गाहाण ॥

"कविवत्सल हाल ने एक करोड़ श्लोकों में से सात सौ सालकार श्लोकों का सम्रह किया है।"

कइ=कवि, वच्छल, § ३६ । 'कविभक्त' । कोडीअ, 'एक करोड़ में से', § ६५, ।, मज्झआर जैन माहाराष्ट्री । मज्झयार 'मध्य' के लिए देशी शब्द ।

श्लोक ४—उअ णिच्चल णिप्फन्दा
भिसिणी-वत्तम्मि रेहइ बलाआ ।
णिम्मल मरगअ-भाअण-
परिट्ठिआ शङ्खसुत्ति व्व ॥

उअ 'लो!' वेबर ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि यह वैदिक √ऊह्, 'ध्यान में लाना, देखना', का संक्षिप्त रूप है । पिशल ने एक और ही "√उप् का अनुमान किया है जिससे ओप्प की उत्पत्ति है, त्रिविक्रम में 'देखा गया' । भिसिणी= विसिनी, शौरसेनी विसिणी । पाली और अर्धमागधी में बिस के लिये भिस शब्द है । घोष वर्ण की महाप्राणता दुर्लभ है, अघोष वर्ण की अधिक साधारण, § ६ । वत्तम्मि=पत्रे । रेहइ, 'चमकता है' तुलना करो वैदिक रेभति, 'चटकता है' इत्यादि, रेभायति, 'चमकता है'। भाअण, (भाजन) 'बर्तन'। शङ्खसुत्ति, 'शङ्ख शुक्ति, सीपी' यह श्लोक व्यङ्ग्य को समझाने के लिये काव्यप्रकाश और दूसरे साहित्य ग्रन्थों में उद्धृत किया गया है ।

"लो! कमल के पत्ते पर एक सारस बिल्कुल निश्चल होकर इस प्रकार चमक रहा है जैसे निर्मल मरकत भाजन के किनारे पर रक्खी हुई शङ्खशुक्ति।"

श्लोक ८—अत्ता ! तह रमणिज्ज
अम्ह गामस्स मडणी हुअ ।

लुअ-तिल-वाडि-सरिच्छो
सिसिरेण कअ भिसिणी-सण्ड ॥

अत्ता तुलना करो मृच्छकटिक पृष्ठ ११० अत्तिआ के साथ, टीकाकारों के अनुसार ' सास ' । प्रत्यक्षतः घर में माता, वहीं पत्नि इत्यादि किसी भी बड़ी महिला के लिये प्रयुक्त किया जाता है। लुअ ' कटा हुआ ' (=॰ लुत, लू के लिये)। वाडि, 'वाटिका' (=वाटी)। तुलना करो हिन्दी बाड़ा (वाट+क)।

" ऐ माता ! इस प्रकार शिशिर ने कमल निचय को, जो ग्राम का मण्डन और उसके लिए इतना रमणीय था, कटे हुए तिलों के बाड़े के सदृश बना दिया है।"

इस प्रकार रमणी अपने प्रेमी को सङ्केत करती है । उसके ठीक ठीक अभिप्राय के सम्बन्ध में पण्डितों में मतभेद था। कुछ कहते थे कि तिल के बाड़े के बदले समागम का स्थान कमलों की बावड़ी बनाई जानेवाली थी, चूकि लोग तिलों की फसल को काटने के लिये आने जाने लगेंगे, तुषार से जले कमल अब निर्जन पड़े होंगे । दूसरा मत यह था कि दोनों में से कोई भी स्थान अनुकूल नहीं था।
श्लोक १३ रन्धण-कम्म-निउणिए !

मा झूरसु, रत्त-पाडल-सुअन्धं ।
मुह-मारुअं पिअन्तो
धूमाइ सिही ण पज्जलइ ॥

"विनाश कार्य में निपुण", अर्थात् प्रेम के जादू में चतुर। झूरसु, 'क्रोधित होना' √ज्वर् या जूर्, 'गरम होना' (क्योंकि यह आग जलती नहीं)। धूमाइ=धूमायते । नाम प्रत्यय 'आय' आअ बन जाता है, इसी प्रकार मागधी चिलाअदि=चिरायति । शौरसेनी शीदलाअदि=शीतलायति। यह आअ-प्राय माहाराष्ट्री इत्यादि में संक्षिप्त होकर आ बन जाता है। पज्जलइ 'प्रज्ज्वलित' होती है' (प्र+ज्वल्)।

'अग्नि (शिखी) तेरे मुख के रक्तपाटल जैसे सुगन्धित वायु (मारुत) को पीती हुई केवल धुँआ पैदा करेगी,

प्रज्वलित नहीं होगी, क्योंकि इस दशा में फिर सास ही निकलना बन्द हो जायेगा"।

श्लोक १६ अमअ-मअ गअण-सेहर
रअणि-मुह-तिलअ चन्द दे छिवसु।
छित्तो जेहि पिअअमो
मम पि तेहि चिअ करेहि॥

यह चन्द्रमा के प्रति सम्बोधन है। अमअ-मअ=अमृतमय। दे='ते'। छिवसु, छिवइ 'छूता है' का लोट्लकार, (√क्षिप्), छित्तो इसी का क्रान्त रूप। चिअ (K M ने इसको विअ पढ़ा है) मर्यादाद्योतक निपात 'स्वय इन हाथों से'।

अमृतमय, गगन शेखर, रजनी मुख तिलक, चन्द्र, तेरी जिन किरणों ने (मेरे) प्रियतम को स्पर्श किया है उन्हीं से मुझे भी (स्पर्श) कर।

श्लोक ४२ आरम्भतस्स धुअ
लच्छी मरणं वा होइ पुरिसस्स।
त मरण अणारम्भे
वि होइ, लच्छी उण ण होइ॥

धुअ, 'अवश्य' (ध्रुवम्)। लच्छी=लक्ष्मी।

कार्यारम्भ करनेवाले अध्यवसायी पुरुष की लक्ष्मी अथवा मरण निश्चित है। मरण आरम्भ न करनेवाले (आलसी व्यक्ति) का भी होता है किन्तु लक्ष्मी नहीं होती।

श्लोक ४६ थोअ पि ण णीसरेइ
मज्झण्हे उअ सरीर तल लुक्का।
आअव-भएण छाही
वि, ता पहिअ किं ण वीसमासि॥

थोअ, ' थोड़ा सा ' (स्तोकम्)। णिसरेइ णीसरइ (=नि सरति) के लिए आया है, मज्झण्ह, 'मध्याह्न', § ५२। उअ, देखो श्लोक ४।

लुक्का ' लगा हुआ ', संस्कृत में इस की व्याख्या 'लीन' शब्द से की गई है, 'फाड़कर शिथिल किया हुआ या फाड़ा हुआ'=* लुक्न जिसका सम्बन्ध √लुञ्च् से है (पिशल, § ४६६)। तुलना करो पजाबी लुकना ' छिपना '। आअव ' गरमी ', (आतप) । छाही ' छाया ', यह शब्द सीधे छाया से नहीं किन्तु * छायाकी > *छायाखी (महाप्राणता, § ११) > * छाआही से लिया गया है। (पिशल, § ११) *छाआही सक्षिप्त होकर छाही बन जाता है। पहिअ ' पथिक '। वीसमसि (वि+श्रम्)। ह्रस्व स्वर के लिये √क्रम् से बने हुए रूपों णिक्कमइ, शौरसेनी अदिक्कमासि इत्यादि और इसी तरह √श्रम् से माहाराष्ट्री जैन-माहाराष्ट्री वीसमइ, इत्यादि शौरसेनी वीसम, कर्मवाच्य वीसमिअदु रूपों के साथ तुलना करो।

मध्याह्न समय आतप के भय से छाया शरीर से किञ्चित् मात्र भी बाहर नहीं जाती है अथवा शरीर से लगी रहती है, इस लिए हे पथिक मेरे पास विश्राम करो।

श्लोक ८६—ण वि तह विएस वासो
दोग्गच्चं मह जणेइ सतावं।
आससिअत्थ विमुहो
जह पणइअणो णिअत्तंतो॥

विएस ' विदेश '। दोग्गच्च ' निर्धनता ' (दौर्गत्यम्) । विमुह ' उदासीन, विमुख '। आससिअ ' इच्छित ' (आ+शस्)। पणइ ' प्रेमी ' (प्रणयिन्), अणो=जणो (जन)। णिअत्तंतो 'लौटता हुआ' (नि+वृत्)।

(प्रणयी का) विदेश-वास (और) दौर्गत्य (निर्धनता) मुझे उतना सताप नहीं देते जितना अभीष्ट अर्थ के प्रति विमुख प्रेमी का (विदेश से) लौटना।

श्लोक ८१ अइसणेण पेम्म
अवेइ, अइदसणेण वि अवेइ।
पिसुण जण जपिएण वि

अयेइ, पमेअ वि अवेइ ॥

'दृष्टि से दूर हुए कि मन से निकल चले' और 'अति परिचय से अनादर होता है।' अयेइ=अपेति। पमेअ=पथमेव (पिशल, § १४६)।

श्लोक ६४ सुअणो ज देसं अल्ल

करेइ, स चिअ करेइ पवसन्तो।

गामासण्णुम्मूलिअ

महा घड हाण सारिच्छं ॥

पवसन्त (प्र+वस्)। वड 'वड़' (वट)। उम्मूलिअ 'उन्मूलित'। सङ्केतस्थान रद कर दिया गया है।

श्लोक १०७

गोला अड ट्ठिअ पेच्छिऊण

गह वइ सुअ हलिअ सोण्हा।

आढत्ता उत्तरिउ

दुक्खुत्तारार्ये पअवीए ॥

गोला=गोदावरी, अड 'तट'। सुअ 'सुत'। गहवइ (=गृहपति)। सोण्हा 'स्नुषा', सुण्हा से सहित अधिक प्रचलित सुण्हा के लिए तुलना करो, पैशाची सुनुसा=स्नुषा। आढत्ता 'उसने आरम किया' (आ+धा का णिजन्त रूप आढवइ जिसका कर्मवाच्य आढप्पइ और क्तान्त आढत्त बनता है)। हलिअ 'हलवाहक'। पअवीए 'पथ से'।

वह देखना चाहती है कि वह मुझे सहारा देता है या नहीं।

श्लोक ११४

सवत्थ दिसा-मुह पसरिएहिं

अण्णोण्ण-कडअ-लग्गेहिं।

छल्लिं व मुअइ विंझो

मेहेहिं विसघडतेहिं ॥

छल्लिं 'छाल, त्वचा'। मुअइ (√मुच्)। मेह 'मेघ'। कडअ

'डलाना', इत्यादि (कटक)। वि+सम्+घट् ' तितर-बितर हो जाना, छिन्न भिन्न हो जाना '।

वर्षा ऋतु का अन्त।

श्लोक १२८

महु मास मारुआहअ
महुअर झंकार निब्भरे रण्णे
गाइ विरहक्खरायद्ध
पहिअ-मण मोहण गोवी ॥

मधुमास के समीर से लाये गए मधुकरों की झङ्कार से निर्भर अरण्य में कोई गोपी पथिक के मन को मुग्ध करनेवाला विरह गीत गा रही है।

श्लोक १७१

गोला-णईए कच्छे
चक्खन्तो राइआइ पत्ताइ।
उप्फडइ मक्कडो खोक्खेइ
अ पोट्ठ अ पिट्टेइ ॥

'गोला नदी के तट पर' तुलना करो ऊपर का श्लोक १०७। चक्खन्त वर्तमान सन्त रूप। चक्खइ=जक्षति 'निगल जाता है', तुलना करो मराठी, हिन्दी<चाख। राइआ ' राई ', राजिका। मक्कड 'बन्दर' (मर्कट)। उप्फडइ K M ने उत्पतति दिया है जिसका उप्पडइ बनना चाहिये। वेबर के उद्बोधनानुसार √ स्फट् जिसका सम्बन्ध स्फुट् से है, तुलना करो फुडइ फिडइ। खोक्खेइ ' खीसता है ' देशी शब्द। पोट्ट ' पेट ' ? प्रोष्ठम् ' बेंच या पीढ़ा '। पिट्टेइ=' ठोंस लेता है ' देशी शब्द। वेबर का कहना है कि इसका सम्बन्ध √ पिट्ट् से है।

"गोला नदी के तट पर काली राई के पत्तों को निगलता हुआ बन्दर कूदता फाँदता है, खीसता है और अपने पेट को ठसाठस भरता जाता है।"

उद्धरण नं० १०

माहाराष्ट्री

शकुन्तला से उद्धृत पद्य।

(अ) प्रस्तावना में वसन्त ऋतु सम्बन्धी गीत—

ईसीसि-चुम्बिआइ भमरेहिं सुउमार केसर सिहाइ।
ओदंसअन्ति दअमाणा पमदाओ सिरीसकुसुमाइ॥

(ब) शकुन्तला की विदाई का शोक—

उग्गलिअ दब्भकवलो मई परिच्चत्त णच्चणो मोरा।
ओसरिअ पण्डु पत्तो मुअन्ति अस्सूइ व लआओ॥

(स) अंक ३, शकुन्तला अपनी सखियों के कहने से अपने रचे हुए पद्य को पढ़ती है—

१—ईसीसि=ईषदीषत्।

२—(अव+तस्)।

३—उग्गलिअ, देशी शब्द (तुलना करो हिन्दी उगलना, उछालना)। उद्गलित व्याख्या है, अतएव प्राकृत पाठ उग्गालिअ। (पिशल का संस्करण, पृष्ठ १६१)—कवल 'निवाला'। मई 'मृगी' जैसा कि पिशल के संस्करण में है। देवनागरी हस्तलिखित प्रतियों में मिईओ पाठ है। बोटलिंक ने मिआ 'मृग' का अनुमान किया था।

४—चत्त=त्यक्त। नच्चणा, तुलना करो हिन्दी नाचना। मोरा 'मोर', पिशल मोरी 'मोरनी।

५—ओसरिअ (अव+सृ)। पत्त 'पत्ता'। मुअन्ति (मुच्)।

६—पिशल के बङ्गला संस्करण में अस्सूइ व पाठ है। देवनागरी हस्तलिखित प्रतियों में अस्सुपि विअ पाठ है। बोटलिंक ने अस्सू का अनुमान किया था 'अस्सूपि' (अस्सूइ के लिए) विअ लदाओ 'शौरसेनी है माहाराष्ट्री नहीं। ऊपर दिया हुआ असूइ व लआओ पाठ बोलचाल की भाषा, छन्द और अर्थ के अनुकूल है। अनु, §§ ७६, ६४। तथा, § १२।

तुज्झ ण आणे हिअअ, मम उण मअणो दिवा अ रत्तिं च।
णिक्किव दावइ बलिअ तुह हुत्त मणोरहाइ अगाइ ॥

ण आणे 'मैं नहीं जानती' तुलना करो न० ६ पद्य १। मअणो, मोनियर विलियम्स ने कामो पाठ दिया है। णिक्किव 'निष्ठुर' निष्कृप। दावइ टीका में तापयति दिया गया है। पिशल (पृष्ठ १५४) के कथनानुसार ठीक तापयति नहीं किन्तु मराठी दावेण, गुजराती दावधु, उर्दू दावना। (मोनियर विलियम्स, तवेइ अर्थात् तवेइ=तापयति)। बलिअ (बलीय)। हुत्त 'सामने' टीका—'अभिमुख'। इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित है। सरूयाओं के साथ माहाराष्ट्री अर्धमागधी खुत्त=कृत्व। मोनियर विलियम्स ने वुत्त=वृत्त पाठ दिया है। अाइ षष्ठी एक वचन। दिवा अ=दिवा च।

"ऐ निष्ठुर! तेरे हृदय को मैं नहीं जानती किन्तु मेरे अङ्गों को कामदेव अत्यन्त पीडित करता है, मेरे मनोरथ तुझ में निहित हैं।'

(द) अङ्क ५ हसपदिका गाना गाती हुई सुनाई देती है—

अहिणव-महु-लोलुवो तुमम्
तह परिचुम्बिअ चूअ-मञ्जरिं
कमल-वसइ-मेत्त-णिव्वुओ
महुअर वीसरिओसि ण कह?

लोलुवो 'लोलुप', बगाली सस्करण में लोह भाविओ पाठ है। चूअ 'आम' (चूत)। मेत्त § ६६। निव्वुवो (निर्+वृत), मोनियर विलियम्स ने निव्वुदो पाठ दिया है जो शौरसेनी है। महुअर 'मधुकर'। वीसरिओ 'विस्मृत'। मोनियर विलियम्स ने विम्हरिदो पाठ दिया है। इसके समर्थन में उन्हों ने वररुचि ३३२ का हवाला दिया है जिससे विम्हअ आदि की व्युत्पत्ति के विषय में तुलना करो § ४७। किन्तु इदो माहाराष्ट्री नहीं है। माहाराष्ट्री में वीसरिअ, विसरिअ होता है। शौरसेनी विसुमरिद (जैन शौरसेनी वीसरिद, जैन-

माहाराष्ट्री विस्सारिय, बोलचाल की भाषा में बिम्हरिअ, तुलना करो हिन्दी बिसरना। यह क्रान्त अर्थ में कर्तृवाच्य है।

"हे मधु के लोभी भौंरे! आम्रमञ्जरी को इस प्रकार चुम्बन करके कमल के अन्दर निवास करने मात्र से सन्तुष्ट होकर तू उसे कैसे भूलगया है?"

(ई) अंक ६-(मोनियर विलियम्स पृष्ठ २३०, पिशल पृष्ठ १२०)
अरिहसि मे चूअङ्कुर दिण्णो कामस्स गहिअ-चावस्स
सथविअ-जुअइ-लक्खो पञ्चब्भहिओ सरो होउ।

गहिअ=शौरसेनी गहिद। चाव 'चाप'=धनुष। सथाविअ, सथअइ=सत्यापयति का भ्रान्त रूप, 'सथा करना' सथाई को परखना, कौल करना। जुअइ=युवती। पञ्च+अभि+अधिक। होउ 'होना'। मोनियर विलियम्स का इस में मतभेद है, उन्होंने अरिहसि होउ के लिये होहि 'होना' पाठ दिया है और तु सि मए 'तू मुझ से समर्पित की गई है' से आरम्भ किया है, सथाविअ के लिये अधिक आसान पहिअजण, तुलना करो मेघदूत=पाथिक-वनिता।

"हे चूताङ्कुर, मैंने तुझे गृहीतधन्वा कामदेव को दे दिया है। तू वाग्दत्ता युवतियों को अपना लक्ष्य बनाकर उस के पाच बाणों में से सब से बढ़िया बाण हो।"

अनुवाद।

(अ) दयार्द्र प्रमदा शिरीष कुसुमों के कर्णावतंस बना रही हैं, जिनकी सुकुमार पखुड़ियों के सिरे भौरों से थोड़ा थोड़ा चूमे गए हैं।

(ब) मृगियों ने दर्भ के ग्रासों को उगल दिया है, मयूरियों ने नाचना छोड़ दिया है, लता जिनसे पीले पत्ते झड़ रहे हैं आंसू जैसी बहा रही हैं।

उद्धरण नं० ११ ।

मृच्छकटिकम् ।

माहाराष्ट्री

(अ) (श्लोक ११)

विचलइ णेउर-जुअल, छिज्जन्ति अ मेहला मणि-क्खइआ
वलआ अ सु दरअरा रअणंकु र जाल-पडिबद्धा ।

णेउर, सस्कृत नूपुर के लिये नियमित प्राकृत रूप, किसी *नेपुर या *नेपूर रूप से, तुलना करो केयूर, प्राकृत केऊर । (P § १२६) । छिज्जन्ति, कर्मवाच्य (छिद्) । क्खइअ (खच्) । सुन्दरअर=शौरसेनी सुन्दरदर । रअण § ४१ ।

"नूपुर-युगल विचलित हो रहा है, मणि-खचित मेखला टूट कर गिर गई है, रत्नांकुर-जाल से प्रतिबद्ध सु दरतर बाजूबन्द (टूटकर गिर रहे हैं)"।

(ब) अंक २, कर्णपूरक (श्लोक २०)

आहणिऊण सरोसं त हत्थिं विञ्झ-सेल-सिहराभ
मोआविओ मए सो द न्तन्तर-संठिओ परिव्वाजओ ।

आहणिऊण इदन्त (आ+हन्) । विञ्झ, § २५ । सेल=शैल [H P सस्करण में शैल पाठ है जो प्राकृत नहीं है, देखो पिशल, GR § ६०] । मोआविओ क्रान्त णिजन्त (मुच्) । ठिओ § ३८ । परिव्वाजओ 'परिव्राजक ।'

मैंने उस विन्ध्य शैल शिखर सदृश हाथी को रोष से मारा और दान्तों के बीच स्थित उस परिव्राजक को छुड़ा डाला ।

(स) अङ्क ५ (श्लोक ३०) । विदूषक वसन्तसेना की माँ का उपहास करता है ।

सीधु-सुरासव मत्तिआ
एआवत्थ गआ हि अत्तिआ,

जइ मरइ एत्थ अत्तिआ,
होइ सिआल सहस्स पज्जत्तिआ।

सीहु 'रम, एक प्रकार की मदिरा', (सीधु)। सुरा 'शराब, इत्यादि', आसव 'कच्चे साग पात और पानी से बना हुआ मद्य'। एआवत्थ=एतद्+अवस्था। अत्तिआ 'मा', देखो मोनियर विलियम्स डिक्शनरी, अत्ता के नीचे। प्रत्यक्षतः यह आर्य भाषा का शब्द नहीं है। पज्जत्तिआ 'यथेष्टता' (पर्याप्तिका)। पुस्तकों में गदा और मोदि पाठ है, जो शौरसेनी रूप हैं।

"शराब, मदिरा, मद्य पीकर मा इस दशा को प्राप्त होगई है। यदि यह मा मर जाय तो सहस्र शृगालों के लिए पर्याप्त हो"।

उद्धरण नं० १२।

कर्पूरमञ्जरी।

माहाराष्ट्री

(अ) अङ्क २ श्लोक १०

णीसासा हार लट्ठी-सरिस पसरणा चन्दणुब्बोडकारी,
चण्डो देहस्स दाहो, सुमरण सरणा हास सोहा मुहम्मि,
अङ्गाण पण्डु भावो दिअह-ससिकला कोमलो; किं च तीए,
णिच्च बाह-प्पवाहा तुह, सुहअ कए होन्ति कुल्लाहि तुल्ला।

णीसास 'निःश्वास'। लट्ठी 'लाठी', 'हार की लड़ी' भी [लड़ी से मोतियों की भांति छूट पड़ते हैं, लैनमैन।] उब्बोड 'विशीर्ण होती हुई' चुद्-अर्थ निश्चित नहीं है चुद् का अर्थ 'चटकना' या 'क्षीण होना' बतलाया जाता है। शायद निःश्वासों की नम गरमी से चन्दन से सुगन्धि निकल रही है। चण्डो 'चण्ड'। सुमरण-सरणा, 'स्मरण ही जिसकी शरण है', तुह कए 'तेरे लिये' सुहअ=सुभग। कुल्ला 'नदी से निकली हुई नहर'। तुल्ल 'तुल्य'। बाह (देखो पृष्ठ८४)।

(घ) विदूषक का प्रत्युत्तर (श्लोक ११)

पर जोण्हा उण्हा, गरल सरिसो चन्दणरसो,
खअ-क्खारो हारो, रअणि पवणा देह-तवणा,
मुणाली बाणाली, जलइ अ जल-द्दा तणुलआ
वरिट्ठा ज दिट्ठा कमल-वअणा सा सु णअणा।

जोण्हा 'ज्योत्स्ना', 'चाँदनी'। उण्ह § ४७। गरल 'विष'। खअ 'क्षत, घाव'। क्खार 'क्षार, खारा'। तवणा (तप्)। जलइ जली जाती है'। जल इ, 'जलार्द्र'। तणुलआ 'तनु-लता', § १२। वरिट्ठा 'वरिष्ठा' 'उत्तम तरुणी'।

अन्तरिय तुकों पर ध्यान दें।

(ङ) (श्लोक २४)

णिसग्ग चंगस्स वि माणुसस्स सोहा समुम्मीलइ भूसणेहिं,
मणीण जचाण वि हीरएहिं विहूसणे लग्गइ का वि लच्छी।

णिसग्ग 'निसर्ग, प्रकृति' (नि+सृज्)। चङ्ग 'दर्शनीय अच्छा' तुलना करो पञ्जाबी चङ्गा 'अच्छा'। मणीण 'मणीण' के लिए षष्ठी बहुवचन। जचाण, षष्ठी ब० व० 'खरा' (जात्य)। लच्छी-लक्ष्मी।

(द) श्लोक ३२ इसमें नायिका के झूलने का वर्णन है।

रणन्त मणि-णेउर झणझणन्त हार च्छड
कणकणिअ किंकिणी मुहला मेहला डम्बर
विलोल वलआवली जणिअ मञ्जु सिञ्जा-रव
ण कस्स मण मोहण ससि मुहीअ हिन्दोलण।

रण 'ठनठनाना'। झणझण 'झनझनाना'। छडा 'छटा'। कण-कण 'खनखनाना' (क्वण)। किंकिणी 'घण्टी'। मुहल 'मुखर' § २६। डम्बर 'पुञ्जीभूत ध्वनि'। सिञ्जा 'झनझनाने की ध्वनि'। ससि-मुही 'शशि मुखी'।

लैनमैन ने इस छन्द को अनुकरणात्मक शब्दों के प्रयोग का विशेष प्रयास वर्णन किया है, पृष्ठ २५४।

(इ) विदूषक की वाग्मिता भी उड़ान लगाने लगती है और

यह आठ श्लोकों में झूलने का वर्णन करता है जिसका अन्तिम श्लोक ४० है।

इअ पआइ विलासुज्जलाइ दोला पवञ्च-चरिआइ
कस्स ण लिहइ व चित्ते णिउणो कन्दप्प चित्तअरो ?

इअ 'इस प्रकार', इति से सम्बद्ध। पआइ=शौरसेनी पदाइ। पवञ्च 'प्रपञ्च', प्रदर्शन। चित्त 'हृदय'। चित्तअरो 'चित्रकार'।

(क) अक ३ श्लोक २

मरगअ-मणि-गुत्था हार-लट्ठि व्व तारा
भमर-कवलिअन्ता मालई-मालिअ व्व।
रहस-वलिअ-कण्ठ तीअ दिट्ठी वरिट्ठी
सवण पह णिविट्ठा माणस मे पविट्ठा।

गुत्थ 'गुथा हुआ' (गुफ्)। तारा 'चमकीला', कवलिअ 'कवलित', 'चूसा हुआ'। अन्त 'अन्त'। रहस 'रभसा' 'तीव्रता से', वलिअ 'वलित', मुड़ा हुआ। सवण 'श्रवण', कान (श्रु)। पह=पथ।

(ग) श्लोक ३५ नायिका की रचना।

मण्डले ससहरस्स गोरीए दन्त पञ्जर विलास-चोरए
भाइ लच्छणमओ फुरन्तओ केलि-कोइल तुल धरन्तओ।

'शशधर', चन्द्रमा। दन्त 'हाथी दान्त'। भाइ 'भाति', चमकीला है (अपने पूर्ण सौन्दर्य के साथ आविर्भूत होता है')। मओ 'मृग'। फुरन्तओ 'स्फुट (स्फुर्), तुल 'तुल्यता'।

(ह) अक ४, भरतवाक्यम्

अणुदिअह विफुरन्तो मणीसि जण-सअल गुण विणास अरो
रित्तत्तण-दावग्गी विरमउ कमला-कडक्ख-वरिसेण।

मणीसि 'मनीषिन्', चतुर, कृतविध। रित्तत्तण 'रिक्तता, निर्धनता'। दावग्गी 'दावाग्नि'। कमला=लक्ष्मी। कडक्ख 'कटाक्ष'। वरिस 'वर्षा' § ५७।

अनुवाद

श्लो० १० (उसके) नि श्वास हार की लड़ियों के सदृश बिखर रहे हैं, चन्दन लेप चटका जाता है, देह का दाह प्रचण्ड होगया है, मुख पर हँसी की शोभा स्मृति का विषय रह गई है, अङ्गों की पाण्डरता दिन के समय की शशि कला के समान कोमल (मन्दप्रभ) हो रही है, और ऐ सुभग! तुम्हारे कारण प्रतिदिन (उसके) बाष्प प्रवाह (अश्रुधाराएं) कुल्याओं (गूलों) के तुल्य हो रहे हैं।

श्लो० ११ (उसे) ज्योत्स्ना अत्यन्त उष्ण (लगती) है, चन्दन का लेप विष-सदृश (हो रहा) है, हार घाव पर नमक छिड़कने के तुल्य अत्यन्त (दु सह) है, रात की हवाएं देह को तपाने वाली हो रही हैं और मृणाली (कमलनाल) तीरों की बौछार (जैसी क्लेशकारिणी) है, जलार्द्र तनुलता (सुकुमार देह) जली जाती है, इस दशा में मैंने उस सुनयना, कमलमुखी वराङ्गना को देखा था।

श्लो० २५ स्वभाव-सुन्दर मनुष्य की भी आभूषणों से शोभा बढ़ती है। उत्तम मणियों की भी हीरों के साथ सजाने में लक्ष्मी (शोभा) अनिर्वचनीय लगती है।

श्लो० ३२ चन्द्रमुखी (कर्पूरमञ्जरी) का झूलना (हिन्दोलन) किस के मन को नहीं मोहता ? (जिसमें) मणिनूपुर बज रहे हैं, हार-च्छटा की झणझणाहट हो रही है, कल क्वणन करती हुई किंकिणियों (घुघरुओं) से मेखलाडम्बर मुखरित हो रहा है, [और] विलोल वलयावलि से मञ्जु झनझन ध्वनि निकल रही है।

श्लो० ४० इस प्रकार इन उज्ज्वल विलासयुक्त दोला प्रपञ्च के चरित्रों को निपुण कन्दर्प चित्रकार [कामदेव रूपी चितेरा] किसके चित्त पर अङ्कित नहीं करता ?

अक ३ श्लोक २—

मरकतमणियों से गुम्फित हार की लड़ी की भाति देदीप्यमान, भ्रमर कवलितान्त मालती माला के समान, तीव्र वेग से तिरछी

गर्दन किये हुई उसकी सुन्दर चितवन ने श्रवण पथ से होकर हृदय में प्रवेश किया।

श्लो० ३१ हाथी दान्त के विलास को चुराने वाले [अत्यन्त शुभ्र] चन्द्रमा के गौर मण्डल में केलि-कोकिल के सादृश्य को धारण करता हुआ सुव्यक्त लाञ्छन मृग सुशोभित हो रहा है।

अक ४ भरतवाक्य—

कमला [लक्ष्मी] की कटाक्ष वर्षा से मनीषियों के अशेष गुणों को विनष्ट करनेवाली प्रतिदिन सुलगती हुई निर्धनता रूपी दावाग्नि शान्त हो।

उद्धरण नं० १३

माहाराष्ट्री

रत्नावली।

(अ) अक १ मदनिका गाती है।

कुसुमाउह पिय-दूअओ मउलाइअ बहु-चूअओ
सिढिलिअ माण ग्गहणओ वाअइ दाहिण-पवणओ।
विरह विवड्ढिअ सोअओ कखिअ पिअ अण-मेलओ
पडिवालणासमत्थओ तम्मइ जुवई-सत्थओ।
इह पढम महुमासो जणस्स हिअआइ कुणइ मउआइ
पच्छा विज्झइ महुमासो जणस्स हिअआइ कुणइ मउआइ
पच्छा विज्झइ कामो लद्ध प्पसरेहिं कुसुम-बाणेहिं

वाअइ 'बहती है'। दाहिण 'दक्षिण', स्वर को दीर्घ करने से दक्खिण * दाक्खिण हो जाता है और इससे § १३ से दाहिण बनता है। तुलना करो 'दक्षिण' और हिन्दी दाहिना।

कखिअ 'उत्कण्ठित' पिअ अण 'प्रिय-जन', वालण (पाल्) असमत्थओ 'असमर्थ'। सत्थओ 'दल'। कुणइ 'करता है।'

मउअ 'स्निग्ध' (मृदुक)। पञ्ञा § ३८। विज्झइ (विध्यति) § ३५। लद्ध प्पसर 'लब्ध प्रसर', बेरोकटोक।

"कुसुमायुध कामदेव का प्यारा दूत आमों को मुकुलायित करने वाला, (स्त्रियों के) मान ग्रहण को शिथिल करने वाला, दक्षिण पवन बह रहा है। विरह से विवर्द्धित शोकयुक्त प्रियजन के मिलने के लिये उत्कण्ठित अपनी रक्षा करने में असमर्थ युवतियों का समुदाय [सार्थक] प्रेम के कारण कुम्हला रहा है। यहाँ पहले वसन्त मास [मधुमास] मनुष्यों के हृदयों को मृदुल बनाता है, इस के पश्चात् कुसुम बाणों [फूलों के बाणों] से कामदेव बेरोकटोक उन्हें बींधता है।"

[ब] अंक ४ ऐन्द्रजालिक

पणमह चलणे इन्दस्स इन्दआलम्मि लद्धणामस्स,
तह अज्ज-सम्बरस्स वि माआ सुपडिट्ठिअ-जसस्स।
किं धरणीए मिअङ्को आआसे महिहरो जले जलणो,
मज्झण्हम्मि पओसो दाविज्जउ देहि आणत्तिं।

पणमह, लोट् [प्र+नम्]। चलणे, पु० द्वितीया ब० व०, संस्कृत न० लिं०। इन्दआल [इन्द्रजाल] 'माया'। पडिट्ठिअ [प्रति+स्था] जस 'यश'। आआस 'आकाश'। जलणो [ज्वल्]। मज्झण्ह § ५२। दाविज्जउ, लोट् कर्मवाच्य णिजन्त [दा] 'दिलवाया जाय'। आणत्तिं [आ+ज्ञा]।

"इन्द्रजाल से अपना नाम ग्रहण करनेवाले इन्द्र की करतूतों को प्रणाम करो। इसी प्रकार माया से सुप्रतिष्ठित यशवाले सम्बर की करतूतों को प्रणाम करो। धरणी पर मृगाङ्क [चन्द्रमा] आकाश में महीधर [पहाड़] जल में अग्नि, मध्याह्न में प्रदोष [साझ], इन में से क्या हो? आज्ञा दीजिये।"

[स] किं जम्पिएण बहुणा जं जं हिअएण महसि सन्दट्ठुं,
तं तं दसेमि अह गुरुणो मन्त प्पहावेण।

महास ए चाहता है।

"बहुत प्रलाप से क्या? जिस जिस वस्तु को हृदय से देखना चाहता है उस उस को मैं गुरु के मन्त्र के प्रभाव से दिखलाये देता हूँ।"

(द) हरिहर-बम्ह-प्पमुहे देवे दसेमि देवराअ च,
गअणम्मि सिद्ध विज्जाहर बहु-सत्थ च णच्चन्त।
बम्ह, तुलना करो §५२। देवे द्वितीया ब० व०।
"गगन में हरिहर ब्रह्मा आदि देवताओं को और देवराज को भी और सिद्ध विद्याधर-वधुओं के नृत्य करते हुए समुदाय को दिखलाये देता हूँ।"

इस नाटिका में बहुत कम माहाराष्ट्री है। उसकी सादगी और हासशील कर्पूरमञ्जरी के साथ उसके महान् विरोध पर ध्यान दीजिये। कर्पूरमञ्जरी में भी स्वय चरित्र नायिका को लाकर इन्द्र-जाल के द्वारा उसके दर्शन की आयोजना की गई है।]

उद्धरण नं० १४

माहाराष्ट्री

सेतुबन्ध या रावणवहो।

सर्ग १ श्लोक ५७।

इस में यह दिखलाया गया है कि बन्दरों ने पहाड़ी नदियों को कैसे पार किया।

वोलन्ति अ पेच्छन्ता पडिमा-सकन्त धवल घण सघाए।
फुड फडिह सिला-सकुल खलिओवरि पत्थिए चिअ णइप्पवहे॥

√वोल् 'पार करना', तुलना करो वोलेइ 'कालक्षेप करता है'। माहाराष्ट्री पेच्छइ=शौरसेनी पेक्खदि § ४०। पेच्छन्ता, प्रथमा ब० व० सघन्त। पडिमा-सकन्त 'प्रतिमा-सक्रान्त, प्रति-बिम्बित'। सघाये, द्वितीया बहुवचन § ८६। खलिअ=शौरसेनी

फलिह। पत्थिअ=शौरसेनी पत्थिद (प्र+स्था)। पवहे=प्रवाहान्।

" और वे नदियों की उन धाराओं को पार करते हैं जिनमें वे सफेद बादलों को प्रतिबिम्बित देखते हैं, मानो वे चूकर स्वच्छ स्फटिक शिलाओं के पुञ्ज के ऊपर दौड़े जा रहे हों।"

सर्ग ७ श्लोक २६

जैसे जैसे बन्दर पानी में पहाड़ों को डालते हैं लहरें आकाश को आप्लावित करती हैं।

उप्पाइअ दुम णिवहा गिरि घा उव्वत्त मुच्छिअ महा मच्छा।
वेला-सेला क्खलिआ उअ भिज्जन्ति उअहि जल-कल्लोला॥

उप्पाइअ, टीका=उत्क्षिप्त (उद्+क्षिप्)। यह नियम से महाराष्ट्री में उप्पाइअ और शौरसेनी में उप्पादिद होता है। उव्वत्त (उद्+वृत्)। मुच्छिअ 'मूर्च्छित', मच्छ § २६ क्खलिअ (स्खल्)। भिज्जन्ति, भिद् का कर्मवाच्य। उअहि 'उदधि', समुद्र।

" समुद्र के जल की लहरें उन वृक्षों के समूहों को उठाये जिन पर पहाड़ों के पुञ्ज से मूर्च्छित महामच्छ चित पड़े हैं तट की शिलाओं पर स्खलित होकर आकाश ही में छिन्न भिन्न हो जाती हैं।"

सर्ग ८ श्लोक ३

समुद्र बैठ जाता है।

गिरि-सङ्खोह विमुक्का खीणा अप्पत्त-पढम-गमणोआसा,
मन्दरोलण-मउआ गलागअ व्विअ समुद्द-सलिल-उप्पीडा।

सङ्खोह=संक्षोभ। विमुक्क (वि+मुच्)। खीण § ४०। अप्पत्त (अ+प्र+आप्)। पढम § २०। ओआस=अवकाश। मउअ=मृदुक। व्विअ 'सदृश', 'जैसा'। उप्पीडा 'फव्वारे' फव्वारों के रूप में फूटते हैं'।

" समुद्र जल के फव्वारे पहाड़ों के संक्षोभ से मुक्त होकर पहिले

जैसे ऊँचे नहीं उठते हैं किन्तु बैठ जाते हैं और मन्द मृदुल आन्दोलन के साथ दोलायमान हो रहे हैं।"

श्लोक ६ जल और थल का मिश्रित ध्वंसावशेष।

मोत्ता घडन्त-कुसुम सम मरगग्र वत्त भङ्ग भरिआवत्त,

विदुदुम मिलिअ किसलअ स-सङ्ख-धवल-कमल पसम्मइ सलिल।

मोत्ता 'मुक्ता'। घडन्त सघन्त रूप (घट्) 'जोड़ा जाता हुआ'। मरगअ 'मरकत' § १२। वत्त 'पत्ता'। आवत्त (आ+वृत्)। विद्दुम 'विद्रुम', मूगा। पसम्मइ (प्र+शम्)।

"जल शान्त हो जाता है, फल मोतियों से मिले हुए हैं, भवर (आवर्त) पत्तों और पन्नों के टुकड़ों से भर गये हैं, कलिया मूगों से, (और) सफेद कमल शङ्खों से मिल गये हैं।"

श्लोक १४ काम करनेवालों की थकावट—(सुग्रीव नल से बातें करता है)।

सविओ वाणरलोओ दूरट्ठिअ विरल-पव्वअ महि-वेढ,

ण अ दीसइ सेउ-वहो, मा हु णमेज्ज गुरुअं धुणो राम धणु।

सविओ 'परिश्रान्त' (सप् हि का णिजन्तरूप)। पव्वअ 'पर्वत' महि 'पृथ्वी'। वेढ=वेष्ट 'घेरा' § २८, तुलना करो माहाराष्ट्री वेढिअ शौरसेनी वेढिद, टीका में इसका अर्थ मही पृष्ठ दिया गया है। दीसइ=दृश्यते। वहो=पथ। णमेज्ज विधिलिङ् अन्यपुरुष एक या बहुवचन।

टीकाकार को निश्चय नहीं है कि धणु प्रथमा है या द्वितीया।

(अ) यदि प्रथमा हो तो 'राम का धनुष न झुके',

(ब) यदि द्वितीया हो तो 'राम अपने धनुष को न झुकावें'।

टीकाकार ने नमयत शब्द को प्रस्तुत किया है किन्तु णमेज्ज मध्यम पुरुष बहुवचन नहीं है।

"वानर लोग परिश्रान्त हो गये हैं, पृथ्वी के तल पर पर्वत तो हैं किन्तु दूर स्थित और विरल, सेतुपथ दृष्टिगोचर नहीं होता, अतएव

(कहीं) राम का धनुष फिर गुरुता से न झुके"।

श्लोक २० नल का उत्तर—

सघिओ पव्वअ णिवहो झलिअ व रसाअल धुओं व्व समुद्दो,
जीअ वा परिच्चत्त अज्ज व संभावणा तुइ णिव्वूढा।

परिच्चत्त (परि+त्यज्)। टीका के अनुसार वा प्रकृतार्थ-बोधक है। अज्ज के बाद एक टीकाकार वि पाठ रखना उचित समझता है।

"पर्वतों का एक समूह समाप्त हो चुका है, चाहे रसातल को छिन्न भिन्न करना पड़े, समुद्र मनुध्य हो, जीवन का परित्याग करना पड़े, किन्तु अब आपकी आयोजना सिद्ध होनी चाहिए।"

राक्षस सीता को अपनी माया से राम के कटे हुए सिर का नज़ारा दिखाते हैं—सर्ग ११ श्लोक ६१ पृष्ठ ३४५।

पेच्छइ अ सरहसोदरिअ-मण्डलग्गाहिघाअ-विसम च्छिण्णं,
दूर घणु-सघिअचिअ सर पुङ्खालिद्ध सामलिअआवग।

ओदरिअ, क्रान्त (अव+तृ)। मण्डलाम 'खड्ग'। अहिघाअ (अभि+हन्)। सघिअचिअ=सघित+आश्रित § ६५। सर पुङ्ख 'तीर का पङ्ख'। आलिद्ध (आ+लिह्)=*आलिग्ध। अवग 'अपाङ्ग' § १७। पेच्छइ का कर्म ६१ वें श्लोक में आता है-"रामसिर"।

"आज सीता ने छिन्न भिन्न (मानव सिर को) देखा जो तलवार के आघात से अपहृत किया गया था, आँखों के अपाङ्ग तान कर पीछे को खींचे हुए धनुष पर रक्खे बाण के पङ्ख से अन्धकार मय हो गये थे।'

श्लोक ६२

णिव्वूढ-रुहिर-पण्डुर मउलन्त च्छेअ मास पेल्लिअ विवर,
मज्जन्त पडिअ-पहरण कण्ठ च्छेअ-दर लग्ग धारा खुण्ण।

णिव्वूढ=[निर्व्यूढ]। मउलन्त शब्दार्थ [जिससे कलियां निकल रही हों] [मुकुल] § ७१। च्छेअ 'घाव'। पेल्लिअ*पेलिअ*पेरिअ=प्रेरित। टीकाकार ने इसका अर्थ मुद्रित 'जिस पर मुद्दर

१—टीकाकार कहता है समुद्रताडनाय, 'समुद्र का ताडन करने के लिए'।

लगी हो' दिया है। भज्जन्त भञ्ज से क्रान्त 'टूट गया है'। दर 'थोड़ा सा'।

"तलवार की धार का चूर्ण, प्रहार के कारण उसके कण्ठ पर पड़े हुए घाव पर लग गया जिस पर गिरने से तलवार टूट कर टुकड़े टुकड़े हो गई, जब कि घाव का पाण्डुर रुधिर-रहित मांस विशीर्ण हो चुका था और उसने उसके विवर को ढाप दिया था।"

श्लोक ६३

णिद्दअ सन्दट्ठाहर मूल उक्खित्त दर दिट्ठ दाढा हीर,
सह्वाअ सोणिअ पङ्क पडल पूरेन्त कसण-कण्ठ च्छेअ,

णिद्दअ 'निर्दय'। सन्दट्ठ (सम्+दश्)। अहर=अधर। उक्खित्त (उत्+क्षिप्) । दाढा 'हाथी का दान्त', § ६५ । सह्वाअ टीका=सस्त्यान 'जमा हुआ', अत्यल्प प्रयुक्त धातु स्त्यै से। बेहतर *सस्क्यात से होकर सस्त्यात क्रान्त से। कसण=कृष्ण।

"निर्दयता से काटे हुए अधर (निचले होंठ) के उठे हुए मूल पर एक हीरक दान्त थोड़ा दिखाई देता है और कण्ठ का काला घाव जमे हुए शोणित के पङ्क पटल से भर गया है।"

श्लोक ६४

णिसिअर कअ ग्गहाणिअ णिलाड अड-एट्ठ भिउडि भुमआभग,
गलिअ रुहिर द्द लहुअ अणहिअ-उम्मिल्लतारअ रामसिर !

णिसिअर=*निशिवर, कअ-ग्गह 'केशग्रहण' (कच)। आणिअ= आणीअ। णिलाड 'ललाट' णलाड भी होता है, पालि नलाट या ललाट और वर्ण व्यत्यय से माहाराष्ट्री णडाल या माहाराष्ट्री शौरसेनी णिडाल । अपभ्रंश णिडला (पिशल § २६०)।—अड=तट, भिउडि, टीका=भ्रुकुटि वस्तुत =भृकुटि, जिसका प्रयोग देखने में आता है। अर्धमागधी भिगुडि । पिशल के कथनानुसार भुउडि हुउडि रूप अशुद्ध हैं (पिशल § १२४)। भुमआ 'भौंह'। अणहिअअ का अर्थ है अहृदय, तुलना करो अणमिलिअ=अमिलित, अणादीहर= अदीर्घ। उम्मिल्ल=*उन्मील्न=उन्मीलित।

"उसका भ्रमण उसके ललाट तट से नष्ट हो चुका था, क्योंकि राक्षस राम के सिर को केश पकड़ कर लाये थे जो खून के निकलने से आधा हलका हो गया था और जिसके तारक उन्मीलित किन्तु जीवन से शून्य हो गये थे।"

सीता का विलाप

श्लोक ७५ (पृष्ठ ३५०)

आयाअ भअ अर विअ ण होइ दुक्खस्स दारुण णिव्वहणं,
ज महिला-बीहत्थ दिट्ठ सहिअ च तुह मए अवसाणं।

आयाअ=आपात, विअ (अर्धमागधी चिय), स्वरों के बाद चिअ का अर्थ एव होता है, चेअ रूप भी होता है, (चेव तुलना करो खेव=नैव)। बीहत्थ=बीभत्स। सहिअ 'सहन किया'।

"यद्यपि दुःख का आरम्भ भयकर होता है उसका अन्त (निर्वहण) इतना दारुण नहीं होता, यदि मैं स्त्रियों के लिये बीभत्स दृश्य को देख सकती हूँ और तुम्हारे अवसान को सहन कर सकती हूँ।"

सीता यह न जान कर कि सिर मायामय है इस बात से हैरान होती है कि मैं अभी तक जीवित हू। टीका में महिला-बीहत्थ का अर्थ 'स्त्रियों में निन्दा का कारण' दिया है।

श्लोक ७६

बाहु-एह तुज्झ उरे ज मोच्छिहिमि त्ति सविठअ मह हिअए,
घर निग्गमण पअत्त साहसु त कम्मि णिव्वविज्जउ दुक्ख ?

बाह या बाह 'आह्'। उएहम् 'उष्ण'। पुस्तक में उह्न पाठ है जो अशुद्ध है। तुज्झ, तुअ का यह गौण रूप हिन्दी 'तुझ को' में विद्यमान है, इस की उत्पत्ति मह्य के सदृश * तुह्य से है। उरे, उरो 'वक्ष स्थल' का सप्तमी का रूप। 'मोच्छिहिमि' मुच् का भविष्यत् का रूप, मोच्छ भी होता है। ठिअ § १२।

पअन्तं=प्रवृतम्। साहसु 'कहो' लोट, शास्। कम्मि सप्तमी= शौरसेनी कस्सिम्। णिव्वविज्जउ (निर्+वप्) कर्मवाच्य लोट् 'उड़ेला जाय।'

'घर छोड़ने के समय से मेरे हृदय में यह बात बैठी हुई थी कि मैं तुम्हारे उर स्थल पर उष्ण आसू बहाकर अपने शोक को दूर करूंगी। अब मुझ से कहो मेरा शोक कहाँ उड़ेला जायेगा।"

श्लोक ७७

विरहम्मि तुज्झ धरिअ दच्छामि तुम त्ति जीविअ कह वि मए,
त एस मए दिट्ठो फलिआ वि मणोरहा ण पूरेन्ति मह।

दच्छामि 'द्रक्ष्यामि', मैं देखूंगी, दच्छिमि और दच्छ रूप भी बनते हैं, शौरसेनी में पेक्खिस्स का प्रयोग होता है। कह वि=कथम् अपि, कह अधिक पाया जाता है। सर्वनामों और क्रिया विशेषणों में अन्तिम अनुस्वार की प्रवृत्ति अपवाद की ओर है। इस प्रकार मह=मह। एस=एसो। हेमचन्द्र के अनुसार 'एस' का प्रयोग स्वच्छन्दता से सभी लिङ्गों के लिए किया जाता है, इसके विपरीत 'स' का प्रयोग दुर्लभ है।

"तुम्हारे वियोग में मैंने इस विचार से कि फिर तुम्हें देखूंगी किसी तरह अपने जीवन को धारण किया। अब मैं तुम्हें इस दशा में देखती हूँ। मेरे मनोरथ फलीभूत होने पर भी मेरे सन्तोष की पूर्ति नहीं करते।"

श्लोक ७८

पुहवीअ होहिइ पई बहु पुरिप विशेस-चञ्चला राअसिरी
कह ता मह चिअ इम णीसामण्ण उत्थिअ वेहव्व।

पुहवी 'पृथ्वी' शौरसेनी पुढवी। इअ वाले अप्रधान कारकों के रूप माहाराष्ट्री में साधारणतया पाये जाते हैं। पई=पति। होहिइ 'होगा'। ता=वैदिक तात्। णीसामण्ण=नि सामान्य। उअत्थिअ (उप+स्था)। वेहव्व 'वैधव्य' 'रण्डापा'।

" पृथ्वी का कोई न कोई पति बनेगा। राज्यश्री अनेकों प्रति ष्ठित पुरुषों के साथ चञ्चल है तो फिर मुझ ही पर यह असा धारण वैधव्य क्यों ढाया गया है ?" [पृथ्वी और राज्यश्री राम की दूसरी पत्नियां मानी जाती हैं। ' नि सामान्य ', शब्दार्थ जिसमें कोई बात साझी न हो (उन अन्य दो के साथ)]।

श्लोक ७९

किं पअ त्ति पलत्त विस-उम्मिल्लेहि लोअणेहि अ दिट्ठ,
विअलिअ लज्जाए मए फुड णाह तुह मुह ति परुण्ण।

पअ ति (शौरसेनी पद ति) अधिक प्रचलित है। पलत्त=*प्रलत्त। विस का अर्थ है विषम, पाठ प्रत्यक्षतया विसमुम्मिल होना चाहिए। विअलिअ (वि+गल्)। फुड § ३८। परुण्ण (प्र+रुद्) भिद्, भिन्न के सादृश्य से भ्रान्त रूप, छिद्, छिन्न, इत्यादि, शौर- सेनी रुदिद।

"मैं चिल्लाई 'यह क्या है ?' और मैंने अध-खुली आंखों से देखा, फिर लज्जा को तिलाञ्जलि देकर मैंने चीत्कार किया—'नाथ, नि सन्देह यह तुम्हारा मुख है'। "

श्लो० ८०

सहिओ तुज्झ विओओ रअणि अरीहि समअ सहीहि व खुत्थ,
दट्ठु तुम ति होत्त जइ एत्ताहे वि जीविअ विअलन्त।

विओओ 'वियोग' §९। खुत्थ=व्युष्ट* 'सवेरा हुआ'। पिशल § ३०३, *वस्त अ > उ के साथ। दट्ठु=द्रष्टु। होत्त=होन्त, होइ का सन्नन्त रूप। एत्ताहे (टीका=इदानीम्), तुलना करो एत्तिओ 'इतना' ? *एत्तादशे *एत्ताइशे *एत्ताहे, तुलना करो तारिस के लिए अपभ्रंश तैसा और दिवस के लिए माहाराष्ट्री दिवह। होत्त और विलअन्त हेतहेतुमद्भूत के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, तुलना करो हिन्दी प्रयोग 'यदि होता'।

' तुम्हारे वियोग को मैंने सहेली जैसी रजनी चरियों के साथ

सहन किया—उसका प्रभात तारों के साहचर्य में हुआ—केवल तुम्हें देखने के लिये यह होता तो मेरा जीवन पिघल कर अनन्त में मिल जाता।"

श्लोक ८१

जाए परलोअ-गए तुमम्मि ववसाअ मत्त सुह दट्ठव्वे,
हरिस-च्छाणे वि महं डज्झइ अदिट्ठ दहमुह-वह हिअअं।

मत्त=मात्र, साधारणतया मेत्त § ६६। दट्ठव्व=द्रष्टव्य। छाणे टीका=स्थाने; इसे (त्) थाण होना चाहिये, या शायद हमें हरिस-च्छणे पढ़ना चाहिए। छण=क्षण, किन्तु इसका अर्थ साधारणतया 'उत्सव' होता है, 'क्षण' के लिए खण शब्द आता है, (पिशल, § ३२२)।

"अब चूँकि तुम परलोक को सिधार गये हो, और तुम मुझे केवल आयास से दिखाई दोगे, उस हर्ष के स्थान में मेरा हृदय धधक रहा है कि मैं दशमुख के वध को नहीं देख सकी"।

श्लोक ८२—

बाह ण धेरइ मुहं आसावन्धो वि मे ण रुम्भइ हिअअं,
णवरि अ चिन्तिज्जन्ते ण विणज्जइ केण जीविअं सरुद्धं।

रुम्भइ का अर्थ है रुणद्धि (रुध् से रुन्धइ रूप बनता है), यह किसी *रुभ् धातु से है जो किसी *लिभ् धातु से बने हुए लिम्भइ=लिह्यते के सदृश है (पिशल §§ २६६, ५०७)। णवरि 'इस पर', कोई कहते हैं 'न परे' से इसकी उत्पत्ति है, किन्तु पिशल इस का प्रतिवाद करता है (§१८४), तुलना करो णवर 'केवल'। चिन्तिज्जन्ते सप्तन्त कर्मवाच्य। वि-णज्जइ कर्मवाच्य (वि+ज्ञा)।

"मेरे मुख पर कोई आँसू नहीं हैं, आशाबन्ध भी मेरे हृदय को नहीं थामता, और जब विचार किया जाता है तो ज्ञात नहीं होता कि जीवन किस से रुद्ध है"।

श्लोक ८३

घोलीणो मअरहरो मज्झ कएण मरण वि दे पडिवण्ण,
णिव्वूढ णाह तुमे अज्ज वि धरइ अकअण्णुअ मह हिअअं।

घोलीणो 'पार किया'। यह रूप क्तान्त जैसा लगता है, तुलना करो मेलइ (मिल्) मे मेलीणए। मअर-हर मगरमच्छों का घर'। पडिवण्ण (प्रति+पद्)। अकअण्णुअ तुलना करो कअण्णु §१६६।

'मेरे लिए तुमने समुद्र को पार किया और इससे मर भी गए। नाथ, तुम चल दिये हो और इसपर भी मेरा कृतघ्न हृदय अपने आप को थामे हुए है'।

श्लोक ८४

उग्गाहिहि राम तुम गुणे गणेऊण पुरिस मइओ त्ति जणो,
महिलिअ महिला-सहाय सम्मरिऊण अ मम णिअत्तिहिइ कह।

उग्गाहिहि 'गायेंगे'। गणेऊण 'गिनते हुए', पूर्वकालिक क्रिया। णिअत्तिहिइ भविष्यत् णिजन्त (नि+वृत्)। मरिऊण 'याद करते हुए' मरइ से कृदन्त रूप। *स्मरइ *म्हरइ=स्मरति शौरसेनी सुमरेदि, सुमरिअ। कह 'कथा'।

"राम, लोग तुम्हारे गुणों और पुरुषार्थ का कीर्तन करते हुए तुम्हारे यश को गायेंगे और मुझे ऐसी स्मरण करके कि इसने स्त्री स्वभाव को त्याग दिया वे कथा को बदल देंगे।"

श्लोक ८५

तुह वाणुक्खअ णिहअ दच्छिहिमि दहवअण मुह णिहाअ त्ति कआ
महमाअधेअवलिआ विघरा हुत्ता मणोरहा पल्हत्था।

उक्खअ, उक्खाअ के लिए, 'उत्खात' नष्ट किया गया। णिहअ (नि+हन्)। दच्छिहिमि या दच्छामि अधिक प्रमाणित है (देखो पिछला श्लोक ७७)। णिहाअ=निघात। विघरा=वि+परा हुत्ता, टीका =मुखा, इसका भी यही अर्थ है किन्तु रूप अर्धमागधी है। खुत्त (क्षत्व) जैसा कि सरयाओं में होता है (पिशल §२०६)। तुलना

करो अर्धमागधी अणन्तसुत्त ' अनन्त समय, अनन्तता से ', क से य और उस से ह होजाता है, तुलना करो पिशल §१६। पल्लत्थ, टीका=पर्यस्त, उद्विग्न, किन्तु इस दशा में पल्हत्थ होगा (र य को अपना अङ्ग बना लेता है और स्वयं ल बन जाता है। ह्रहत्थ =प्रहस्त, ह्रस्=ह्रस् धातु से, 'कम होना, घटना'।

" मेरे वे मनोरथ कि मैं दशकण्ठ के मुखों को तुम्हारे तीर से छिदे (और) चूरमूर हुए देखूंगी मेरे भाग्य के उलटफेर के कारण नष्ट होगये हैं"।

श्लोक ८६

ज तणुअम्मि वि विरहे पेमा-बन्धेण सङ्कइ जणस्स जणो,
त जाअ णवर इम पेच्छन्तीए अ तारिस मज्झ फल।

तणुअ 'छोटा', पेमा=प्रेमा, पेम्म अधिक प्रयुक्त पाया जाता है § ६८। णवर, टीका=केवल='केवल'। तुलना करो णवरि सर्ग ५ श्लोक ८२। नवर से इसकी उत्पत्ति के विषय में पिशल का ऐतराज (§१८४), अर्थात् अनुस्वार गौण जैसा लगता है, प्रमाणित नहीं है।

"जिस बात की कोई व्यक्ति प्रेमबन्धन के कारण थोड़े से विरह में भी प्रेमपात्र के प्रति शङ्का करता है ऐसा ही भयकर फल मेरे लिए हुआ है जो मैं इस दृश्य को देख रही हूँ"।

सर्ग १८ श्लोक १४

अयोध्या को शुभ प्रत्यागमन।

घेत्तूण जणअ तणअ कञ्चण लट्ठिं व हुअ वहम्मि विसुद्ध,
पत्तो पुरिं रहुवई काउ भरहस्स सप्फल अणु-राअ।

घेत्तूण ' ग्रहण करते हुए ' तुलना करो घेत्तु § १३६। लट्ठि (लाठी), यष्टि के साथ इसकी समता अनोखी है। काउ=शौरसेनी मागधी काडु, शौरसेनी में करिदु भी होता है, सप्फल, टीका=सफल, किन्तु इस दशा में सप्फल होगा (§ ४), शेहला=सप्फल।

"कञ्चन की लाठी के समान आग (पुतवद) में शुद्ध हुई जनकतनया को लेकर रघुपति भरत को उसके अनुराग का सत्फल देने को नगर में पहुँचे।"

उद्धरण नं० १५

जैनमाहाराष्ट्री

मण्डिय।

(जेकोबि की चुनी हुई कथाएँ, नं० १)

बेण्णायडे णयरे¹ मण्डिओ णाम तुण्णाओ² परदव्व-हरण पसत्तो आसी। सो य दुट्ठ गण्डो³ मि त्ति जणे पगासेन्तो जाणु-देसेण णिच्च एव अद्दावलेव लित्तेण बद्ध पण पट्टो राय मग्गे तुण्णाग सिप्प उव

१—बेण्णायड या बेण्णायड (बगौतड) पश्चिमी भारतवर्ष का एक नगर। यहाँ यकार लघुप्रयत्न के लिए प्रयुक्त हुआ है, महाप्राण य के लिए नहीं (देखो पृ० ४)। पर्यर, इसीसे बहुत से आधुनिक नामों में=-तड़र,-नेर।

जेकोबि ने अपनी हस्त-लिखित प्रति में उवजीवति, चङ्कमति, इत्यादि पढ़ा है। विद्यार्थियों के लाभ के लिये उवजीवइ, चङ्कमइ, इत्यादि अधिक नियमानुकूल रूप समाविष्ट किये गये हैं।

अर्धमागधी, जैन-माहाराष्ट्री, जैन-शौरसेनी में किसी शब्द के आरम्भ में अकेला न और मध्य में द्वित्व ण्ण रह सकता है। हस्तलिखित पुस्तकों में भिन्न ताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

२ तुण्णाओ या तुण्णागो का अर्थ 'भिखारी' मालूम होता है जिसमें दौर्जन्य का भाव भी है। ठीक व्युत्पत्ति अनिश्चित है किन्तु सम्भवत उसका सम्बन्ध तूर्ण से है, जैसे तूर्णग 'तेज चलने वाला' में। पगासेन्तो पगासेइ 'दर्शाता है' (प्र+काश्) का सवन्त रूप। क्>ग् के लिये तुलना करो अर्ध मागधी असोग (§ ११)।

३ दुट्ठ=दुष्ट। गण्डो के संस्कृत में कई अर्थ हैं जिनमें 'कपोल' 'फोड़ा'

जीवइ। चक्कमन्तो त्ति य दण्ड-धरिएण पाएण किलिम्मन्तो कहचि चक्कमई। रत्तिं च रत्त पणिऊण दव्वजाय घेत्तूण नगर सणिण्हिए उज्जाणेग-देसे भूमि घर, नत्थ निक्खिवई। तत्थ य से भगिणी कण्णगा चिट्ठइ। तस्स भूमि घरस्स मज्झे कुवो। ज च सो चोरो दव्वेण पलोभेउ सहाय दव्व वोढार आणेइ, त सा से भगिणी अगड समीवे पुव्वनत्थासणे णिवेसिउ पाय सोय लक्खेण पाए गेण्हिऊण तमि कूवए पक्खिवई। तओ सो विवज्जई। एव कालो वच्चई णयर मुसन्तस्स। चोर ग्गाहा त ण सकेन्ति गेण्हिउ। तओ

'गँडा' सम्मिलित हैं, प्राकृत के लिये हेमचन्द्र ने घन (प्रचुरता ?) दिया है । दण्डपाशिको मो॰ वि॰ 'पुलिस का सिपाही', जेकोबि ने (इस स्थल के लिए) 'रात का पहरेदार', 'भिचु', (सम्भवत ग्राम्य अर्थ), लघुमृग (?) और नापित 'नाई' दिया है। अद्द ओदा' (आर्द्र)। अवलेव लेपन', (अव+लिप्)। लित्त 'लिपा हुआ'। वण 'घाव' (व्रण)। पट्ट 'पट्टी' जिससे पट्टिका आधुनिक पट्टी बनी है। यहाँ दुट्ठगण्डो बहुव्रीहि समास मालूम होता है और उसका अर्थ है 'बुरे फोड़े वाला'। यह कूट युक्ति अब भी काफी परिचित है।

१ चक्कमइ 'चक्कर लगाता है', 'भटकता फिरता है'। पाएण 'अपने पैर से'। किलिम्मन्तो किलिम्मइ थक जाता है' (क्लम्) का सन्नन्त रूप।

२ खत्त 'छेद'। जाय (जात) "तायदाद"। सणिण्हिए 'पड़ोस में' (सम्+निधा) एगदेस 'भरा'। तुलना करो § ११।

३ पलोभेउ पलोभेइ 'लुभाता है' णिजन्त (प्र+लुभ्) से तुमुन्नन्त रूप क्त्वान्त के अर्थ में प्रयुक्त।

४ अगड प्राकृत शब्द 'कुँआ', 'सोता'। नत्थ 'रक्खा हुआ' (न्यस्त) निवेसिउ णिजन्त (नि+विश्) असमापिका क्रिया। सोय 'धोना' (शौच)।

५—विवज्जइ 'नष्ट हो जाता है' (वि+पद्)।

६—वच्चइ 'जाता है, गुजरता है" साधारणतया इसका सम्बन्ध व्रज् से बतलाया जाता है (ज के स्थान में च, होने का यह एक उदाहरण है), किन्तु

णयरे वहुदवो जाओ। तत्थ य मूलदेवो राया पुव्व भणिय विहाणेण जाओ। कहिओ य तस्स पउरेहिं तक्कर वइयरो जहा, एत्थ णयरे पभूय कालो मुसन्तस्स वट्टइ कस्सइ तक्करस्स, ण य तीरइ केणइ गेण्हिउं। ता करेउ किंपि उवाय। तहि सो अन्न नगरारक्खिय ठवेइ, सो वि ण सक्कइ चोर गेण्हिउ। ताहे मूलदेवो सय नीलपड पाउणिऊण रत्तिं णिग्गतो। मूलदवो अणज्ज तो एगाए सभाए णि वण्णो अच्छइ जाव, सो मण्डिय चोरो आगन्तु भणइ, को एत्थ अच्छइ? मूलदेवेण भणिय, अहं कप्पडिओ। तेण भण्णइ, एहि, मणुस करेमि। मूलदेवो उट्ठिओ। एगम्मि ईसर घरे खत्त खय। सु वहु दव्व जाय णीणेऊण मूलदेवस्स उवरिं चडाविय। पयट्टा णयर

पिशल के विचारानुसार सम्भवत मारय से, अतएव=' आवारा फिरता है ",
*वृत्यते से इसकी व्युत्पत्ति अधिक सुगम होगी, (तुलना करो पिशल् ग्रामर § २०२) हिन्दी बचना।

१—सक्केन्ति। शक् से या तो सक्केइ या सक्कइ।

२— विहाण ' विधान ' (वि+धा)।

३—वइयरो ' कथा ' (व्यतिकर)। कस्सइ (कस्य अपि)। तीरइ √ तृ से कर्मवाच्य ' सिद्ध किया जाता है '।

४—पाउणिऊण ' धारण करना, पहिनना ' (प्रा+वृ) पाउणोमि, क्त पाउणिअ।

५ अणज्ज तो ' अज्ञात ' णज्जइ ' जाना जाता है ' का सन्नन्त रूप (ज्ञा)। णिवण्णो (नि+पद्)। अच्छइ ' ठहरता है ' § ६०। पिशल् ने इसकी व्युत्पत्ति अच्छति से बतलाई है (ग्रामर § ४८ । उन्होंने अन्य उपपत्तियों को उद्धृत किया है)। आगन्तु-असमापिका क्रिया।

६—कप्पडिओ ' यात्री ', कार्पटिक। भण्णइ, भणइ का कर्मवाच्य।

७—' ईसर ' धनी मनुष्य '।

८—चडाविअ चडइ से क्तान्त णिजन्त जिसके लिये हेमचन्द ने आ+रुह् दिया है (तुलना करो हिन्दी चढना)। सुवहु=सुबहुम्।

घेत्तिहिरिय । मूलदेवो पुरओ, चोरो असिणा कड्ढिएणं पिट्ठओ पइ । सम्पत्ता भूमिघर । चोरो त दव्व णिहणिउ आरद्धो । भणिया य तेण भगिणी, पयस्स पाहुणयस्स पाय सोय देहि । ताए कूव तडे सन्निविट्ठ आसणे णिवेसिओ । ताए पाय-सोय लक्खेण पाओ गहिओ कूवे छुहामि त्ति । जाव अतीव सुकुमारा पाया, ताए णाय, जहस कोइ अणुभूय पुन्न-रज्जो विहलियगो । तीए अणुकम्पा जाया । तओ ताए पाय तले सण्णिओ, णस्स त्ति मा मारिज्जिहिसि त्ति । पच्छा सो पलाओ । ताए बोलो कओ, णट्ठो णट्ठो त्ति । सोयसिं कड्ढिऊण मग्गे ओलग्गो । मूलदेवो राय-पहे अइसन्निकिट्ठ णाऊण चच्चर सियन्तरिओ ठिओ । चोरो त सिव

१-पयट्टा=प्रवृत्ता । बाहिरिय=बाहिरिय ' बाहर ' ।

२-कड्ढिअ ' निकाला गया कड्ढइ से (हे० ४, १८७=कृष्), कृष से कड्ढ और उससे *कड्ढ बनना चाहिये ।

३-णिहणिउ ' गाड़ना ' (नि+खन्) ।

४-पाहुणय ' पाहुना ' (प्राघूर्णक) ।

५-तड ' तट ' ।

६-छुहइ या छुभइ ' फेंकता है ' । हेमचन्द्र=क्षिप्, बेहतर क्षुभ् से जो अंगरेजी ' Shove ' से मिलता जुलता है ।

७-विहलिय (विह्वलित) ' कांपता हुआ ' ।

८-सण्णिओ (संज्ञित) सकेत किया ' । मारिज्जइ, मारेइ ' मारता है ' का कर्मवाच्य । पलाओ ' भाग गया ' पलायइ ' भागता है ' का क्रान्त रूप । बोलो=बोला माहाराष्ट्री में ' क्रन्दन ' । बोलो=बोली ' तुलना करो आधुनिक बोलना ।

९—सोयसिं ' और वह ' (अपनी) ' तलवार ' (खींचकर) अथवा य् केवल सन्धि-व्यञ्जन है । ओलग्गो ' पीछा किया ' का अर्थ है अनुलग्न, किन्तु रूप अव या अप+लग्न है ।

१०-अइसन्निकिट्ठ=अति संनिकृष्टम् । चच्चर ' चबूतरा ' (चत्वर)

लिङ्ग एस पुरिसो त्ति काउ ककमपए असिणा दुहा-काउ पडिनि यत्तो गओ भूमिघरं। तत्थ वसिऊण पहायाए रयणीए तओ निग्ग न्तूण गओ बाहिं। अन्तरावणे तुरणागत्त करेइ। राइणा पुरिसेहिं सद्दाविओ। तेण चिन्तियं जहा, सो पुरिसो णूणं ण मारिओ, अवस्स च एस राया भविस्सइ त्ति। तेहिं पुरिसेहिं आणिओ। राइणा अब्भुट्ठाणेण पूइओ आसणे णिवेसाविओ, सु बहु च पिय आभासिओ सलत्तो, मम भगिणिं देहि त्ति। तेण दिण्णा, विवाहिया राइणा। भोगा य से सपदत्ता। कइंसुवि दिणेसु गएसु राइणा मग्गिओ भणिओ, दव्वेण कज्जं ति। तेण सु बहु दव्व जाय दिण्ण। राइणा सपूजिओ। अण्णया पुणो मग्गिओ, पुणो वि दिण्णं। तस्स य चोरस्स अतीव सक्कार सम्माण पउजंइ। एएण पगारेण सव्व दव्व दवाविओ। भगिणिं से पुच्छइ; तीए भण्णति, एत्तियं चेव रित्त। तओ पुव्वावेइय लेक्खाणुसारेण सव्व दव्व दवावेऊण मण्डिओ सूलाए आरोविओ।

पिशल् § २६६। अन्तरिओ 'अन्तर्हित, छिपा हुआ'।

१-ककमअ 'टिटिहरी के चोंच की आकृति का'। दुहा काउ 'फाड़कर' (द्विधा कृत्वा)।

२-आवण हाट'। सद्दाविओ (शब्दापित')।

३-णिवेसाविओ णिवेसेइ के पूरे रूप णिवेसावेइ का क्तान्त रूप।

४-सपदत्ता (सम्+प्र+दा)। से 'उस (की) पर'।

५-कइसुवि (कतिषु+अपि)।

६-सक्कार सत्कार'। पउजइ 'प्रयुक्त करता है' (प्र+युज्)।

७-पगार 'प्रकार', दवाविओ णिजन्त क्तान्त (दा)।

८-आवेइअ णिजन्त आवेएइ का क्तान्त रूप (आ+विद्) लेक्ख 'लिखित'।

मण्डिओ ।

बेनॉतड नगर में मण्डिओ नाम का एक भिखारी रहता था जिसे दूसरों के द्रव्य को हरने की लत पड़ी हुई थी। यह दिखलाने के लिए कि मैं नासूर से पीड़ित हूँ वह अपने घुटने पर चर्बी से लिबड़ी हुई पट्टिया बाध कर-जिन्हें सदा गीला रक्खा जाता था, राजमार्ग पर भिखारी की वृत्ति से जीविका करता था। थका मादा, अपने पैर को लाठी के सहारे टिका कर, वह इधर उधर फिरा करता था। रात को वह (दीवार में) छेद करता था और बहुत सा माल नगर के निकट एक बाग के कोने पर एक तहखाने में ले जाकर गाड़ दिया करता था। वहाँ उसकी अविवाहित बहिन रहती थी। उस तहखाने के बीचोंबीच एक कुँआ था। चोर जिस किसी आदमी को लुभाकर अपने लूट के माल को ढोने के लिए अपने साथ लाता था, उसे उसकी बहिन, जो कुँए के किनारे पहले से ठीक किये हुए आसन पर बैठी रहती थी, धोने के बहाने पैर पकड़ कर कुँए के अन्दर ढकेल देती थी। और इस प्रकार वह विनष्ट हो जाता था। इस प्रकार समय बीतता गया और वह शहर को लूटता रहा। चोरों को पकड़नेवाले उसे पकड़ने में असमर्थ थे और शहर में इस विषय में बड़ा हल्ला मच गया था।

इन्हीं दिनों पूर्वोक्त विधान से मूलदेव वहाँ का राजा बना था। शहर के लोगों ने उसे चोर की कहानी सुनाई। उन्होंने कहा कि कुछ समय से कोई चोर शहर को लूट रहा है और उसे पकड़ने में कोई भी सफल नहीं हुआ है—इसलिए आप को कोई युक्ति निकालनी चाहिए। इस पर वह नगर की पुलिस का एक और सुपरिन्टेन्डेंट नियुक्त करता है। वह भी चोर को पकड़ने में असमर्थ है। फिर मूलदेव ने स्वयं एक काला चोगा पहिना और एक रात को बाहर निकला। मूलदेव जाता है और किसी घर में

मशान वेश में लेट रहता है। मण्डिश्रो चोर आता है और कहता है 'यहां कौन टिका हुआ है?' मूलदेव ने कहा, 'मैं एक यात्री हूँ।' उसने कहा, 'आओ मैं तुम्हें आदमी बनाऊँगा।' मूलदेव उठा। किसी धनी आदमी के घर सेंध लगाई गई। उसने बहुत सा लूट का माल निकाल बाहर किया और उसे मूलदेव पर लाद दिया। वे नगर की सीमा से बाहर जाने को रवाना होते हैं। मूलदेव आगे आगे चलता है चोर नंगी तलवार लिये पीछे पीछे आता है। वे तहखाने में पहुँचे। चोर लूट के माल को गाड़ने में लग गया, और उसने अपनी बहिन से कहा—इस मेहमान के पाँव पखारो उसने पाहुने को कुँए के किनारे पर रक्खे हुए आसन पर बिठाया और उसके एक पैर को इस प्रकार पकड़ा मानो उसे धोना चाहती हो, जिससे वह उस को कुँए के अन्दर ढकेल सके। चूंकि उसके पैर बहुत नाजुक थे, चोर की बहिन को मालूम हुआ कि यह कोई ऐसा व्यक्ति है जिसने राज्य सुख का उपभोग किया है और जिसके अंग बड़े सुखोपभोगशील हैं। उसको उस पर बड़ा तरस आया और उसने ज़मीन की सतह पर उसके पैर का निशान बनाया। "भाग जाओ नहीं तो मारे जाओगे।' इस के बाद वह भाग निकला। चोर की बहिन चिल्लाई—" वह भाग गया है, वह भाग है।" और उस (चोर) ने अपनी तलवार खींची और उसका पीछा करते हुए वह मार्ग पर पहुँचा। जब मूलदेव को मालूम हुआ कि मैं राजमार्ग पर चोर के बिलकुल पास ही हूँ तो वह किसी चौपाल में एकलिङ्ग के पीछे छिप रहा। चोर को इस शिव लिङ्ग में मनुष्य का भ्रम हुआ, उसने उसके दो टुकड़े कर डाले और फिर अपने तहखाने को लौट चला। रात्रि का प्रकाश मन्द होने तक वह वहाँ ठहरा रहा, फिर बाहर निकला और वहाँ से चलता बना। बाजार में वह भिखारी की तरह रहता है। राजा ने उस को बुलाने के लिये आदमी भेजे। उसने अपने मन में सोचा, " तो

यह आदमी मारा नहीं गया, और सन्देह नहीं कि वह राजा ही निकल आये।"

राजा उसको प्रणाम करने को उठा, और उसने उसको आसन पर बिठाया। बहुत कुछ प्रिय भाषण के बाद राजा ने उससे कहा, "मुझे अपनी बहिन दे दो।" उसने अपनी बहिन देदी और राजा ने उसके साथ विवाह किया। उसको (चोर की बहिन को) सुखोपभोग के लिए धन-सम्पत्ति मिली।

जब कुछ दिन बीत गए, राजा ने मण्डिओ से कहा, 'मुझे कुछ धन चाहिए।' सो उसने उस को बहुत सा धन दिया। राजा ने उस की प्रतिष्ठा की। फिर उसने धन मांगा, और फिर धन दिया गया। वह चोर का अत्यधिक सत्कार और सन्मान करता है। इस प्रकार उसने चोर से उसका सारा धन ले लिया। वह उसकी बहिन को पूछता है। उस ने कहा, उसके पास इतनी ही सम्पत्ति थी। फिर उसने पहिले सुनाई हुई फेहरिस्त के अनुसार यह सब धन लोगों को दिलवा दिया, और मण्डिओ को शूली पर चढ़ा दिया।

उद्धरण नं० १६

जैनमाहाराष्ट्री

दोमुह

सम्पइ दुम्मुहचरियम्।[1] अत्थि इह् एव भारहे वासे कपिल्लं नाम पुरम्। तत्थ हरिकुलवंससंभवो जओ नाम राया। तस्स गुणमाला नाम भारिया। सो य राया तीए सह रज्जसिरिं अणुहवन्तो गमेइ कालं। अन्नया अत्थाणमण्डव[2] ट्ठिएणा पुच्छिओ दूओ —किं नत्थि मम, ज अन्नराईण अत्थि? दूएण भणियं—देव,

---

1—सम्पइ=सम्प्रति, अब। दुम्मुह=दोमुह=द्विमुख=दो मुखवाला।

2—अत्थाण=आस्थान=सभामण्डप। 'दूओ दूत'।

चित्तसभा तुम्ह नत्थि । तओ राइणा आणत्ता थवइणो, जहा लहु चित्तसभं करेह । आएसणाणन्तरं समाढत्ता । तत्थ धरणीए खम्ममाणीए कम्मगरेहिं पञ्चमदिणे सव्वरयणामओ जलणो-व्व तेयसा जलन्तो दिट्ठो महामउडो, स हरिसेहिं सिट्ठो जय-राइणो । तेण वि परितुट्ठ-मणेण नन्दी-रव पुव्वयं उत्तारिओ भूमि-विवराओ पूइया थवइम् आइणो जहारिह-वत्थम् अइहिं । थेव-कालेण वि निम्माया उत्तुङ्ग-सिहरा चित्तसभा । सोहण दिणे कओ चित्त-सभाए पवेसो । आरोविओ मङ्गल-तूर सद्देहिं अप्पणो उत्तिमङ्गे मउडो । तप्पभावेण दो वयणो सो राया जाओ । लोएण तस्स दोमुहो त्ति नाम कयं ।

अइक्कन्तो कोइ कालो । तस्स य राइणो सत्त तणया जाया । दुहिया मे नत्थि त्ति गुणमाला अद्धिइं[9] करेइ । मय-णाभिहाणस्स जक्खस्स इच्छइ उवाइयं । अवसया य पारियाय

१—आणत्ता=आज्ञप्ता । थवइ=स्थपति=कारीगर ।

२—समाढत्ता=समा √धा+त=समाहित=प्रारम्भ किया । ध को ढ हो जाता है, तुलना करो § ७ । 'धा' धातु के स्थान में यहां 'रभ्' धातु की कल्पना असम्भव है ।

३—धरणीए खम्ममाणी०=धरण्यां खन्यमानायाम्; जब ज़मीन खोदी जा रही थी । कम्मगर=कर्मकर=कारीगर ।

४—सिट्ठो (साहइ का क्तान्त)=शिष्ट (* शासति)=कहा गया ।

५—थवइमाइणो=स्थपत्यादयः=कारीगर आदि, 'म्' सन्धि व्यञ्जन है।

६—थेव (पाली में भी थेव)=थोड़ा । √स्तिप्=टपकना ।

७—तूर=तूर्य=बाद्य ।

८—लोएण=लोगों के द्वारा ।

९—अद्धिइ=अधृति; चिन्ता ।

१०—जक्खस्स=यक्षस्य, यक्ष को । इच्छइ; प्रतिज्ञा करता है । उवाइयं (उप+आ+√कृ) उपायनम् भेंट ।

मञ्जरी-उवलम्भ सुविण सूइया तीसे दुहिया जाया। कय च वद्धावण-य[1]। दिन्न जक्खस्स उवाइय। कय च तीए नाम मयणमञ्जरी कमे ण य जाया जोव्वणत्था।

इओ य उज्जेणीए चण्डपज्जोय राया। तस्स दूएण साहिय, जहा—राया दोमुहो जाओ। पज्जोएण भणिय—कहं? दूएण भणिय तस्स एरिसो मउडो अत्थि; तम्मि आरोविए दो मुहाणि हवन्ति। मउडस्स उवरिं पज्जोयस्स लोभो जाओ। दूय दोमुह-राइणो पेसेइ[2]—एय मउड रयण मम पेसेहि। अह न पेसेसि जुज्झसज्जो[3] होहि! दोमुह राइणा दूओ भणिओ पज्जोय-सन्तिओ—जइ मम ज मग्गि य देइ, तो अह अवि मउड देमि। दूएण भणिय—किं मग्गइ? राइणा भणिय—

देइ नलगिरी हत्थी अग्गीभीरू तहा रहवरो य।
जाया य सिवा देवी लेहारिय लोहजघो य॥

एय पज्जोयस्स रज्जसार। पडिगओ दूओ उज्जेणिं। साहिय पज्जोयस्स दोमुह सन्तिय पडिवयण। कुद्धो[4] अईव पज्जोओ, चलिओ चउरग बलेण—दोन्नि लक्खा मयगलाण[5], दोन्नि सहस्सा रहाण, पच अजुयाणि हयाण, सत्त कोडीओ पयाइ[6] जणाण। अणवरय[7]-पयाणएहिं पत्तो पचाल-जणवय सन्धिं। इयरो वि दोमुहराया

१—सूइय=सूचित, (सूच्) प्रकट की, शौरसेनी सूइद। सुविण=स्वप्न। परियाय=पारिजात; कल्पवृक्ष। वद्धावणय=वर्धापन, जातकर्म।

२—पेसेइ=प्रेषयति, भेजता है।

३—जुज्झ-सज्जो=युद्धसज्ज, युद्ध के लिये तैयार।

४—कुद्धो=क्रुद्ध।

५—मयगल=मदकल=मत्त गज, मस्त हाथी।

६—पयाइ=पदाति, पैदल सैनिक।

७—अणवरय=अनवरत, निरन्तर।

चउरगबल-समग्गो[1] नीहरिओ नयराओ। गओ पडिसमुहं पज्जोयस्स। पचाल विसय-सन्धीए रइओ[2] गुरुड-वूहो पज्जोएण, सागरवूहो दोमुहेण। तओ सम्पलग्ग दोण्ह वि बलाण जुज्झ। सो मउड-रयण पहावेण अजेओ[3] दोमुहराया। भग्गं[4] पज्जोयस्स बल। धन्धिऊण पज्जोओ पवेसिओ नयर। दिण्ण चलणे कडय[5]। सुहेण तत्थ पज्जोयराइणो वच्चइ कालो।

अन्नया दिट्ठा तेण मयणमञ्जरी। जाओ गाढाणुराओ, तओ कामाग्गिणा डज्झमाणस्स[6] चिन्ता-सन्ताव गयस्स वोलियाँ कहवि राई। पच्चूसे य गओ अत्थाण दिट्ठो परिमिलाण मुह-सरीरो दोमुह राइणा, पुच्छिओ सरीर पउत्तिं, न देइ पडिउयण। सास केण य गाढयर पुट्ठो। तओ दीह नीससिऊण[7] जपिय पज्जोएण-

मयण-वसगस्स, नरवर वाहि विघत्थस्स[8] तह य मत्तस्स।

कुवियस्स मरन्तस्स य लज्जा दूरुज्झिया होई[9] ॥

ता जइ इच्छसि कुसल पयच्छ तो मयणमञ्जरिं एय।

निय धूय[10] मे नरवर, न देसि पविसामि जलणम्मि ॥

१-समग्गो=समग्र।

२—रइओ=रचित। वूह=व्यूह, मोरचाबन्दी।

३—अजेओ=अजेय।

४—भग्ग=भग्न; त्रुटित।

५—कडय=कटक, बेड़ी।

६—डज्झमाण=दह्यमान, जलता हुआ। वोलिया=बीत गई, तुलना करो बोलेइ।

७—नीससिऊण=लम्बी सांस लेता हुआ। जम्पिय=जल्पितम्।

८—वाहि=व्याधि। विघत्थ=(वि+√घस्)=विघस्त, विग्रस्त, पीड़ित।

९—कुविअ=कुपित; दूरुज्झिय=दूरोज्झित, दूर परित्यक्त।

१०—धूय=धूया=माहाराष्ट्री धूआ सौ० मा०=धूदा=*धूता *धुत्रा से, दुहिता।

तओ दोमुहेण निच्छय नाऊण दिन्ना । सोहण दिण-मुहुत्ते कय पाणिग्गहण। कइवय दिणेहिं धरिओ, पूइऊण विसज्जिओ, गओ उज्जेणिं पज्जोओ।

अन्नया आगओ इन्दमहूसवो। दोमुह-राइणा आइट्ठा नयर जणा उब्भेह इन्देकेउ । तओ मङ्गल-नन्दी महारवेण धवल धय-वडाहो दोय खिंखिणी जालालंकिओ अवलंबिय-वर-मल्ल-दामो मणि-रयण माला भूसिओ णाणा विह पलयमाण फल निवह चिंधइओ उब्भिओ इंदकेऊ। तओ नच्चन्ति नट्टियाओ, गिज्जन्ति सुकइ रइया कव्व बन्धा, नच्चन्ति नर-सघाया, दीसन्ति दिट्ठि मोहणाइ इन्दयालाइ, इँन्दयालिणो य दिज्जन्ति तम्बोलाइ, खिप्पन्ति कप्पूर-कुंकुम जल छडा, दिज्जन्ति महा दाणाइ, वज्जन्ति मुइगाइ आओज्जाइ । एव महा मोएण गया सत्त वासरा । आगया पुण्णिमा। पूइओ महा-निच्छड्डेण कुसुमवत्थाईहिं दोमुह-राइणा इन्दकेऊ। महा तूर रवेण

१—धरिओ=धृत, प्रतीक्षा की।

२—आइट्ठा=आदिष्टा , आज्ञा दिये गए।

३—उब्भेह=(√उब्भेइ), उब्भ (उच्च) से छोट् उत्थापय; स्थापित करो। ऊर्ध्व से उब्भ(उद्ध, उड्ढ भी) होजाता है। तवर्ग को पवर्ग आदेश का उदाहरण, द्वादश=बारस। केउ=केतु।

४—धय=ध्वज। वडाहो=पताका। डोय=दारुहस्त ? cf पंजाबी 'डोई'।

५—चिंधइओ=अलङ्कृत। प्राकृत धातु।

६—गिज्जन्ति=गीयन्ते, गाए जाते हैं, § १३५।

७—इन्दयालियो=ऐन्द्रजालिक; जादूगर।

८—खिप्पन्ति=क्षिप्यन्ते; फेंके जाते हैं, § १३५। (प्रा० धा० खिवइ)। छडा= छटा; बाहुल्य। वज्जन्ति=वाद्यन्ते, बजाए जाते हैं। मुइग=मुरज, ढोल। आओज्ज= आतोद्य, एक वाद्य।

९-विच्छड्ड=(वि+√छर्द) दान, औदार्य।

अन्नम्मि दिवे पडिओ मेहरोए। दिट्ठो राइणा अमेज्झ मुत्त दुग्गन
निवडिओ जणेण परिलुप्पमाणो य । दट्ठूण चिन्तिय धीर
विज्जु-रेह व्व चञ्चलाए परिणाम विरसाए रिद्धीए । एव चिन्त
य तो सबुद्धो, पत्तेयबुद्धो जाओ। पञ्च मुट्ठिय लोय काऊण पव्व
इओ। उक्तं च:।

जो इन्दकेऊ सुयलंकिय त दट्ठु पडन्त पविलुप्पमाणम्।
रिद्धिं अरिद्धिं समुपेहियाए पञ्चाल राया वि समिक्ख धम्म ॥

अनुवाद

अब द्विमुख का चरित्र (प्रारम्भ किया जाता है)—

भरत के इस देश में काम्पिल्य नामक नगरी थी। यहाँ हरि
कुल नाम से प्रसिद्ध वंश में जय नामक राजा था। उसके गुण
माला नाम्नी पत्नी थी। वह अपनी भार्या के साथ राज्यलक्ष्मी का
उपभोग करता हुआ (सुखपूर्वक) कालयापन करता था। एक
दिन सभामण्डप में बैठे हुए राजा ने दूत से पूछा—ऐसी कौन सी
वस्तु है जो दूसरे राजाओं के (पास) है और मेरे (पास) नहीं है।
दूत ने कहा—राजन्, आप के (यहाँ) चित्रसभा नहीं है। तब राजा
ने स्थपतियों को आज्ञा दी-'शीघ्र ही चित्रसभा बनाओ'। आज्ञा होते

१—अमेज्झ=अमेध्य, 'मल' मुत्त=मूत्र। परिलुप्पमाण=परिलुप्यमान,
नष्ट होता हुआ।

२—विज्जु=विद्युत्।

३—पत्तेय-बुद्धो=प्रत्येक बुद्ध, जिसको अकेले ज्ञान लाभ होता है।

४—मुट्ठिय=मुष्टि, लोय=लुञ्चन, नोचना। पव्वइओ (प्र+व्रज्)
सन्यासी हो गया।

५—समुपेहियाए=असमापिका क्रिया (सम्+उद्+प्रेक्ष्)

ही वे कार्य में लग गये। भूमि खनने का कार्य्य चल रहा था कि पाचवें दिन कार्य्यकरों (कारीगरों) ने अग्नि के समान प्रकाशमान सर्वरत्न खचित महामुकुट देखा, और (यह समाचार) जय राजा से निवेदन किया। उसने अति हर्षित होकर मङ्गलपाठानन्तर उसे पृथिवी के विवर से निकलवाया। (इसके पश्चात् राजा ने) कार्य्यकर (कारीगर) आदियों का यथोचित वस्त्रादिकों से सत्कार किया। थोड़े ही काल में ऊँचे ऊँचे शिखरोंवाली चित्रसभा तैयार हो गई। शुभ दिन में (राजा ने) चित्रसभा में प्रवेश किया। माङ्गलिक वाद्यध्वनि के साथ अपने शीर्ष पर मुकुट रखा। उस के प्रभाव से वह राजा दो मुख-वाला हो गया। लोगों ने उसका द्विमुख नाम रख दिया।

कुछ समय बीता। उस राजा के सात पुत्र उत्पन्न हुए। कन्या के अभाव से गुणमाला अधीर रहने लगी, और उसने मयण नामक यक्ष को भेंट चढ़ाने की प्रतिज्ञा की। कुछ काल के पश्चात् उसके स्वप्न में प्राप्त पारिजात मञ्जरी द्वारा सूचित कन्या उत्पन्न हुई। उसका जातकर्म किया गया। यक्ष को (प्रतिज्ञात) भेंट दी गई। (कन्या का) नाम मयणमञ्जरी रक्खा गया और वह क्रम से यौवन को प्राप्त हो गई।

उज्जयिनी में चण्डप्रद्योत नामक राजा था। उसके दूत ने सुनाया कि 'राजा द्विमुख हो गया है।' प्रद्योत ने कहा— 'कैसे?' दूत ने कहा—'उसके ऐसा ही मुकुट है। उसके धारण करने पर दो मुख हो जाते हैं।' (यह सुनकर) प्रद्योत का मन मुकुट पर ललचा गया। (उसने) द्विमुख राजा को दूत भेजा— 'इस श्रेष्ठ मुकुट को मुझे भेज दो। यदि नहीं भेजते तो युद्ध के लिए तय्यार हो जाओ।' राजा द्विमुख ने दूत से प्रद्योत के लिये सन्देश कहा—'यदि (मुझे) जो मैं मागूँ दो तो मैं भी मुकुट देता हूँ।' दूत ने कहा—' क्या माँगते हो?' राजा ने कहा—

'करी सु नलगिरि देहु, अग्निभीरु रथ वर तथा।
शिवा देवि पटरानि, लोहजङ्घ लिपिकर सहित ॥'

यह प्रद्योत के राज्य का सारभाग था। दूत उज्जयिनी को लौट गया। (उसने) द्विमुख का सन्देश रूप उत्तर प्रद्योत को सुनाया प्रद्योत अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने चतुरङ्गिणी सेना लेकर प्रस्थान कर दिया। (उसके साथ) दो लख मस्त हाथी, दो सहस्र रथ पचास सहस्र घोड़े, और सात कोटि पदाति थे। शीघ्रता से प्रयाण करता हुआ वह पञ्चाल देश की सीमा पर आ पहुँचा। उधर राजा द्विमुख भी चतुरङ्ग सैन्यसहित राजधानी से निकला और प्रद्योत के सम्मुख चला। पञ्चाल प्रान्त की सीमा पर प्रद्योत ने (अपनी सेना का) गरुड-व्यूह और द्विमुख ने सागर-व्यूह बनाया। तब दोनों सेनाएं युद्ध में जुट गईं। श्रेष्ठ मुकुट के प्रभाव से राजा द्विमुख अजेय तो था ही। प्रद्योत की सेना नष्ट हो गई। प्रद्योत को बांधकर राजधानी में लाया गया। उसके पैर में बेड़ी डाली गई। वहाँ राजा प्रद्योत का समय आनन्द से बीतने लगा।

एक दिन उसने मदनमञ्जरी को देखा। (बस देखना था कि) गाढ़ा अनुराग उत्पन्न हो गया। इसके अनन्तर कामाग्नि से जलते हुए, तथा चिन्ता रूप व्याधि से ग्रस्त (उस प्रद्योत की वह) रात्रि बड़ी कठिनता से बीती। प्रातःकाल (वह) सभामण्डप को गया। राजा द्विमुख ने उसके मुख और देह को मुरझाया हुआ देखा। शरीर की दशा पूछने पर वह उत्तर नहीं देता था। (द्विमुख ने) डर कर अधिक बलपूर्वक पूछा। तब लम्बी सांस लेकर प्रद्योत ने कहा—

दोहा—मदन-वशग जो होहि, व्याधि मुक्त मद मत्त अथ।
कुपित मृत्यु आसन्न, लज्जा इनसे दूर रह ॥ १ ॥
कुशल चही मम इष्ट, मदनमञ्जरी ब्याह दो।
निज दुहिता नर-नाह, नहिं तो वह्नि ममाश्रय ॥ २ ॥

इस पर द्विमुख ने (उसके) निश्चय को जान, वाग्दान कर दिया (और) शुभ दिवस तथा मुहूर्त में उसका विवाह कर दिया। (फिर उसे) कुछ दिन (और) ठहरा कर सत्कार पूर्वक विदा कर दिया। प्रद्योत (अब) उज्जयिनी चला गया।

कुछ समय के पश्चात् इन्द्रमहोत्सव आ गया। राजा द्विमुख ने नगर निवासियों को आदेश किया कि इन्द्रध्वजा खड़ी करो। तब माङ्गलिक स्तुति पाठादि के महान् शब्द के साथ इन्द्र ध्वजा खड़ी हुई। उसकी झण्डियां श्वेत थीं। घुंघरू वाली घंटियों की माला से वह अलंकृत थी। उस पर सुन्दर बदनवार लटक रहे थे। वह श्रेष्ठ मणियों की माला से विभूषित (और) नाना प्रकार के फलों के लटकते हुए समूहों से लदी हुई थी। उसके स्थापित होने पर नट लोग नाचने लगे, श्रेष्ठ कवियों की बनाई हुई कविताएं गाई जाने लगीं, मनुष्यों के झुण्ड नाचने कूदने लगे, दृष्टि को मुग्ध करनेवाले जादू के खेल होने लगे, जादूगरों को ताम्बूल (पान) दिये जाने लगे, कपूर तथा कुंकुम मिश्रित जल छिड़का जाने लगा, मुक्त हस्त होकर दान दिया जाने लगा, मुरज भेरी आदि बजने लगे। इस प्रकार बड़े राग रंग से (चहल-पहल में) सात दिन व्यतीत हुए। पूर्णिमा आ पहुंची। राजा द्विमुख ने इन्द्र-केतु की पूजा बड़े औदार्य सहित कुसुम-वस्त्रादिक से की। दूसरे दिन (वह ध्वजा) वाद्यों के घोर शब्द के साथ पृथिवी पर गिरी। राजा ने उसे पुरीष और मूत्र से दुर्गन्धित स्थान में पड़ा हुआ और लोगों से लूटे जाते देखा। (और) देखकर सोचने लगा कि—'बिजली की चमक के समान चञ्चल और परिणाम विरस समृद्धियों को धिक्कार है।' इस प्रकार विचारते हुए उसे ज्ञान प्राप्त हो गया और वह स्वयं प्रत्येकबुद्ध बन गया। पञ्च मुष्टि केश-लुञ्चन करके वह सन्यासी हो गया। कहा भी है—

शोभन भूषित इन्द्रध्वज, गिरत तुरत तिहिं देख।
ऋद्धि असार विचारि मो, पञ्चाल नृप विवेक॥

उद्धरण नं० १७

जैनमाहाराष्ट्री

यह उद्धरण जोधपुर से लगभग २० मील उत्तर को बसे हुए घटयाल गाव के निकट उपलब्ध शिलालेख से लिया गया है। मूल और उसका अनुवाद १८६५ में रायल एशियाटिक सोसाइटी के पत्र, वाल्यूम २७, पृष्ठ ५१३, में प्रकाशित हुआ था। शिलालेख का समय सवत् ६१८ दिया गया है। उसमें लिखा है कि किसी कक्कुक नाम के सामन्त ने एक जैन मन्दिर की स्थापना की, एक बाज़ार बसाया और दो स्तम्भ खड़े किए।

ओं सग्गापवग्गमग्गं पढमं सयलाण कारणं देवं।
णीसेस दुरिअ-दलणं परम-गुरु णमह जिण णाहं॥ १॥
रहु तिलओ पडिहारो आसी सिरि लक्खणो त्ति रामस्स।
तेण पडिहार वंसो समुण्णइ एत्थ सम्पत्तो॥ २॥
विप्पो हरिअन्दो भज्जा आसि त्ति खत्तिआ भद्दा।
ताण सुओ उप्पण्णो वीरो सिरि रज्जिलो एत्थ॥ ३॥
अस्स वि णरहड णामो जाओ सिरि णाहडो त्ति एअस्स।
अस्स वि तणओ ताओ, तस्स वि जस वद्धणो जाओ॥ ४॥

श्लोक १—अपवग्ग 'अपवर्ग' (अप+वृज्), मोक्ष। णीसेस 'सब' (निशेष) § ६३। दुरिअ 'पाप' (दुरित)।

श्लोक २-पडिहारो 'प्रतिहार', द्वारपाल, अथवा एक जाति का नाम। वन्सो बेहतर वसो।

श्लोक ३—भज्जा 'भार्या' § ५०।

अस्स वि चन्दुअ णामो उप्पण्णो सिल्लुओ वि एअस्स।
झोटो वि तस्स तणओ अस्स वि सिरि भिल्लुओ चाई ॥ ५
सिरि भिल्लुअस्स तणओ सिरि कक्को गुरु गुणेहि गारविओ।
अस्स वि कक्कुअ णामो दुल्लहदेवीए उप्पण्णो ॥ ६ ॥
ईसिविआस हसिअं, महुरं भणिअं, पलोइअं सोम्म।
णमय जस्स ण दीण रो (सो) थेओ थिरा मेत्ती ॥ ७ ॥
णो जम्पिअं, ण हसिअं, ण कय, ण पलोइअं, ण सभरिअं।
ण थिअं, ण परिब्भमिअं, जेण जणे कज्ज परिहीण ॥ ८ ॥
सुत्था दुत्था वि पया अहमा तह उत्तिमा वि सोक्खेण।
जणणि व्व जेण धारिआ णिअ णिय मण्डले सव्वा ॥ ९ ॥
उअरोह राअ मच्छर लोहेहिं इ णाय वज्जिअ जेण।
ण कओ दोण्ह विसेसो ववहारे कंवि मणय पि ॥ १० ॥
दिअवर दिण्णाणुज्ज जेण जण रञ्जिऊण सयल वि।
णिमच्छरेण जणिअ दुट्ठाण वि दण्ड णिट्ठवण ॥ ११ ॥

श्लोक ५—शिलालेख में नामा शब्द है किन्तु यह नामो का, जैसा कि दूसरे श्लोक में है, गलत रूप है। चाई 'उदार' (=त्यागी), तुलना करो अर्ध मागधी चत्त=त्यक्त। § ४४। §११९। गारविओ का अर्थ है गौरवित, 'बहुत प्रतिष्ठित', तुलना करो माहाराष्ट्री अर्धमागधी जैन माहाराष्ट्री गारव, माहा राष्ट्री शौरसेनी गोरव (=गौरव), पालि गरु, संस्कृत गरीयस्।

श्लोक ७—णमय, शायद इसको सही करके णमिय 'नम्रता' कर दिया गया है। थेओ=थेवो 'थोड़ा'।

श्लोक ९—पया=प्रजा, णिय=निज।

श्लोक १०—उअरोह 'अनुग्रह' अथवा 'द्वेष, अवरोध' (उप+रुध्)। मच्छर 'मत्सर', तुलना करो वच्छ § ३२९। इ=इति। अर्धमागधी में दीर्घ स्वर के बाद 'ति' इ हो जाती है (पिशल §९३)। जैन माहाराष्ट्री में मणिय पि अधिक प्रचलित है।

श्लोक ११—दिअ 'द्विज' § ४२। णिट्ठवण 'नियन्त्रण' (नि+स्थापन)

घण रिद्ध समिद्धाण वि पउराण णिअकरस्स अन्भहिअ।
लक्ख सय च सरिसम्लण च तह जेण दिट्ठाइ ॥ १२ ॥
णव जोव्वण रूअ पसाहिएण सिंगार गुण गरुक्केण।
जणवय णिज्ज्मलज्ज जेण जणे णेय सचरिअ ॥ १३ ॥
बालाण गुरू तरुणाण तह सही गयवयाण तणओ व्व।
इय-सुचरिएहि णिच जेण जणो पालिओ सव्वो ॥ १४ ॥
जेण णमन्तेण सया सम्माण गुणथुइ कुणन्तेण।
जप्पन्तेण य ललिअ दिण्ण पणईण धण णिवह ॥ १५ ॥
मरुमाड-वल्ल-तमणी परिअका अज्ज गुज्जरत्तासु।
जणिओ जेण जणाण सचरिअ-गुणेहिं अणुराओ॥ १६ ॥
गहि ऊण गोहणाइ गिरिम्मि जालाउ (ला) ओ पल्लीओ।

ह्रस्व स्वर के लिए तुलना करो ठवेइ=स्थापयति § ६७।

श्लोक १२—पउर=शौरसेनी पोर (=पौर) § ६१। अन्भहिअ=अभ्यधिक। कीलहौर्न ने सरिसलणाअ=*सदृशरवनम् च को प्रस्तुत किया,—सण=वैदिक स्वन-स्व के स्थान में अधिक प्रचलित है। (उनका इस श्लोक का अनुवाद विचारणीय है और उन्हों ने लिखा है कि सम्भवत मूल का शब्द विन्यास अशुद्ध है)।

श्लोक १३—गरुअ 'भारी' 'भरा हुआ'=*गरुवय, तुलना करो पालि गरु, संस्कृत गुरुक (पिशल § १२३)। जणवय=जनपद। णिज्ज=नेम 'निन्द्य'। णेय=नैव।

श्लोक १४—गय वय 'बूढ़ा' (=गत वयस्), इय, जैन महाराष्ट्री अर्ध मागधी=इति।

श्लोक १५—सया=सदा। पणइ=प्रणयिन्।

श्लोक १६—मरुमाड, सम्भवत =मारवाड़। गुज्जर=गुर्जर 'गूजर'। यहाँ हमें आधुनिक 'गुजरात' का यह एक अधिक प्राचीन रूप उपलब्ध होता है। परिअङ्का अज्ज की कोई व्याख्या नहीं दी गई है।

जणिआओ जेण मिसमे वइणाणय मण्डले पयड ॥ १७ ॥
णीलुप्पल दल-गन्धा रम्मा मायन्द महुअ विन्देहिं ।
वर-इच्छु पण्ण-च्छण्णा एसा भूमी कया जेण ॥ १८ ॥
वरिस सएसु अ णवसु अट्ठारसमग्गलेसु चेत्तम्मि ।
णक्खत्ते विहु हत्थे बुहवारे धवल बीआए ॥ १९ ॥
सिरिकक्कुएण हट्ट महाजण विप्प पयइ वणि बहुल ।
रोहिन्सकूअ गामे णिवेसिअ कित्ति विद्धीए ॥ २० ॥
मड्डोअरम्मि एक्को, बीओ रोहिन्सकूअ-गामम्मि ।
जेण जसस्स व पुञ्जा एए त्थम्भा समुत्थविआ ॥ २१ ॥
तेण सिरिक्कुएण जिणस्स देवस्स दुरिअ णिद्दलण ।
कारविअं अचलमिम भवण भत्तीए सुह-जणय ॥ २२ ॥
अप्पिअमेअ भवण सिद्धस्स धणेसरस्स गच्छम्मि ।
तह सन्त जम्ब अम्बय वणि भाउड पमुह गोट्ठीए ॥ २३ ॥

श्लोक १७—गोहण 'गायों का समुदाय' (गो धन)। पल्ली 'झोंपड़ियों का समुदाय'। जालाउल=ज्वालाकुल, पयड=प्रकटम्, माहाराष्ट्री पअड अर्ध मागधी पगड।

श्लोक १८—मायन्द 'आम का पेड़' (माकन्द)।

श्लोक १९—अग्गल (=अर्गल) पारिभाषिक ढग से तिथियों में प्रयुक्त किया जाता है देखो इंडियन ऐंटिक्वैरी, वौल्यूम १९, पृष्ठ ६१, नोट ४२। विहु 'विधु' चन्द्रमा। हत्थ=हस्त-नक्षत्र। बीअ 'दूसरा', अर्धमागधी जैन माहाराष्ट्री बीय, बिइय।

श्लोक २०—महाजण विशेषेण के तौर पर 'सौदागरों के लिये'। पयइ 'पैदल सैनिक', पयाइ 'पदाति' भी होता है।

श्लोक २३—अप्पिअ (अर्पित)। गच्छ 'परम्परा', 'वश', अर्थात् 'शाखा'। गोट्ठी 'गोष्ठी,' समाज।

अनुवाद

१—ओंम् ! स्वर्ग और अपवर्ग के मार्ग, सकल वस्तुओं के प्रथम कारण, नि शेष दुरितों को दलन करनेवाले परम गुरु, जिननाथ को नमस्कार करो।

२—श्री लक्ष्मण रघुकुलतिलक राम के द्वारपाल थे, इससे प्रतिहार-वंश यहाँ उत्कर्ष को प्राप्त हुआ है।

३—हरिचन्द्र नाम का एक ब्राह्मण था, उसकी पत्नी भद्रा नाम की क्षत्रियाणी थी। उनके रज्जिल नाम का एक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ।

४—उसके भी नरभट्ट नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसके नाहड़ (=नागभट), उसका पुत्र ताट, और उसका पुत्र यशोवर्धन था।

५—उसके चन्दुक उत्पन्न हुआ, और उसके शिल्लुक, उसका पुत्र झोटो, और उसका त्यागशील भिल्लुक हुआ।

६—श्री भिल्लुक के कक्को नाम का अत्यन्त गौरवान्वित और उदात्त गुणों से युक्त तनय हुआ, और उस के दुर्लभदेवी से कक्कुक नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

७—उसका हास अधवलित (कलि के समान) है, उस का भाषण मधुर, चितवन सौम्य, नम्रता अदीन, रोष क्षणिक और मैत्री स्थिर है।

८—उसने कभी कोई ऐसी बात नहीं कही, कोई ऐसी हँसी न हँसी, कोई ऐसा काम न किया, कोई ऐसी दृष्टि नहीं डाली, कोई ऐसी बात याद नहीं की जिससे मनुष्य जाति का उपकार न हुआ हो।

९—उसने जननी की भांति अपने राष्ट्र के अन्दर अपनी प्रजा के निर्धन और धनी, अधम और उत्तम सभी लोगों को सुख से रक्खा है।

१०—अनुमद, राग, द्वेष या लोभ के कारण कर्तव्यपथ से

विचलित होकर उसने कभी भी व्यवहार में प्रतिपक्षियों के प्रति कोई भेद भाव नहीं दिखलाया है।

११—द्विजवरों की दी हुई शिक्षा का अनुसरण करते हुए उस ने सारी प्रजा को प्रसन्न रक्खा है, और मत्सर रहित होकर दुष्टों को दण्ड दिलवाया है।

१२—धन से समृद्ध नागरिकों पर उसने अपने राजस्व से भी अधिक कर लगाया है (?), एक लाख और एक सौ और इसी तरह (?)।

१३—यद्यपि वह यौवन और सौन्दर्य के लावण्य से अलङ्कृत था और शृङ्गार के गुणों से गौरवान्वित था, उसने प्रजा के साथ कभी ऐसा आचरण नहीं किया जिससे उस को लोगों का निन्दा-भाजन बनना पड़ा हो अथवा लज्जा को तिलाञ्जलि देनी पड़ी हो।

१४—वह बच्चों का गुरु था, इसी प्रकार तरुणों का सखा और वृद्धों का पुत्र जैसा था, इस प्रकार के सदाचरण से उसने निरन्तर सबका पालन किया है।

१५—सदा विनीतता से सन्मान प्रदर्शित करते हुए, गुणों की प्रशंसा और मधुर भाषण करते हुए उसने अपने प्रणयियों को प्रचुर धन दिया है।

१६—अपने सच्चरित्र और गुणों से उसने मरुमाड, वङ्ग, तमणी और गुजरात में लोगों के हृदय को (अनुराग) जीत लिया है।

१७—विषम घटनानक मण्डल के पहाड़ पर के गावों को उस ने खुल्लमखुल्ला अग्निसात् (ज्वालाकुल) कर दिया है और गोधन को वहाँ से ले लिया है।

१८—इस भूमि को उसने नीलोत्पल के पत्तों से सुगन्धित और माकन्द (आम) और मधुक के पेड़ों के पुञ्जों से रमणीक बना दिया है और उसे बढ़िया ईख (इक्षु) के पत्तों से आच्छन्न कर दिया है।

१६-२०—और चैत्र में जब नौ सौ वर्षों में अठारह वर्षों की वृद्धि हो चुकी थी (६१८ में), जब चन्द्रमा का नक्षत्र हस्त था, शुक्ल पक्ष की द्वितीया, बुधवार को श्रीकक्कुक ने अपने यश की वृद्धि के लिये रोहिन्सकूप गाव में एक हाट की स्थापना की जो महाजनों (सौदागरों) के लिये उपयुक्त और ब्राह्मणों, पदातियों और सौदागरों से आकीर्ण था।

२१—उसने अपने यश के पुञ्जों की भाति इन दो स्तम्भों को, एक को मड्डोअर और दूसरे को रोहिन्सकूप गाव में, खड़ा किया है।

२२—इस श्रीकक्कुक ने भक्ति भाव से देव 'जिन' के इस दुरितों के दलन करने वाले सुख प्रद अचल भवन को बनवाया है।

२३- और इस भवन को उसने सिद्ध धनेश्वर के गच्छ में जम्ब और अम्बय (?) सन्तों और भाकुट (?) बनिये से अधिष्ठित गोष्ठी को समर्पित कर दिया है।

उद्धरण नं० १८

जैनमाहाराष्ट्री

कालकाचार्य की कथा से। Jacobi Z D
M G Vol 34 (1880), Page 262

उज्जैन के दुष्ट राजा गर्दभिल्ल को प्रभावान्वित करने में असफल होकर, जो सन्यासिनी सरस्वती को अपने अन्त पुर में लिवा लाया था और जिसने फिर उसको छोड़ने से नाहीं कर दी थी, सन्यासिनी का महात्मा भाई कालकाचार्य गर्दभिल्ल को पद-च्युत करने के उद्देश्य से परदेश गया।

त च कुओ वि नाऊण निग्गओ नयरीओ सूरी, अणवरय च गच्छ तो पत्तो सग कूल णाम कूल। तत्थ, जे सामन्ता, ते साहिणो

१—कुवो वि=कुतोऽपि। नाऊण √ज्ञा, जैन महाराष्ट्री में साधारणतया

भणन्ति, जो सामन्ताहिवई सयल नरिन्द-वन्द-चूडामणी सो सा हाणुसाही भण्णइ। तओ कालग सूरी ठिओ एगस्स साहिणो समीवे, आवज्जिओ य सो मन्त-तन्ताईहिं। इओ य अण्णया कयाई तस्स साहिणो सूरि समन्नियस्स हरिस भर निब्भरस्स नाणाविह-विणोएहिं चेट्ठमाणस्से समागओ पडिहारो, विन्नत्त च तेण, जहा- "सामि! साहाणुसाहि दूओ दुआरे चिट्ठइ"। साहिणा भणिय- "लहु पवेसेहि"। पवेसिओ य वयणेण अन्तर एव निसन्नो य दिण्णासणे। तओ दूएण समप्पिय उवायण त च दट्ठूण नव पाउस-काल-नहयल व अन्धारिय वयण साहिणो। तओ चिन्तिय, 'हन्ति, काम अपुव्व-करण उवलक्खिज्जइ, जओ सामि पसाय आगयं दट्-ठूण जलय-दसणेण व सिहिणो हरिस भर निब्भरा जायन्ति सेवया सा साम वयणो दीसइ। ता पुच्छामि कारण", ति। एयन्तरम्मि साहि पुरिस दसिय विडहरे गओ दूओ। तओ पुच्छिय सूरिणा,

---

आरम्भ का म मूर्धन्य नहीं होता। सगकूल 'शकों का तट (देश)'; इस रूप के लिये तुलना करो 'असोग'।

१—अहिवइ (अधिपति)। साहि=षाहि, अर्थात् फारसी शाह या शाही। यह शब्द, और षाहानुषाहि भी=फारसी शाह-शाह 'सम्राट्', इलाहाबाद प्रशस्ति में मिलते हैं (Fleet Gupta Inscriptions No 1, Samudra) इस प्रशस्ति में इन दो शब्दों का प्रयोग भारत के पश्चिम में शकों के सम्बन्ध में वर्णित किया गया है।

२—आवज्जिओ (आ+वृज्)।

३—इतश्च-अन्यदा कदाचित्।

४—'चेष्टा करते हुए' (चेष्ट्)।

५—'दान'।

६—पाउस 'वर्षा ऋतु' (प्रावृष्), एकवचन

७—हन्ति=हन्त। [illegible] (उप+लक्ष्) का कर्मवाच्य

८—विडहर [illegible] "[illegible]" [illegible]

"हन्त, सामि पसाए समागए किं उव्विग्गो विव लक्खीयसि ?" तेण भणियं, "भयवं, न पसाओ, किं तु कोवो समागओ। जओ अम्ह पहू जस्स रूसइ, तस्स नामङ्कियं मुद्दियं छुरियं पट्ठवेइ[1]। तओ केणइ कारणेण अम्होवरिं[2] रूसिऊण पेसिया एसा छुरिया। एईए[3] य अप्पा अम्हेहिं घाइयव्वो। उग्गदण्डो त्ति काऊण न तव्वयणे वियारणा कायव्वा।" सूरिणा भणियं-"किं तुज्झ चेव रुट्ठो, उयाहु[4] अन्नस्स वि कस्स वि ?" साहिणा भणियं-'मम पडियाए अन्नेसिं पि पञ्चाणउइ राईणं, जओ दीसइ छन्नउइमी[5] इमीए सत्थियाए अंको त्ति।" सूरिणा भणियं-"जइ एवं, ता मा अप्पाणं विणासेहि"। तेण भणियं-"न पहुणा रुट्ठेण कुलक्खयं अन्तरेण छुट्टिज्जई[6]। मए पुण मएण सेसकुलस्स खेमं भवइ"। सूरिणा भणियं—"जइ वि एवं तहा वि वाहरेसु[7] नियदूयपेसणेण पञ्चाणउइं पि रायाणो, जेण हिन्दुगदेसं[8] वच्चामो।" तओ तेण पुच्छिओ दूओ जहा-"भद्द ! के ते अन्ने पञ्चाणउइं रायाणो, जेसिं कुविओ देवो ?" तेण वि कहिये निये

१—पट्ठवेइ 'भेजता है' णिजन्त (प्र+स्था)।

२—उवरिं=उपरि।

३—एईए तृतीया स्त्रीलिङ्ग 'इससे'। घाइयव्व हन् के णिजन्त रूप से भविष्यत् कृदन्त।

४—उयाहु 'अथवा' (उताहो)।

५—छन्नउइमी छयानबेवां।

सत्थिया 'हथियार' (शस्त्रिका), 'क्योंकि उसके शस्त्र का नम्बर ९६ वां प्रतीत होता है।'

६—छुट्टिज्जइ कर्म वाच्य √छुट् 'काट डालना, छोड़ देना।' तुलना करो हिन्दी छुटना, छुट्टी।

७—वाहरेसु 'बुलाओ' (वि+आ+हृ)।

८—हिन्दुग=फारसी हिन्दुक। वच्चामो 'हम जा रहे हैं।'

इया। तओ दूयं विसज्जिऊण सव्वेसिं पि पेसिया पत्तेय[1] नियदूया जहा—"समागच्छह मम समीवे, मा नियजीवियाइ परिच्चयह, अह सव्वत्थ मलिस्सामि[2]"। तओ ते दुपरिच्चयणीयत्तणाओ[3] पाणाण सव्व-सामग्गिं काऊण आगया झड त्ति[4] तस्स समीवं, ते य समागए दट्ठूण तेणावि पुच्छिया सूरिणो—"भयवं किं अम्हेहिं सम्पयं कायव्वं?" सूरीहिं भणियं—"सवलवाहणा उत्तरिऊण सिन्धुं वच्चह हिन्दुग-देसं। तओ समारुहिऊण जाणवत्तेसुं[5] समागया सुरट्ठविसए। एत्थन्तरम्मि य समागओ पाउस समओ; तओ दुग्गमा मग्ग त्ति काउ सुरट्ठविसओ छण्णउइ विभागेहिं विभञ्जिऊण ठिया तत्थेव।

[फिर शरद् ऋतु आई, जिसका सविस्तर वर्णन किया गया है]

एवंविहं च सरयं[6]-काल सिरिमवलोइऊण नियसमीहियसिद्धि-कामेण भणिया ते कालय सूरिणा, जहा—" भो, किं एवं निरुज्जमा चिट्ठह?" तेहिं भणियं,—" आइसह किं पुणो करेमो ।" सूरिणा भणियं, " गिण्हह उज्जेणिं, जओ तीए पडिबद्धो पभूओ मालव-देसो, तत्थ पज्जत्तीए तुम्हाणं निव्वाहो[7] भविस्सइ।" तेहिं भणियं—"एवं करेमो; परं नत्थि सम्बलयं[8] जम्हा एयम्मि देसे अम्हाणं भोयणमेत्तं चेव जाय"। तओ सूरिणा जोग-चुण्ण चहुरिटया मेत्त-

१—पत्तेयं 'पृथक् पृथक्' प्रत्येकम्।

२—मलिस्सामि मलइ=मरइ का भविष्य का रूप, या तो=मृ 'मरण करना' से या *म्रद्द के द्वारा मृद् से।

३—=दु परित्यजनीयत्वात्।

४—झट् इति।

५—जाणवत्त जहाज (यानपात्र), § १२।

६—सरय 'शरद्'।

७—निव्वाहो 'प्रचुरता, जीविका' (निर्वाह)। पज्जत्ति 'पर्याप्ति'।

८—सम्बलय 'गोदाम, सामान' (शम्बल)। जम्हा पञ्चमी एकवचन (यस्मात्) क्रियाविशेषण जैसा प्रयुक्त किया गया है, 'चूंकि, क्योंकि'।

पज्जंतेसु सुवण्णी-काऊण तस्स कुंभकारावगं भणियो-"एयं मज्झस्स गिण्हह"। तओ तं तं विभजिऊण सव्व-सामंताण पट्ठिया उज्जेणि पेइ। अन्तरे य जे के वि लाडय विसय-रायाणो, ते साहेत्ता पत्ता उज्जेणि विसयम्मि। तओ गद्दभिल्लो पच्चंत आगच्छन्तं सोऊण महाबल-सामग्गीए निग्गओ पत्तो य विसय-संधि। तओ दोण्ह वि दप्पु-द्धरसेण्णाण लग्गं आओहणं।

अनुवाद

जब सूरि को कहीं से इसका पता लगा तो वह नगर से निकला हुआ, और अनवरत चलता हुआ शक कूल नाम के देश में पहुँचा। वहाँ जो सामन्त हैं उन्हें शाही कहते हैं और जो सकल नरेन्द्र वृन्द का चूड़ामणि और सामन्ताधिपति होता है उसे शाहानुशाही कहते हैं। तब कालक सूरि एक शाही के पास टिका, और उसको उसने मन्त्र तन्त्र से आवर्जित किया (अपनी ओर आकर्षित किया)। इसके उपरान्त एक समय जब वह शाही सूरि के साथ था और इस निर्भर हृदय से नानाविध विनोदों से काल यापन कर रहा था, द्वारपाल अन्दर आया और उसने यह निवेदन किया—"स्वामिन्! शाहानुशाही का दूत द्वार पर खड़ा है।" शाही ने कहा—' शीघ्र अन्दर ले आओ।" इस बात के अनन्तर ही दूत ने प्रवेश किया और वह निर्दिष्ट आसन पर बैठ गया।

१—कुणप 'धूर्त' हिन्दी धूत। अनुदित्य घुरकी, भास, घुघमा क्यो हिन्दी घोंटी, पंजाबी घूटी।

२—पइ=प्रति।

३—साहेत्ता साहेइ=साहइ (शास्ति) 'कहना, बुलाना' का पूर्वकालिक कृदन्त रूप।

४ लाडय, अर्थात् लाट=दक्षिण गुजरात। उद्धर=उद्धुर। आओहण 'लड़ाई' (आ+युध्)।

तब दूत ने उपहार (उपायन) को समर्पित किया । इसको देखकर पाही का मुख (वदन) नये प्रावृष-काल के आरम्भ के आकाश की भांति अंधेरा हो गया। तब सूरि ने सोचा—"अहो, अवश्य ही यह कोई अपूर्व कर्म प्रतीत होता है; क्योंकि स्वामी के प्रसाद को आया हुआ देखकर सेवक इसी प्रकार हर्षनिर्भर हो जाते हैं जैसे मेघों के दर्शन से मोर (शिखी)-किन्तु यह श्याम वदन दिखाई देता है, अतएव मैं इसका कारण पूछूँगा।" इसी बीच दूत पाही के कर्म-चारियों से बताये हुए भवन (?) में चला गया। तब सूरि ने पूछा—" क्यों, स्वामी के प्रसाद के आने पर आप उद्विग्न जैसे क्यों दिखाई देते हैं ?" उसने कहा—" भगवन्, यह प्रसाद नहीं किन्तु कोप का समागम है, क्योंकि जिस किसी से हमारा प्रभु रूसता है उसके पास वह उसके नाम की मुहर की छुरी भेजता है। अतएव किसी कारण से हमारे ऊपर रूसकर उसने यह छुरी भेजी है। इसी से हमें आत्मघात करना होगा; उस के उग्र दण्ड के भय से उस की बात पर कोई विचारणा नहीं की जा सकती।" सूरि ने कहा—" क्या तुम्हीं पर रूठा है या अन्य किसी पर भी ?" पाही ने कहा—' मुझे छोड़कर अन्य पचानवे राजाओं पर भी, क्योंकि इस शस्त्र पर छयानवेवा अङ्क लगा हुआ दिखाई देता है।" सूरि ने कहा—यदि ऐसा है तो अपना विनाश न करो।" उस ने कहा—" रुष्ट हुआ प्रभु कुल क्षय किये बिना सास नहीं लेता; किन्तु मेरे मरने से शेष कुल का क्षेम होता है।" सूरि ने कहा—" यदि ऐसा है तो अपना दूत भेजकर सारे पचानवे राजाओं को यह सन्देश भेजो कि हम हिन्दुक देश को जा रहे हैं।" तब उसने दूत को इस प्रकार पूछा—" भद्र वे अन्य पचानवे राजा कौन हैं, जिनपर महाराज कुपित हुए हैं ?" उसने उन सबके नाम बताये। तब दूत को विसर्जन करके सबके पास अलग अलग इस प्रकार सन्देश पहुँचाने के लिये उसने अपना दूत

भेजा—" मेरे पास आओ, अपने जीवन का परित्याग न करो मैं सारी बातों को ठीक कर लूगा।" तब वे सब अपना सारा साज सामान लेकर सीधे उस के पास आये, क्योंकि प्राणों को त्यागना मनुष्य के लिये कठिन है, और उनको आया हुआ देखकर उसने सूरि से पूछा—" भगवन्, अब हमें क्या करना चाहिये ?" सूरि ने कहा—" बलवाहन सहित सिन्धु नद को पार करके हिन्दुक देश को जाओ "। तब जहाजों में चढ़कर वे सूरत देश में पहुँचे। इसी बीच वर्षाकाल भी आ गया, तब मार्गों को दुर्गम देख कर वे सूरत देश को ९६ भागों में विभक्त कर के वहीं रहने लगे। शरद् श्री को देख कर जैसा कि उसे ऊपर वर्णन किया गया है कालकसूरि ने स्वयं अपनी लालसा को पूरा करने की इच्छा से उनसे कहा—'क्यों जी, क्यों इस प्रकार निरुद्यमी हो कर समय बिता रहे हो ? उन्हों ने कहा—'तो फिर आदेश कीजिये कि हम क्या करें ?' सूरि ने कहा—'उज्जैन पर अधिकार करो, क्यों कि यही मालव देश की कुञ्जी है, वहाँ तुम्हारा यथेष्ट निर्वाह होगा'। उन्होंने कहा—'ऐसा ही करते हैं, किन्तु हमारे पास कोई सामान नहीं है, क्योंकि इस देश में हमें भोजन मात्र के लिए जौ मिले हैं।' तब सूरि ने योगचूर्ण की एक चुटकी मात्र के प्रक्षेपण (फेंकने) से सारे कुम्हारों की उपादान सामग्री को सुवर्ण बना दिया और कहा—'यह लो, सामान है।' तब उन्होंने उसको बाट कर और अपने सारे साज सामान को ले कर उज्जैन के प्रति प्रस्थान किया। इसी बीच लाट देश के जितने भी राजा थे उनको उन्होंने बुला भेजा और वे उज्जैन की सीमा पर पहुँचे। तब गर्दभिल्ल शत्रुसेना का आना सुन कर अपनी विशाल सेना को लेकर बाहर निकला और सीमान्त पर पहुँचा। तदनन्तर दर्प से फूली हुई दोनों सेनाओं के बीच युद्ध आरम्भ हुआ।

उद्धरण नं० १६

अर्धमागधी

उदायण

(Jacobi No III Portions)

तेण कालेण तेण समएण सिन्धुसोवीरेसु जणवएसु वीयभेए नाम नयरे होत्था; उदायणे नाम राया, पभावई देवी । तीसे जेट्ठे पुत्ते अभिई नाम जुव राया होत्था; नियए भाइणेज्जे केसी नाम होत्था । से न उदायणे राया सिन्धु सोवीर-पामोक्खाणं सोलसण्ह जणवयाण वीयभय पामोक्खाण तिण्ह तेवट्ठीण नयर-सयाँन महसेण पामोक्खाण दसण्ह रायाण बद्धमउडाण विइण्ण-सेय-चामर वाय वीयणाण अन्नेसिं च राईसर तलवर पभिईण आहेवच्च कुणमाणे विहरइ । एय च ताव एय ।

इसके बाद कथा जैनमाहाराष्ट्री में परिवर्तित हो जाती है

---

१ वीयभए=वीतभयो, प्रथमा एकवचन का एकारान्त होना इस प्राकृत की विशेषता है । 'होत्था' हो=भव का लुङ् एकवचन प्रथम पुरुष आत्मनेपद । अन्य पुरुषों और वचनों में भी इसका प्रयोग मिलता है ।

२ 'भाइणेज्ज' भानजा, भागिनेय । नियय=निय, अपना (संस्कृत निज) ।

३ पामोक्ख (प्रमुख) ।

४ तेवट्ठि 'तिरसठ', तेसट्ठि भी होता है । सय, सौ (शत) § ११२ । प्रत्यपत' इसका अर्थ है '१६३ नगरों का' ।

५ 'विइण्ण' दिया (वि+दृ) । सेय 'सफेद' (श्वेत) । वीयण 'पंखा झलना' (वीज्) । अन्नेसिं, षष्ठी बहुवचन ' दूसरों का ' (महाराष्ट्री में अण्णाण) । राईसर 'राजेश्वर' । तलवर 'प्रधान' । तलारो, देशी नाममाला में=नगर-रक्षक । आहेवच्च, आधिपत्य (आधिपत्यम्) । कुणमाणे, आत्मनेपद ' कुणइ का ' वर्तमान शानच् रूप ।

भेजा—" मेरे पास आओ, अपने जीवन का परित्याग न करो, मैं सारी बातों को ठीक कर लूंगा।" तब वे सब अपना सारा साज सामान लेकर सीधे उस के पास आये, क्योंकि प्राणों को त्यागना मनुष्य के लिये कठिन है, और उनको आया हुआ देखकर उसने सूरि से पूछा—' भगवन्, अब हमें क्या करना चाहिये ?" सूरि ने कहा—" बलवाहन सहित सिन्धु नद को पार करके हिन्दुक देश को जाओ "। तब जहाजों में चढ़कर वे सुरत देश में पहुँचे। इसी बीच वर्षाकाल भी आ गया; तब मार्गों को दुर्गम देख कर वे सुरत देश को ९६ भागों में विभक्त कर के वहीं रहने लगे। शरद् श्री को देख कर जैसा कि उसे ऊपर वर्णन किया गया है कालकसूरि ने स्वय अपनी लालसा को पूरा करने की इच्छा से उनसे कहा—'क्यों जी, क्यों इस प्रकार निरुद्यमी हो कर समय बिता रहे हो ? उन्हों ने कहा—'तो फिर आदेश कीजिये कि हम क्या करें ?' सूरि ने कहा—'उज्जैन पर अधिकार करो, क्यों कि यही मालव देश की कुञ्जी है; वहाँ तुम्हारा यथेष्ट निर्वाह होगा'। उन्होंने कहा—'ऐसा ही करते हैं; किन्तु हमारे पास कोई सामान नहीं है, क्योंकि इस देश में हमें भोजन मात्र के लिए जौ मिले हैं।' तब सूरि ने योगचूर्ण की एक चुटकी मात्र के प्रक्षेपण (फेंकने) से सारे कुम्हारों की उपादान सामग्री को सुवर्ण बना दिया और कहा—'यह लो, सामान है।' तब उन्होंने उसको बाट कर और अपने सारे साज सामान को ले कर उज्जैन के प्रति प्रस्थान किया। इसी बीच लाट देश के जितने भी राजा थे उनको उन्होंने बुला भेजा और वे उज्जैन की सीमा पर पहुँचे। तब गर्दभिल्ल शत्रुसेना का आना सुन कर अपनी विशाल सेना को लेकर बाहर निकला और सीमान्त पर पहुँचा। तदनन्तर दर्प से फूली हुई दोनों सेनाओं के बीच युद्ध आरम्भ हुआ।

माणे इहेव वीयभए आगच्छेज्जा, तो ण अहम् अवि भगवओ अन्तिए मुण्डे भवित्ता जाव पव्वएज्जा । तए ण भगवं उदायणस्स एयारूवं अज्झत्थियं जाणित्ता चम्पाओ पडिनिक्खमित्ता, जेणेव वीयभए नयरे, जेणेव मियवणे उज्जाणे, तेणेव विहरइ। तओ परिसा निग्गया उदायणे य। तए ण उदायणे महावीरस्स अन्तिए धम्मं सोच्चा हट्ठ तुट्ठे एवं वयासी—जं नवर जेट्ठपुत्तं रज्जे अहिसिञ्चामि, तओ ण तुब्भं अन्तिए पव्वयामि। सामी भणइ—अहासुहं, मा पडिबन्ध करेहि। तओ ण उदायणे आभिओगियं हत्थि रयणं दुरुहित्ता सए गिहे आगए। तओ उदायणस्स एयारूवे अज्झत्थिए जाए—जइ ण अभिइं कुमारं रज्जे ठवित्ता पव्वयामि, तो अभिइं रज्जे य रट्ठे य जाव जणवए य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए अणाइयं अणवयग्गं संसार-कन्तारं अणुपरियट्टिस्सइ। तं सेयं खलु मे नियगं भाइणेज्जं केसिं कुमारं रज्जे ठविचा पव्विइत्तए। एवं संपेहेत्ता सोभणे तिहि-करण-

---

१ पुव्वाणुपुव्विं 'आनुपूर्व्य से' । दूइज्जमाण, भटकता हुआ (दु)। आगच्छेज्जा, विधिलिङ्।

२ परिसा 'परिषद्'।

३ सोच्चा 'सुन कर' (श्रुत्वा)। तुलना करो चच्चर=चत्वर। जैन महाराष्ट्री हट्ठ=हृष्ट। वयासी 'कहा' (वद्) लुङ्।

४ आभिओगिय (आभियोगिक), देवताविशेष। यहाँ जेकोबि के उद्बोधानुसार राजसी हाथी। दुरुहित्ता 'चढ़कर' (उद्+रुह् के लिए * उदुरुह्)।

५ मुच्छिय 'लालची (मूर्छ्)। अणाइय 'अनादि'। अणवयग्ग 'अनन्त', शब्दार्थ जिसका सिरा झुका हुआ न हो, (अनमदग्र=पालि अनमतग्ग, पिशल§२२१)। अणुपरियट्टिस्सइ 'भ्रटन करेगा' (अनु+परि+वृत्)।

६ सेयं 'बेहतर'—(श्रेयस्)। पव्वइत्तए, तुमुन्नन्त।

७ सम्पेहेत्ता, विचार कर (सम्+प्र+ईक्ष्)। ईक्ष् धातु में 'ह' का मिलना बहुधा अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में देखा जाता है। अणुप्पेहन्ति=अनुप्रेक्षन्ते। दाहिण='दक्षिण', माहाराष्ट्री और शौरसेनी में भी पाया जाता है।

और पत्नीपरायण (स्त्रैण) सुनार कुमारनन्दी की चर्चा चलाती है, जिसने पांच पांच सौ मुहरें देकर ५०० पत्नियां इकट्ठी की थीं और जिसको पञ्च शिला द्वीप की देवियों ने अपना वर चुना था। अन्त में कथा उदायण का प्रसङ्ग छेड़ती है, और अर्धमागधी (धर्म ग्रन्थों की भाषा) में हमें उस के नया धर्म ग्रहण करने की बात बतलाई जाती है।

तए णं से उदायणे राया अन्नया कयाइ पोसह सालाए पोसहिए एगे अबीए पक्खियं पोसहं सम्मं पडिजागरमाणे विहरइ। तओ तस्स पुव्वरत्तावरत्त काल समयंसि जागरियं करेमाणस्स एयारूवे अज्झत्थिए समुप्पज्जित्था। धन्ना णं ते गाम नगरा, जत्थ णं समणे वीरे विहरइ, धम्मं कहेइ; धन्ना णं ते राईसरपभिईओ, जे समणस्स महावीरस्स अंतिए केवलि पन्नत्तं धम्मं निसामेन्ति, एवं पञ्चाणुव्वयं सत्तसिक्खावइयं सावगधम्मं दुवालस विहं पडिवज्जंति, एवं मुण्डा भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वयंति। तं जइ णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं दूइज्ज

१ कयाइ=कदाचित्। पोसह 'व्रत' (उपवसथ) § ७४। अ-बीए (अकेले ही)। पक्खियं 'प्रत्येक पक्ष को'। सम्मं, सम्यक्। पडिजागरमाण 'जागरण करता हुआ'।

२ पुव्वरत्त 'रात्रि का पहिला भाग', 'अवरत्त 'रात्रि का उत्तरार्ध'। करेमाण, आत्मनेपद करेइ का वतमान शानच् रूप। एयारूव 'इस रूप का'। अज्झत्थिय 'विचार' (आध्यात्मिक)। समुप्पज्जित्था, लुङ् (सम्+उद्+पद्) तुलना करो होत्था—'था'।

३ केवलि 'पराविद्या से युक्त। पन्नत्त (प्रज्ञप्तम्)। निसामेन्ति 'सुनते हैं' (नि+शम्)।

४ अणुव्वय 'आज्ञा विधान' अनुव्रत—गृहस्थों के लिए पांच आज्ञायें, जैन साम्प्रदायिकता। सिक्खावइय शिक्षा (* शिक्षापदिक)। दुवालस 'द्वादश'।

५ भवित्ता, कृदन्त § ११२। आगार, 'घर'।

माणे इहेव वीयभए आगच्छेज्जा, तो ण अहम् अवि भगवओ अन्तिए मुण्डे भवित्ता जाव पव्वएज्जा । तए ण भगव उदायणस्स एयारूव अज्झत्थिय जाणित्ता चम्पाओ पडिनिक्खमित्ता, जेणेव वीयभए नयरे, जेणेव मियवणे उज्जाणे, तेणेव विहरइ । तओ परिसा निग्गया उदायणे य । तए ण उदायणे महावीरस्स अन्तिए धम्म सोच्चा हट्ठ तुट्ठ एव वयासी—ज नवर जेट्ठपुत्त रज्जे अहिसिञ्चामि, तओ ण तुब्भ अन्तिए पव्वयामि । सामी भणइ—अहासुह, मा पडिबन्ध करेहि । तओ ण उदायणे आभिओगिय हत्थि रयण दुरुहित्ता सए गिहे आगए । तओ उदायणस्स एयारूवे अज्झत्थिए जाए—जइ ण अभिइ कुमार रज्जे ठवित्ता पव्वयामि, तो अभिई रज्जे य रट्ठे य जाव जणवए य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए अणाइय अणवयग्ग ससार-कन्तार अणुपरियट्टिस्सई । त सेय खलु मे नियग भाइणेज्ज केसि कुमार रज्जे ठवित्ता पव्विइत्तए । एव सपेहेत्ता सोभणे तिहि करण-

---

१ पुव्वाणुपुव्वि 'आनुपूर्व्य से' । दूइज्जमाण, भटकता हुआ (द्रु) । आगच्छेज्जा, विधिलिङ् ।

२ परिसा 'परिषद्' ।

३ सोच्चा ' सुन कर ' (श्रुत्वा) । तुलना करो चच्चर=चत्वर । जैन महाराष्ट्री हट्ठ=हृष्ट । वयासी 'कहा' (वद्) लुङ् ।

४ आभिओगिय (आभियोगिक), देवताविशेष । यहाँ जेकोबि के उल्लेखानुसार राजसी हाथी । दुरुहित्ता 'चढ़कर' (उद्+रुह् के लिए * उद्रुह्) ।

५ मुच्छिय 'लालची (मूर्छ्) । अणाइय ' अनादि ' । अणवयग्ग 'अनन्त', शब्दार्थ जिसका सिरा झुका हुआ न हो, (अनमदग्र=पालि अनमतग्ग, पिशल § २५१) । अणुपरियट्टिस्सइ ' भ्रमण करेगा' (अनु+परि+वृत्) ।

६ सेय 'बेहतर'—(श्रेयस्) । पव्वइत्तए, तुमुमन्त ।

७ सम्पेहेत्ता, विचार कर (सम्+प्र+ईक्ष्) । ईक्ष् धातु में 'ह' का मिलना बहुधा अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में देखा जाता है । अणुप्पेहन्ति=अनुप्रेक्षन्ते । दाहिण=‘दक्षिण’, माहाराष्ट्री और शौरसेनी में भी पाया जाता है ।

-मुद्दत्ते कोडुम्बियपुरिसे य सद्दावेत्ता एवं वयासि-खिप्पाम् एव केसिस्स कुमारस्स रायाभिसेय उवट्ठवेइ। तओ महिड्ढीए अभिसित्ते केसी कुमारे राया जाए जाव प सासेमाणे विहरइ। तओ उदायणे राया केसि राय आपुच्छा-मइ एए, देवाणुप्पिया संसारभउव्विग्गो पव्वयामि। तओ के सी राया कोडुम्बिय पुरिसे सद्दावेत्ता एव वयासी—खिप्पाम् एव उदायणस्स रन्नो महत्थ महरिह निक्खमणाभिसेय उवट्ठ वेइ। तओ महया विभूईए अभिसित्ते सिवियारूढे भगवओ समी वे ग-तूण पव्वइए जाव बहूणि चउत्थ छट्ठट्ठम-दसम दुवालस मासद्धमासाईणि तवोकम्माणि कुव्वमाणे विहरइ।

तओ से उदायणे अणगारे बहूणि वासाणि सामण्ण-परियाग पाउणित्ता सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदेत्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्ग

---

१ कोडुम्बिय कौटुम्बिक। सद्दावेत्ता, नाम धातु सद् (शब्द) से बने हुए सदेइ के—सद्देइ णिजन्त—रूप का कृदन्त।

२ खिप्पाम् एव (क्षिप्रम् एव), अर्धमागधी में एव से पहिले अन्तिम अम् का अ नियम से दीर्घ हो जाता है। जुगाम् एव युक्तमेव (पिशल § ६८)। उवट्ठवेइ, स्थिजन्त (उप+स्था)।

३ इड्ढि=ऋद्धि।

४ देवाणुप्पिया, सम्बोधन एकवचन देव+अणुप्पिय।

५ सिविया 'पालकी' (शिविका)।

६ कुव्वमाणे, तुलना करो उपर्युक्त करेमाणस्स और कुणमाणे के साथ।

७ सामण्ण, समण (श्रमण) का भाववाचक। परियाग, फिरना, पर्याय, दूसरा रूप परियाय। पर्यायक से इस रूप की उत्पत्ति में पिशल को संदेह है। वे कहते हैं कि 'य' की जगह 'ग' 'परियाय' के साथ होना चाहिये। (तुलना करो अर्ध मागधी जुवल=युगल), इसी तरह अर्धमागधी जैन माहाराष्ट्री पज्जव=पर्याय, जैन शौरसेनी पज्जय। पाउणित्ता 'पूरा कर के' (प्र+आप्)। अणसण 'अनशन'। छेएत्ता 'काट कर' तुलना करो छेत्तुम् माहाराष्ट्री जैनमहाराष्ट्री छेत्तुं

माये मुण्डभावे, त अट्ठ पत्ते जाव दुक्ख पहीणे त्ति ।

तए ण अभिइ-कुमारस्स पुव्वरत्तावरत्त कालसमयंसि एव अज्झत्थिए जाए—अह उदायणस्स जेट्ठपुत्ते पभावईए अत्तए, म रज्जे अट्ठावेत्ता केसिं रज्जे ठावेत्तो पव्वइए। इमेण माणुसेण दुक्खेण अभिभूए समाणे वीयभयाओ निग्गच्छित्ता चम्पाए कोणिय उवसपज्जित्ताण विउल-भोग-समन्नागए यावि होत्था। सेणं अभिई कुमारे समणोवासएँ अभिगय जीवाजीवे उदायणेण रन्ना समणुबद्ध-वेरे यावि होत्था। तओ अभिई कुमारे बहूइ वासाइ समणोवासग परियाग पाउणित्ता अद्धमासियाए सलेहणाए तीस भत्ताइ छेएत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइय-पडिक्कन्ते काल किच्चा असुरकुमारत्ताए उववन्नो। एग पलिओवँम ठिई तस्स, महा विदेहे सिज्झिहि त्ति

अनुवाद

उस समय सिन्धुसोवीर देश में वीतभय नाम का नगर था।

(* छेत्तेत्ता छेत्तेत्ता)।

८ अट्ठाए 'के कारण'।

१ अत्तए 'पुत्र' (आत्मज), ठावेत्ता क्त्वान्त णिजन्त (स्था)।

२ समाण 'होना'।

३ उवसपज्जित्ताण कृदन्त (उप+सम्+पद्)। समन्नागय, सयुक्त, (सम्+अनु+आ+गम्)। यावि (च+अपि)।

४ समणोवासए, गृहस्थ उपासक।

५ सलेहणा (मृत्यु से पहिले) अन्तिम यन्त्रणा (सलेखना), तीस 'तीस'।

६ अनालोइय पडिक्कन्त 'जिसका पश्चात्ताप और अङ्गीकार न किया गया हो' (अनालोचित प्रतिक्रान्त)। किच्चा, कृदन्त (कृ)।

७ पलिओवम=पल्योपम, बहुत बड़ी सख्या। ठिइ 'अवधि' § १२।

८ सिज्झिही, पूरा होगा, सिज्झइ का भविष्यद् रूप, 'सिद्ध होगा'।

उदायण वहाँ का राजा था और प्रभावती उसकी रानी थी। उस के बड़े लड़के का नाम अभिजित् था। वही युवराज था। और उसका केशी नाम का एक भतीजा था। वह उदायण सोलह प्रान्तों का, जिनमें सिन्धसोवीर प्रधान थे, तीन सौ तिरसठ नगरों का, जिनमें वीतभय प्रधान था, दस अभिषिक्त राजाओं का जिनका मुखिया महासेन था जिसको कि चॅवर झुलाने का स्वत्व मिला हुआ था, प्रभु था। इसके अतिरिक्त और भी युवराज और प्रधानादि थे। और इसी तरह था।

अब एक समय उस उदायण राजा ने यथाविधि नित्यकर्म करके उपवासशाला में अकेले चतुर्दश रात्र व्रत रक्खा। अब जब कि वह आधी रात को जागरण कर रहा था, उसको इस प्रकार विचार आया—वे गाँव और वे देश सचमुच धनाढ्य हैं जिनमें वह श्रमण 'वीर' विहार करता है और धर्म को कहता है और वे राजा और अन्य लोग भी धन्य हैं जो उस श्रमण महावीर के निकट प्रश्न ज्ञान से जाने गये (केवलि प्रज्ञप्त) धर्मोपदेश को सुनते हैं और जो उसके पांच विधानों (पंचानुव्रत) और सात शासनों से युक्त द्वादशविध शिष्य धर्म को स्वीकार करते हैं और सर्वस्व त्याग कर घर से सन्यास ले लेते हैं और घर बार छोड़ कर 'संघ' में प्रविष्ट हो जाते हैं। यदि अब वह श्रमण भगवान् महावीर स्थान स्थान में घूमता हुआ यहाँ इस वीतभय नगर में आ जायें तो मैं भी भगवान् के सामने सर्वस्व त्याग कर 'संघ' में प्रविष्ट हो जाऊँगा। इसके अनन्तर भगवान् महावीर उदायण के इस विचार को जानते हुए चंपा से चले और उसी वीतमय नगर के निकट, जहाँ मृग वन उद्यान था, रहने लगे। तब परिषद् आई और उदायण भी। इसके अनन्तर उदायण महावीर के निकट धर्म सुन कर हर्षवृताद (हृष्ट-तुष्ट) होकर इस प्रकार बोला—

मैं अभी अपने ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक किये देता हूँ और आपके सामने ही 'सघ' में प्रवेश किये देता हूँ। प्रभु ने कहा—"तो कृपया देर न करो।" तदनन्तर उद्रायण एक भव्य राजसी हाथी पर चढ़ा और अपने घर में गया। फिर उद्रायण को यह विचार आया—"यदि अब मैं युवराज अभिजित् को सिंहासन पर बिठलाता हूँ तो इस राजधानी में और इस देश में तो यह विषय वासनाओं में आसक्त होता हुआ, फिर जन्ममरण के जङ्गल में, जिसका कोई अन्त या आरम्भ नहीं, फिरता रहेगा। इसलिए यह अच्छा होगा कि सघ में प्रवेश करने से पूर्व भतीजे राजकुमार केसी को राजसिंहासन पर बिठलाया जाय। शुभ तिथि युक्त मुहूर्त में आधे दिन और क्षण इस बात पर विचार करने के बाद उसने अपने कुटुम्ब के लोग बुलाए—और उनको इस प्रकार कहा—"शीघ्र राजकुमार केसी के अभिषेक की तैयारी करो।" तब बड़े समारोह के साथ राजकुमार केसी राजा बना और राज्य करने लगा। फिर राजा उद्रायण राजा केसी से विदा हुआ—"देवप्रिय! अब मैं ससार भय से उद्विग्न हो कर सन्यास लेता हूँ।" फिर राजा केसी ने अपने कुटुम्ब के लोग बुलाए और कहा—"राजा उद्रायण की महती महार्घ दीक्षा विधि की आयोजना करो"।

तब राजा उद्रायण पालकीमें बैठ कर बड़े समारोहसे श्रमण (महावीर) के सामने गया और सघ में प्रविष्ट हो गया और वह चौथे छठे, आठवें, दसवें और बारहवें दिन के और अर्धमास और मास के और इसी तरह के अन्य अनशन व्रत करता रहा। इस के अनन्तर उस उद्रायण ने गृह-सन्यास को कई वर्षों में पूरा करके और अपने अनशन व्रत में साठ भोजनों का परित्याग करके वह सिद्धि प्राप्त की जिस के लिए पुरुष नगा रह कर और सर्वस्व त्याग कर, (अन्तत) दु खों से छूट जाता है।

अब आधी रात को अभिजित् को यह विचार आया कि—"मैं उद्रायण का बड़ा लड़का हूँ, प्रभावती का पुत्र हूं, मुझ को अलग कर, इसने केसी को राजसिंहासन पर बिठलाया है और फिर पीछे संघ में प्रविष्ट हो गया है। इस दु:ख से अत्यन्त दु:खित होता हुआ वह वीतमय से निकला और उसने चम्पा में कोणिय का रास्ता लिया, जहाँ उसको विपुल सुखोपभोग उपलब्ध हुए। अब वह युवराज अभिजित् जीवन और मृत्यु विषयक ज्ञान में विश्वास करने वाला श्रमणोपासक था और उसने राजा उदायण के साथ शत्रुता बनाये रक्खी। इसके अनन्तर राजकुमार अभिजित्, कई वर्षों तक श्रमणोपासक की भाँति फिरता रहा और अर्धमासिक अन्तिम तपस्या में तीस भोजनों का परित्याग कर उसने अपने कर्मों का पश्चात्ताप किया और अपने अदृष्ट से राक्षसराज बन गया। उसकी अवधि दस हज़ार है। वह महाविदेह में सिद्धि प्राप्त करेगा।

उद्धरण नं० २०।

अर्धमागधी

उवासगदसाओ के सातवें अध्याय से

(१८०) पोलास पुरे नाम नयरे, सहस्सम्बवणे उज्जाणे जिय सत्तू राया।

(१८१) तत्थ ण पोलासपुरे नयरे सद्दाल पुत्ते नाम कुम्भकारे आजीविओवासए[1] परिवसइ। आजीविय-समयंसि[2] लद्धट्ठे

१—आजीविओवासए, 'आजीविका का अनुयायी (उपासक)'। आजीविक सम्प्रदाय की स्थापना मक्खलि के पुत्र, महावीर के समकालीन, गोसाल ने की थी। गोसाल का सिद्धान्त था 'प्रयत्न या परिश्रम या शक्ति या ऊर्जस्विता या पुरुषार्थ आदि कुछ भी नहीं है, किन्तु सारे पदार्थ अपरिवर्तनीय रूप से नियत हैं'। उवासगद, ६, १६६। (देखो हार्नेले का नोट, २५३)।

२—"सिद्धान्त में", सप्तमी एकवचन § ३१ ४

गढियट्ठे पुच्छियट्ठे विणिच्छियट्ठे अभिगयट्ठे अट्ठि मिंज पेमाणुराग रत्ते य "अयम् आउसो, आजीविअ समए अट्ठे अय परमट्ठे, सेसे अणट्ठे"त्ति आजीविय-समएण अप्पाण भावेमाणे विहरइ।

(१८२) तस्स ण सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एका हिरण्ण कोडी निहाण पउत्ता, एका वड्ढि पउत्ता, एका पवित्थर-पउत्ता, एके वए दस गो साहस्सिएण वएण।

(१८३) तस्स ण सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स अग्गि-मित्ता नाम भारिया होत्था।

(१८४) तस्स ण सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पोलास पुरस्स नयरस्स बहिया पञ्च कुम्भकारावणसया होत्था। तत्थ ण बहवे पुरिसा दिण्ण भइ भत्त वेयणा कल्लाकल्लि बहवे करए य वारए

---

१ मिंज, 'मज्जा', पजाबी मिंझ, मिज्झ, सिंधी मिजु, गुजराती मीज; हिन्दी मींगी (सस्कृत मज्जा)। हौनले ने इसका अनुवाद किया है "उनके प्रति उत्कट प्रेम से निर्भर हो कर जैसा कोई सर्वोत्कृष्ट वस्तु के लिये होता है" अर्थात् जैसा कि उनकी टिप्पणी में है "जैसा कोई हड्डियों की मज्जा के लिये होता है।" किन्तु मज्जा वासना का मौलिक आधार है, उसका विषय नहीं।

२ आउसो 'दीर्घजीवी' सम्बोधन (सस्कृत प्रातिपदिक आयुष्मत्) जिसका प्रयोग आदर के लिये किया गया है। हौनले ने एक और स्थल की टीका का अनुसरण करके अयमाउसो को एक साथ ही लिया है, जिससे अध्यापक अपने शिष्य को सम्बोधन करने में प्रयुक्त करता है।

३ वए 'समूह' (व्रजः)।

४ भइ 'भाड़ा' (भृतिः), वेयण 'मजदूरी, तनख्वाह' (वेतन)। हौनले ने इसका अर्थ किया है "मज़दूरी के बदले भोजन पाते थे।" किन्तु भृत्यन्नम् 'भोजन और मज़दूरी" के साथ इस की तुलना करो। मालूम होता है उन्हें भोजन और मज़दूरी के रूप में वेतन मिलता था। 'कल्लाकल्लिम् (सस्कृत कल्य कल्यम्) दर 'सुबह'। विभक्ति के लिये

य पिढ़डए य घडए य अद्ध घडए य कलसए य अलिञरए
जम्बूलए य उट्टियाओ य करेन्ति, अन्ने य से बहवे पुरि
दिएण भइ भत्त वेयणा कल्लाकल्लिं तेहिं बहूहिं करएहिं य जाव उ
याहि य रायमग्गसि वित्तिं कप्पेमाणा विहरन्ति।

(१८५) तए ण से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अन्नया कयाइ पुव्वा
रएहकाल समयसि जेणेव असोग वणिया तेणेव उवागच्छइ,-
गोसालस्स मङ्खलिपुत्तस्स अन्तियं धम्मपण्णत्तिं उवसपज्जित्ता
विहरइ।

(१८६) तए ण तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासग
एगे देवे अन्तियं पाउब्भवित्थाँ।

(१८७) तए ण से देवे अन्तलिक्ख-पडिवण्णे सखिङ्खिणिय
इ जाव परिहिए सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी
"एहिइ ण, देवाणुप्पिया, कल्लं इह महा माहणे उप्पन्न णाण-दसण
धरे तीय पच्चुपन्न म् अणागय जाणेए अरहा जिणे केवली सव्वण
सव्व दरिसी ते लोक वहिय महिय पूइए, स देव मणुयासुरस्स
लोगस्स अच्चणिज्जे वन्दणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणिज्जे कल्ला

तुलना करो पुव्विम् (=पूर्वाम्)।

१ करक "गडुवा" खास करके विद्यार्थी और तपस्वी जिसका प्रयोग करते
थे", मोनियर विलियम्स। वारक 'एक किसम का बर्तन', पिठरक 'बटलोई'
घटक हिन्दी घड़ा, कलश 'घड़ा'। अलिञ्जर ("पानी रखने का एक छोटा
भाजन" मोनियर विलियम्स), जम्बूलय और उट्टिया 'घड़ों की तीन बहुत बड़ी
किस्में'। होर्नेले।

२ त्ता जब किसी क्रियापद के बाद आता है तो त्वान्त का अर्थ देता है
गच्छइ, त्ता=गच्छइ, गच्छित्ता "वह जाता है, और जाकर।"

३ उवसपज्जइ (उप+सम्+पद्) से कृदन्त रूप।

४ पाउब्भवइ (प्रादुर्+भू) का आत्मने पद लुङ्।

५ तीय-'अतीत', पच्चुप्पन्न 'वर्तमान' (प्रति+उद्+पद्),-म्-सन्धिव्यञ्जन

मङ्गल देवय चेइय जाव पज्जुवासणिज्जे, तऍं-कम्म सम्पय सम्पउत्ते त णं तुम वन्देज्जाहि जाव पज्जुवासेज्जाहि, पाडिहारियेण पीढ-फलग-सिज्जा सथारएण उवनिमन्तेज्जाहि"। दोच्च पि तच्च पि एव वयइ,-त्ता जामेव दिस पाउब्भूए तामेव दिस पडिगए।

महावीर का आगमन सुनकर—

(१६०) तए ण से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे 'एव खलु समणे भगव महावीरे जाव विहरइ, त गच्छामि ण समण भगव महावीर वन्दामि जाव पज्जुवासामि", एव सपेहेइ,-त्ता ण्हाए जाव पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइ जाव

अप्यागय 'अनागत'। पडुप्पन्न के लिये पडुपन्न पाठ है, अर्थात् पडि+उप्पन्न।

१ चेइय 'पवित्र' शब्दार्थ=चैत्य 'पवित्र मन्दिर'। वहिय 'ज्ञानदनिर्भर हृदय से देखा गया' (देशी)।

२ 'आराध्य' (परि+उप+आस्)।

३ तच्च 'पुण्यावह।' टीका में इस का अर्थ तथ्य दिया है और हेमचन्द्र ने भी तथ्य ही दिया है २, २१; किन्तु पालि में तच्च होता है। अन्यथा तत्त्व से। पिशल (§ १८१) का कथन है कि * तात्य से * तत्व बना है। तुलना करो रोमानी तचो=तत्थ्य।

४ प्रातिहारिक "पारिभाषिक जैनशब्द जिसका अभिप्राय ऐसी वस्तु है जो किसी के उपयोग के लिये हमेशा तय्यार रक्खी जाय।" हौर्नेले।

५ इमीसे=माहाराष्ट्री इमीए, इमीअ जैनमाहाराष्ट्री इमीए, इमाए शौरसेनी इमाए।

६ सपेहेइ 'प्रतिबिम्बित करता है (सम्+प्र+ईक्ष्)। क्ख>ख>ह। यह परिवर्तन अर्धमागधी और जैन माहाराष्ट्री दोनों ही में होता है।

७ टीका=प्रायश्चित्त। दूसरी व्याख्या है 'पैर से छुआ गया', छित्त छिवइ (क्षिप्) से बनता है जिसका अर्थ 'छूना' है।

८ टीका—शुद्धात्मा-वैषिकाणि पवित्र शरीर को सजाने योग्य (वस्त्र), अथवा शुद्ध-प्रावेश्यानि 'स्वच्छ और राजदरबार में प्रवेश करने योग्य'।

अप्प महग्घाभरणालंकिय सरीरे मणुस्स वग्गुरा परिगए सांओ गिहाओ पडि णिक्खमइ, त्ता पोलासपुरं नयरं मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ,-त्ता जेणेव सहस्सम्बवणे उज्जाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ,-त्ता तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ त्ता वन्दइ नमसइ त्ता जाव पज्जुवासइ।

महावीर ने सघ को सम्बोधित किया और सद्दालपुत्त का आतिथ्य स्वीकार किया—

(१६५) तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अन्नया कयाइ वायाहयय कोलाल भण्ड अन्तो सालाहिंतो वहिया णिणेइ,-त्ता आयवंसि दलयइ।

(१६६) तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्त आजीविओवासय एव वयासी। "सद्दालपुत्त, एस णं कोलाल-भण्डे कओं?"

(१६७) तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समण भगवं महावीरं एव वयासी। "एस णं भन्ते पुव्विं मट्टिया आसी, तओ पच्छा उदएण निमिज्जइ, त्ता छारेण य करीसेण य एगयओ मीसिज्जइ,-त्ता चक्के आरोहिज्जइ; तओ बहवे करगा य जाव उट्टियाओ य कज्जन्ति"।

---

१ वगुरा 'भीड़' (वागुरा "आयास')।

२ साओ 'स्वय अपने से' (स्व), गिह 'गृह' (इसी प्रकार जैन महाराष्ट्री अधिक प्रचलित गेह)।

३ तिक्खुत्तो 'तिगुना (* त्रिष्कृत्व अथवा त्रि कृत्व)। तुलना करो अर्धमागधी दुक्खुत्तो, दुखुत्तो 'दुगुना।

४ आयाहिण पयाहिण=आदक्षिण प्रदक्षिणम्।

५ आयवंसि 'सूरज की गरमी में (आतपे)। दलयइ टीका=ददाति, और दलइ (ददामि) 'देता है' का साधरण अर्धमागधी रूप।

६ कओ 'किससे' (कुत', अथात् * क-तः), शौरसेनी कदो।

(१७८) तए ण समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी। "सद्दालपुत्ता, एस णं कोलालभण्डे किं उट्ठाणेणं जाव पुरिसक्कारपरक्कमेणं कज्जन्ति, उदाहु अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कारे परक्कमेणं कज्जन्ति ?"

सद्दालपुत्त प्रतिपादन करता है कि ये बिना प्रयत्न के बनाये गये हैं, क्योंकि प्रयत्न का कोई अस्तित्व नहीं है, किन्तु उसके कथन का खण्डन किया जाता है और उसको प्रतीति दिलाई जाती है।

अनुवाद

(१८०) पोलासपुर नामक एक नगर था। उसके निकट सहस्राम्रवण नाम का उद्यान था। जियसत्तू राजा था।

(१८१) यहाँ पोलासपुर नगर में आजीवियों का उपासक सद्दालपुत्त नाम का एक कुम्हार रहता था। आजीविकों के धर्मशास्त्रों की चर्चा सुनकर और उनका ज्ञान प्राप्त करके और उनके अर्थ को पूछ कर उसका निश्चय करके और उसमें पारङ्गत होकर वह उन पर ऐसे उत्कट प्रेम से अनुरक्त होगया जो स्वयं उसके अस्थि मज्जा के अन्दर ओत पोत भरा हुआ था और वह आजीवियों के सिद्धान्त के अनुसार आचरण करता था। वह इसी को सत्य, परम सत्य, समझता था और अन्य सब कुछ असत्य।

(१८२) आजीवियों के उपासक उस सद्दालपुत्त ने एक करोड़ हिरण्य जमा कर रक्खा था, एक करोड़ व्याज पर और एक करोड़ जागीर में लगा रक्खा था और उसके पास दश सहस्र गायों का व्रज था।

(१८३) आजीवियों के उपासक उस सद्दालपुत्त की अग्गिमित्ता नाम की भार्या थी।

---

१ पुरिसक्कार पुरुषाकार 'पुरुषार्थ'। तुलना करो बलक्कार=बलात्कार। साधारण संस्कृत शब्द पुरुषकार, पालि पुरिसकार।

(१८४) आजीवियों के उपासक उस सद्दालपुत्त के पास पोलासपुर के बाहर पाँच सौ कुम्हार की दूकानें थीं यहाँ बहुत से पुरुष अन्न वस्त्रादि के रूप में भृत्ति और वेतन ग्रहण करके रोज़ अनेकों कूजे (करक), भज्झर (वारक), पिठरक (बटलोइया), घड़े, कलश, मटकिया (अलिंजर), जम्बूलय और उट्टिया (माट) बनाते थे, अन्य बहुत से लोग अन्न वस्त्रादिक के रूप में भृति और वेतन ग्रहण करके राजमार्ग पर उन अनेकों कूजों, माटों आदि का धनध करते थे।

(१८५) तब आजीवियों का उपासक वह सद्दालपुत्त मध्याह्न के किसी न किसी समय उस स्थान को जाया करता था जहाँ एक छोटा सा अशोक वन था, वह इस काम को करता था और उस धर्म के अनुसार आचरण करता था जिसको उसने सखालिपुत्त गोसाल के पास से प्राप्त किया था।

(१८६) फिर आजीवियों के उपासक सद्दालपुत्त के निकट एक देव आविर्भूत हुआ।

(१८७) फिर (जैसा कि ऊपर कहा गया है,—"क्षुद्रघटिकाओं से" यहा तक) अन्तरिक्ष में स्थित और आभरणों से अलङ्कृत उस देव ने आजीवियों के उपासक सद्दालपुत्त से इस प्रकार कहा—'ऐ देवानुप्रिय, कल यहाँ महा माहण आयेगा, जो पूर्णज्ञान और अन्तर्दर्शन से युक्त है, जो अतीत, वर्तमान और अनागत को जानता है—जो अर्हद्, जिन और केवली है, जो सब कुछ जानता है और सर्वदर्शी है, जिसको लोग आनन्दनिर्भर हृदय से गद्गद होकर देखते हैं, त्रिलोकवासी जिसकी आराधना और उपासना करते हैं, जो देवताओं, मनुष्यों और असुरों के लिए पूजा स्तुति, आदर, सम्मान और सेवा का भाजन है जैसा कि कोई उत्कृष्ट मंगलमय दिव्य और पवित्र व्यक्ति होता है, जो पुण्यकर्मों की प्रचुरता से सम्पन्न है। तुम्हें उसकी स्तुति करनी चाहिये (और जैसा कि ऊपर

कहा गया है, "सेवा करना" तक) और उसको आवभगत से नियत पीढ़ा, फलक और शय्या देकर निमन्त्रित करना चाहिये।" दूसरी बार और तीसरी बार उसने यह बात कही और ऐसा कह कर वह उसी दिशा को लौट चला जहाँ से वह प्रादुर्भूत हुआ था।

(११०) तब आजीवियों का उपासक वह सद्दालपुत्त इस समाचार को पाकर अपने मन में सोचता है—"अच्छा तो श्रमण भगवान् महावीर यहाँ पधारने वाले हैं; मैं चल कर श्रमण भगवान् महावीर की स्तुति करता हूँ और उनकी सेवा में उपस्थित होता हूँ"। यह सोच कर उसने स्नान किया और प्रायश्चित्त कर्म करके शुद्ध वस्त्र पहिने, और कतिपय महार्घ आभरणों से शरीर को अलङ्कृत कर के और परिचारकों की भीड़ से परिवारित होकर वह अपने घर से बाहर निकला। बाहर निकल कर वह पोलास पुर नगर के ठीक बीचोंबीच होकर गुज़रा। वहाँ से हो कर वह उस स्थान के निकट आया जहाँ सहस्सम्ब-वण उद्यान था, जहाँ भगवान् महावीर थे, और निकट आकर उसने बाईं ओर से दाईं ओर को तीन बार उनकी प्रदक्षिणा की। ऐसा करने के बाद वह भगवान् की आराधना करता है और उनकी सेवा में उपस्थित होता है।

(११५) फिर आजीवियों का उपासक वह सद्दालपुत्त किसी समय अपने हवा में सुखाये हुए मिट्टी के बर्तनों को अपने कारखानों से बाहर लाया और इसके बाद उसने उनको धूप में रक्खा।

(११६) तब श्रमण भगवान् महावीर ने सद्दालपुत्त से इस प्रकार कहा-'सद्दालपुत्त, ये कुम्हालभाण्ड किस चीज़ के बने हैं?"

(११७) तब आजीवियों के उपासक सद्दालपुत्त ने श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार कहा-"ये भाण्डे पहिले मिट्टी थे, और बाद को वह मिट्टी पानी से गूँदी जाती है; और वह भली भांति पोटाश

और गोबर के साथ मिलाई जाती है और फिर उस को चक्र पर रक्खा जाता है और उस से अनेक कूजे आदि बनाये जाते हैं।"

(१९८) फिर श्रमण भगवान् महावीर ने आजीवियों के उपासक सद्दालपुत्त से इस प्रकार कहा—"सद्दालपुत्त, क्या ये कुलाल भाण्ड प्रयत्न और पुरुषार्थ से बने हैं अथवा प्रयत्न और पुरुषार्थ के बिना?"

उद्धरण नं० २१।

अर्धमागधी

जिनचरित्र

(५६) तए ण सिद्धत्थे खत्तिए पच्चूस काल समयंसि कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, त्ता एव वयासी—

(५७) "खिप्पा एव, भो देवाणुप्पिया! अज्ज सविसेस बाहिरिय उवट्ठाण-सालं गन्धोदय सित्त सुइय समज्जिओवलित्तं सुगन्धवर पञ्च-वण्णपुप्फोवयारं कलिय कालागुरु पवर कुन्दुरुक्क तुरुक्क डज्झन्त धूव मघमघन्तगन्धुद्धुयाभिरामं सुगन्धवरगन्धिय गन्ध

---

१ यहाँ और कुछ दूसरे स्थलों पर जेकोबि का पाठ लते है। अन्य हस्त लिखित पुस्तकों में खप् है।

२ देखो पृ० ६३।

३ 'सभाभवन, मण्डप।

४ 'साफ किया गया' (शुच्) 'बुहारा गया' (सम्+मृज्) और 'लेपा गया' (उप+लिप्)।

५ उपचार 'सजावटें, मङ्गल द्वार' (उप+कृ)।

६ अगुरु 'अगर। कुन्दुरुक्क 'लोबान'। तुरुक्क सुगन्धित द्रव्य, धूप'।

पेट्टि भूय करेह कारवेह,करित्ता य कारवित्ता य सीहासण रयावेहं, त्ता म पयम् आणत्तिय खिप्पाम् एव पच्चप्पिणहं"

(४८) तए ण ते कोडुम्बिय पुरिसा सिद्धत्थेण रन्ना एव वुत्ता समाणा, हट्ठतुट्ठ जाव हय हियया, करयल जाव कट्टु "एव सामि"! त्ति आणाए विणएण वयण पडिसुणन्ति, त्ता सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अन्तियाओ पडिनिक्खमन्ति, त्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाण साला तेणेव उवागच्छन्ति, त्ता खिप्पाम् एव सविसेस बाहिरिय उवट्ठाणसाल गन्धोदय सित्त सुइअ जाव सीहासण रयाविन्ति,-त्ता जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छन्ति, त्ता करयल परिग्गहिय दस-नह सिरसा यत्त अन्जलिं कट्टु सिद्धत्थस्स खत्तियस्स त आणत्तिय पच्चप्पिणन्ति।

(४९) तए ण सिद्धत्थे खत्तिए कल्ल पाउ-प्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पल कमल कोमलुम्मिलियम्मि अहपण्डुरे पभाए, रत्तासोग-प्पगास किंसुय सुय मुह गुञ्जद्ध राग सरिसे (बन्धुजीवग पारावय चलण नयण परहुय सुरत्त लोयण जासुयण कुसुम रासि हिंगुलय नियराइरेय रेहन्त सरिसे) कमलायर सण्ड बोहए उट्ठियम्मि सूरे, सह

मधमघत तुलना करो पजाबी मघणा 'जलना', हिन्दी मघन 'देदीप्यमान'। उद्धुय=उद्धूत। धूव='धूप'।

१ वट्टि (वर्ति)।

२ रयावेह 'तय्यार कर दिया है' णिजन्त (रच्)।

३ मध्यम पुरुष बहुवचन पच्चप्पिणह ' लौटता है ' का लोट् रूप, प्रत्यर्पय से नामधातु।

४ कट्टु (कर्तुं मूलत तुमुन्नन्त, क्त्वान्त के अर्थ में प्रयुक्त, कृत्वा)।

५ प्पगास (प्रकाश)। किंसुय (किंशुक)। सुय ' तोता ' (शुक)। गुजद्ध। अन्वय है सिद्धत्थे सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ। सति सप्तमी के साथ रयणीए, पभाए, सूरे, दिणयरे, अधयारे, जीवलोए।

६ बन्धुजीवक 'दुपहरिया'। पारावय 'कबूतर' (पारावत)। परहुय 'कोयल' (परभृत)। जासुयण 'चीनी गुलाब'। हिंगुलय 'लाल पारा'।

रस रस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलन्ते,(अहक्कमेण उइए दिवायरे,तस्स य कर पहरापरद्धम्मि अंधयारे, बालायव कुंकुमेण खचिए व्व जी य-लोए) सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ।

(६०) सा पाय पीढाओ पच्चोरुहइ, सा जेणेव अट्टण साला, तेणेव उवागच्छइ, सा अट्टणसालं अणुपविसइ, सा अणेग वायाम जोग्ग वग्गण-वामद्दण मल्लजुद्ध करणेहिं, सन्ते परिस्सन्ते सय पाग-सहस्स पागेहिं सुगन्ध तिल्ल माइएहिं पीणणिज्जेहिं दीवणिज्जेहिं मयणिज्जेहिं विंहणिज्जेहिं दप्पणिज्जेहिं सव्विंदिय-गाय-पल्हायणिज्जेहिं अब्भ गिए, तिल्ल चम्मसि णिउणेहिं पडिपुन्न पाणि पाय सुउमाल कोमल तलेहिं पुरिसेहिं अब्भङ्गण परिमद्दणुव्वलण करणगुण निम्माएहिं छेएहिं दक्खेहिं पट्ठेहिं कुसलेहिं मेहावीहिं जिय परिस्समेहिं अट्ठि

निकर 'पुञ्ज'। अतिरेक 'आधिक्य'। रेहन्त 'चमकता हुआ'।

७ बोहए 'जगानेवाला' (बोधकः)।

१ अह क्कमेण 'उचित समय पर (यथाक्रमेण)। पहर 'चूमे' (प्रहार)। अपरद्ध 'खदेड़ा गया' (अप+राध्)। बालायव 'बाल रवि'। खचिए, मूल में खचिय है।

२ उतरता है (प्रति+अव+रुह्)।

३ अट्टण साला 'व्यायामशाला', अर्थ प्रसंग से प्रगट होता है। कादम्बरी में व्यायाम-शाला है।

४ वग्गण 'कूदना फांदना'। वामद्दण (वि+आ+मर्दन)। मल्लजुद्ध 'मल्लयुद्ध'।

५ सय पाग—'सौ बार सोधा हुआ' (शत पाक)।

६ अब्भगिए 'अभ्यक्त', मागधी अब्भगिदे। जैनमाहाराष्ट्री अब्भगियो में पुराना ग ज्यों का त्यों विद्यमान है। (सं० अभ्यक्त √अञ्ज्)। प्रीणनीय स्फूर्ति लानेवाला'। बृंहणीय 'पुष्टिकारक'। प्रह्लादनीय 'तरावट लानेवाला'।

७ निम्मात अनुभवी'। उद्वलन 'तानना'।

८ छेक 'चतुर' प्रष्ठ 'अग्रणी'। मेधाविन् 'बुद्धिमान्'।

सुहाए मंससुहाए तया सुहाए रोम सुहाए चउव्विहाए सुह-परिकम्म णाए सवाहणाए सवाहिए समाणे अवगय परिस्समे अट्टण सालाओ पडिणिक्खमइ।

(६१) त्ता जेणेव मज्जण घरे, तेणेव उवागच्छइ, त्ता मज्जण घर अणुपविसइ, त्ता स मुत्त जालाकुलाभिरामे विचित्त मणि रयण कोट्टिम-तैले रमणिज्जे न्हाण मण्डवसि, णाणा मणि रयण भत्ति चित्तसि न्हाण पीढसि सुह निसण्णे पुप्फोदएहि य गन्धोदएहि य उसिणो-दएहि य सुद्धोदएहि य कल्लाण करण पवर मज्जण विहीए मज्जिए, तत्थ कोउय-सएहिं बहु विहेहिं कल्लाणग पवर मज्जणावसाणे पम्हल सुकुमाल गन्ध कासाइय लूहियङ्गे अहय-सुमहग्घ दूस-रयण सुस-वुडे सरस सुरभि गोसीस-चन्दणाणुलित्त गत्ते सुइ माला वन्नग वि लेवणे आविद्ध मणि सुवण्णे कप्पिय हारद्ध हारं तिसरय पालब-पलबमाणे कडि सुत्तय-कय-सोभे पिणिद्ध गेविज्जे अङ्गुलिज्जगल-

---

१ तया 'चर्म' (* त्वचा=त्वक्)।

२ जाल; 'पत्थर की जालीदार खिड़कियाँ'।

३ कोट्टिम 'गच का फर्श' (कुट्टिम)।

४ भत्ति (भक्ति) 'चित्र विचित्र सजावटें'।

५ कोउय 'आनन्द' (कौतुक)।

६ पम्हल 'लम्बे बालों वाला' (पक्ष्मल)। कासाइय 'लाल रंगा हुआ'। लूहिय 'सुखाया हुआ' (लूषित ?)।

७ अहय 'नया' (अहत)। दूस 'पोशाक' (तुलना करो दूष्य, 'तम्बू, कपास')।

८ गोसीस 'गाय का सिर—बहुमूल्य सदल।'

९ वन्नग 'सदल' (वर्णक)।

१० हार 'अठारह लड़ों की माला।' तिसरय 'तिलड़ा'।

११ कडि (कटि)। सुत्तय 'कटिमेखला' (सूत्रक)।

१२ पिणिद्ध 'पहना हुआ' (पिनद्ध)। गेवेय 'कालर'।

लिय-कयाभरणेए वर कडग तुडिय थम्भिय भुए अहिय रूव सस्सिरीए कुण्डल उज्जोवियाणणे मउड दित्त सिरए हारोत्थय-सुकय रइय वच्छे मुद्दिया पिङ्गलंगुलीए पालंब पलंबमाण सुकय पड उत्तरिज्जे नाणा मणि कणग रयण विमल महरिह निउणोविय मिसिमिसिंत विरइय सुसिलिट्ठ विसिट्ठ-लट्ठाविद्ध वीर वलए; किं बहुणा—कप्प रुक्खए चेव अलङ्किय विभूसिए नरिन्दे स-कोरिंट मल्ल दामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण सेय वर चामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं मङ्गल जय सद्द कयालोए अणेग-गणनायग दण्डनायग राईसर तलवर माडम्बिय कोडुम्बिय मंति महामंति गणग-दोवारिय अमच्च-चेड पीढमद्द नगर निगम सेट्ठि सेणावइ सत्थवाह दूय-सन्धिवाल-सद्धिं संपरिवुडे धवल महामेह निग्गए इव गह-गण दिप्पन्त रिक्ख तारा गणाण मज्झे

---

१ कय 'केश' (कच)।

२ कडग 'कगन (कटक)। तुडिय 'चूड़ी' ? (त्रुटिक) तुलना करो पंजाबी तोड़ा।

३ उज्जोविय 'प्रकाशित' (उद्+द्युत्, किन्तु पिशल् ने § २४३ इसकी व्युत्पत्ति √द्यु से बतलाई है)।

४ ओत्थय 'ढका हुआ' (अव+स्तृ), तुलना करो माहाराष्ट्री ओत्थइअ (अव+स्थग्)।

५ ओविय 'सजाया हुआ'। मिसिमिसित 'जाज्वल्यमान', अनुकरणात्मक नामधातु, संस्कृत में मिषमिषायते के रूप में लिया गया है। पिशल् § ५५८।

६ उद्धुव्वमाण 'हिला हुआ' (उद्+धू), धुव्वइ § १३५।

७ व्यक्तियों की इस फ़िहरिस्त की भिन्न भिन्न प्रकार से व्याख्या की जा सकती है। राईसर (राजेश्वर) टीका=युवराज, जेकोबि S B E 'राजा महाराजा'। दण्डनायक 'न्यायाधीश', जेकोबि 'क्षत्रप'। तलवर 'अङ्गरक्षक', जे॰ 'सुभट'। माडम्बिय 'ज़िले का अफ़सर जिसको कतिपय शासनाधिकार होते हैं'। पीठमर्द 'अग्रगम्य, सहचर', जे॰ 'नृत्याचार्य'।

ससि व्व पिय-दंसणे नर वई नरिन्दे नर वसहे नर-सीहे अब्भहिय राय-तेय लच्छीए दिप्पमाणे मज्जण घराओ पडिणिक्खमइ।

(६२) त्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाण-साला, तेणेव उवागच्छइ त्ता सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ।

(६३) त्ता अप्पणो उत्तर पुरत्थिमे दिसी भाए अट्ठ भद्दासणाइं सेय-वत्थ पच्चुत्थुयाइं सिद्धत्थय कय मंगलोवयाराइं रयावेइ,-त्ता अप्पणो अदूर-सामन्ते नाणा मणि रयण मण्डियं अहिय पेच्छणिज्जं महग्घ वर पट्टणुग्गयं सण्ह पट्ट भत्ति-सय चित्त ताणं ईहामिय-उसभ तुरय-नर मगर विहग वालग किंनर रुरु सरभ-चमर-कुञ्जर-वणलय-पउम-लय भत्ति चित्तं अब्भिन्तरियं जवणियं अञ्छावेई,-त्ता नाणा मणि रयण भत्ति चित्तं अत्थरय मिउ मसूरगोत्थयं सेय वत्थ पच्चुत्थुयं सुमउयं अंग सुह फरिसगं विसिट्ठं तिसलाए खत्तियाणीए भद्दासणं रयावेइ,-त्ता कोडुम्बिय पुरिसे सद्दावेइ, त्ता एवं वयासी।

(६४) "खिप्पाम् एव, भो देवाणुप्पिया! अट्ठङ्ग महानिमित्त सुत्तत्थ धारए विविह सत्थ कुसले सुविण लक्खण पाढए सद्दावेह"।

अनुवाद

(५६) तब पौ फटने के समय सिद्धार्थ क्षत्रिय ने अपने कुटुम्ब के नौकर चाकर बुलाये और इस प्रकार भाषण किया—

---

१ पुरत्थ 'पूर्व' (पुरस्तात्)।

२ पच्चुत्थुय-पच्चुत्थुय 'ढका हुआ' (प्रति+अव+स्तृ)।

३ सण्ह (श्लक्ष्ण)। ताण 'तागा' (तान)।

४ ईहामृग 'भेड़िया'। व्याल (क) 'सांप'। लय, लया=लता।

५ अञ्छावेइ 'खींच लिया है'।

६ अत्थरय 'ढकना' (आ+स्तृ)। मसूर (क) 'तकिया'।

७ मउय 'कोमल' (मृदुक)। फरिसग (स्पर्शक)।

(४७) "हे देवताओं के लाडलो, अब आज शीघ्र बाह्य सभा भवन को विशेष प्रकार से सजा कर तय्यार कर दो, (ध्यान रक्खो कि उस पर) गन्धोदक छिड़का जाय, उसे साफ किया, बुहारा, और पोता जाय, मारे पांच रंगों के सुगन्धित और सर्वोत्कृष्ट फूलों से सजाया जाय और काले अगरु, बढ़िया से बढ़िया कुन्दुरुक्क और तुरुष्क की सुगंधित वर्तुलाकार लटाओं से और बढ़िया सुगंधियों से तर-बतर बसी हुई जलती धूप से अत्यधिक मनोहर और सुगन्ध-वर्तिका जैसा बनाया जाय, और यह सब कुछ कर लेने पर मेरे सिंहासन को तय्यार करो, और यह करके मुझे शीघ्र इन आज्ञाओं के पूरा किये जाने की खबर दो।"

(४८) तब राजा सिद्धार्थ से इस प्रकार सम्बोधित किये जाने पर परिवार के सेवकों ने हर्ष निर्भर हृदय से प्रणाम किया और यह कहते हुए नम्रता से राजाज्ञा शिरोधार्य की—"बहुत अच्छा स्वामिन्!" तब वे सिद्धार्थ क्षत्रिय के पास से विदा हुए, और सभा के बाह्य भवन में गये और शीघ्र उन्होंने बाह्य सभा भवन को सुगंधित जल छिड़क कर और मार्जन आदि से सब तरह सजा दिया और सिंहासन को तय्यार किया। यह करके वे उस स्थान को लौटे जहाँ क्षत्रिय सिद्धार्थ था, और फिर इस प्रकार हाथ जोड़ कर कि जिससे दसों नाखून परस्पर मिल जाय उन्होंने अञ्जलि को सिर से लगाया और सिद्धार्थ क्षत्रिय को उस आज्ञा के पूरा होने की खबर दी।

(४९) फिर प्रभात समय जब रात्रि का अंधकार मंद हो रहा था, जब पाण्डुर उषा ने प्रफुल्ल कमलों के कोमल पुष्पों को प्रकट किया, और सूर्य उदित हुआ, रक्ताशोक, कुसुमित किंशुक, तोते की चोंच अथवा गुंजार्ध जैसी अरुणिमा में जो बन्धुजीवक की भाँति, पारावत के नेत्रों और चरणों, कोयल के लोहित नेत्रों, चीनी गुलाब के पुञ्ज या हिंगुल के ढेले, कमलाकर को जगानेवाले

(अंशुमाली) की भाँति देदीप्यमान थी, और सहस्ररश्मि दिवाकर अपने तेज से जल रहा था। जब काल क्रम से दिवाकर उदित हो चुका था और उसने अपने कर प्रहार से अंधकार को भगा दिया था, और जब जीव लोक मानो बाल रवि से कुंकुम निमग्न हो रहा था, —सिद्धार्थ क्षत्रिय अपनी सेज से उठा।

(६०) और (सेज से) उठ कर वह पीढ़े से नीचे उतरा और व्यायामशाला को गया और उसने उसके अन्दर प्रवेश किया। और कूदने फादने, मर्दन और मल्लयुद्ध जैसे अनेक कष्टसाध्य व्यायामों से वह नितान्त परिश्रान्त हो गया, और उस (के शरीर) पर सौ या सहस्र बार सोधे हुए भाँति भाँति के सुगन्धित तेलों का उबटन किया गया, जिससे सारी इन्द्रियाँ और अवयव परिपुष्ट, कमनीय, ऊर्जस्वल, आह्लादित, प्रबल और परिवर्द्धित हो गये। अभ्यञ्जन, परिमर्दन और वह्लन के उत्तम गुणों से भली भाँति परिचित सुशिक्षित, कुशल, श्रेष्ठ, दक्ष, चतुर और अपरिश्रान्त पुरुषों ने अपनी सुकुमार और कोमल हथेलियों और पैर के तलवों से तैलमय चर्म पर उसका उबटन किया। शरीर के इस चतुर्विध सुखकर सवाहन से राजा के अस्थि, चर्म, मांस और केशों के उपकृत हो चुकने और थकावट मिट जाने पर वह सभा भवन से व्यायाम करने निकला।

(६१) और स्नानागार की ओर चल कर उसने उसके अन्दर प्रवेश किया। अनेकों मुक्ता जालों से मनोभिराम, विचित्र मणि रत्नों से खचित फर्शवाले, रमणीक स्नानागार में वह आराम से नहाने के पीढ़े पर बैठा जिसकी चित्रकारी में नाना प्रकार के मणि और रत्न जड़े हुए थे, और फिर उसने कल्याणकारी उत्तम मज्जन विधि से पुष्पोदक, गन्धोदक, उष्णोदक और शुद्धोदक से स्नान किया। सैकड़ों कौतुकों से युक्त इस बहुविध, कल्याणकारी, उत्तम स्नान के समाप्त हो जाने पर उसका शरीर लम्बे रोओं वाले

कोमल, सुरभित और रंगीन तौलिये से पोंछा गया, उसको नई और बढ़िया महार्घ पोशाक पहनाई गई, उसके अंगों पर सरस और सुरभित गोशीर्ष और चन्दन का अनुलेपन किया गया और उन्हें बढ़िया मालाओं और वर्णक से अलङ्कृत किया गया। उसने मणि और सुवर्ण धारण किये अठारह लड़ी, नौ लड़ी, तिलड़ी मालाएँ पहिनीं और एक ऐसी माला पहनी जिस पर प्रलम्ब मणि लटक रहा था और अपने आपको कटि सूत्रक से सुसज्जित किया। उसने एक कण्ठा पहिना और अगूठियाँ और कमनीय कचाभरण धारण किये, और अपनी बाँहों को बढ़िया कड़ों और कगनों से भाराक्रान्त किया। उसकी रूपश्री लोकोत्तर थी। उसका मुख कुण्डलों से और सिर मुकुट से जाज्वल्यमान था। उसका वक्षस्थल मालाओं से आच्छन्न, सुसज्जित और अलङ्कृत था, उसकी उँगलियाँ मुदरियों से स्वर्णमय हो रही थीं। उसका बढ़िया उत्तरीय (चोगा) मुक्ता प्रलम्बों से झूल रहा था। अपनी अपराजित सुभटता के उपलक्ष में उसने जगमगाते हुए, सुश्लिष्ट, मज़बूत, बढ़िया, सुन्दर बाजूबन्द (वलय) पहने हुए थे, जिन्हें निपुण कलाविदों ने विमल और महार्घ मणियों, सुवर्ण और नाना प्रकार के रत्नों से बना कर तय्यार किया था। अधिक क्या कहें, राजा अलङ्कृत और विभूषित कल्प वृक्ष था। उसके ऊपर एक छत्र रक्खा हुआ था जिस पर कोरिंट के फूलों की मालाएँ और हार लटक रहे थे। उसके (सिरके) ऊपर बढ़िया चवर झले जा रहे थे, उसके दर्शन होने पर मगल जय ध्वनि होती थी। अनेक गणनायकों, दण्डनायकों, राजा महाराजाओं, अगरक्षकों, ज़िलों के विशेष अधिकारियों कुटुम्बों के प्रमुख पुरुषों, मन्त्रियों, महामन्त्रियों ज्योतिषियों द्वारपालों, अमात्यों, चाकरों, पीठमर्दों, नागरिकों, महाजनों, सार्थवाहों, सेनापतियों, गोष्ठाग्रणियों, उप्द्रवाहों, सन्देश हरों और सीमान्त रक्षकों से परिवृत होकर जय नरर्षभ, नरसिंह,

नरपति, नरेन्द्र स्नानागार से निकला तो वह ऐसा सुहावना लगता था जैसे ग्रहों और देदीप्यमान नक्षत्रों और तारों की भीड़ में किसी धवल महामेघ के भीतर से चन्द्रमा निकल आया हो।

(६२) (फिर उसने) बाह्य सभा भवन में प्रवेश किया और पूर्व की ओर मुंह करके वह अपने सिंहासन पर बैठा।

(६३) उसने उत्तर पूर्व की ओर आठ भद्रासन बिछाने की आज्ञा दी, जो कपड़े से ढके हुए और मङ्गलमय सरसों से सजे हुए थे। अपने आपसे न बहुत दूर और न बहुत निकट महल के भीतरी भाग की ओर उसने एक यवनिका डलवाई। यह यवनिका नाना प्रकार के रत्नों और मणियों से अलंकृत, अत्यन्त दर्शनीय और महार्घ थी और एक विश्रुत नगर में बन कर तय्यार हुई थी; उसका स्निग्ध पट एक छोर से दूसरे छोर तक सर्वत्र सैकड़ों चित्र विन्यासों से आच्छन्न और भेड़ियों, बैलों, घोड़ों, मनुष्यों, मगरमच्छों, पक्षियों, सर्पों, किन्नरों, मृगों, शरभों, चमरियों, हाथियों, लता गुल्मों और पौधों के चित्रों से अलंकृत था। उसके पीछे उसने क्षत्रियाणी त्रिशला के लिए उत्तम भद्रासन बिछाने की आज्ञा दी, जिस पर तरह तरह के मणि और रत्न जड़े हुए थे और जो एक आवरण और कोमल तकिये से सजा हुआ और बहुत मृदु और हृद्य स्पर्श वाले सफेद वस्त्र से आच्छन्न था। फिर उसने परिवार के नौकरों को बुलाया और इस प्रकार भाषण किया—

(६४) "ऐ देवताओं के लाडलो, शीघ्र स्वप्न-व्याख्याताओं को बुलाओ, जो अष्टाङ्ग महानिमित्त शास्त्र को भली भांति जानते हों और साथ ही विविध शास्त्रों में कुशल हों।"

———

उद्धरण नं० २२

मागधी

शकुन्तला

छठे अङ्क का प्रवेशक

(ततः प्रविशति नागरिकः श्यालः पश्चाद्बद्धं पुरुषमादाय रक्षिणौ च)

रक्षिणौ-हण्डे कुम्भिलआ ! कधेहि, कहिं, तए एशे महालदण भाशुले उक्किण्णणामक्खले लाअकीए अङ्गुलीअए शमाशादिदे ?[1]

पुरुष -(भीतिनाटितकेन) पशीदन्तु भावमिश्शा ! ण हगे ईदिशश्श अकय्यश्श कालके ।[2]

प्रथम -किं णु क्खु शोहणे बम्हणे शि त्ति कदुअ लञ्ञा दे पलिग्गहे दिण्णे ?[3]

पुरुष -शुणुध दाव । हगे क्खु शक्कावदाल वाशी धीवले ।[4]

द्वितीय -हण्डे पाडच्चला ! किं तुम अम्हेहिं वादिं वशदिं च पुच्छिदे ?[5]

---

१ हण्डे, तुलना करो हन्त, हद परे, केवल छोटों के लिये प्रयुक्त होता है। कुम्भीलअ 'चोर', आरम्भ में इसका अर्थ 'नाका' था। लदण=शौरसेनी रदण (महाराष्ट्री रअण) § ४६। भाशुल=भासुर। उक्किण्ण=उत्कीर्ण। अक्खल= अक्षर, वैयाकरणों के अनुसार इसे अरकल अथवा हेमचन्द्र के अनुसार अᳲकल होना चाहिये (ᳲ=जिह्वामूलीय)। लाअकीए 'राजकीय'। पिशल ने सोचा था कि यहाँ पर हमें लाअ-केलके पढ़ना चाहिये। शमाशादिदे (सम्+आ+सद्)।

२ अकय्य (अकार्य) 'अपराध'। पिशल के पाठ में अकज्जस्स है, उनकी अधिकांश हस्तलिखित प्रतियों में अकज्जस्स है जो शौरसेनी है। कालके=कारक।

३ लञ्ञा 'राजा से'।

४ शक्कावदाल, धीवर'।

५ पाडच्चर अथवा पटच्चर 'चोर'। यदि हस्तलिखित प्रतियों की भांति

श्याल –सुअश्च ! कधेदु सव्व कमेण। मा णे पडिबन्धेध।
उभौ–य लाउत्ते आणवेदि। लवेहि, ले लवेहि[1]।
पुरुष –शे हगे याालबडिश प्पहुदीहिं मश्च-बन्धणो वाअहिं कुडुम्ब भलण कलेमि[3]।
श्याल –(विहस्य) विसुद्धो दाणिं दे आजीवो।
पुरुष –भट्टके मा एव भण !

शहये किल ये वि णिन्दिदे न हु शे कम्म विवज्जणीअके
पशुमालि कलेदि कालणा छक्कम्मा विदुले वि शोत्तिए।

श्याल –तदो, तदो ?
पुरुष –अध एक्कदिअश मए लोहिद मश्चके खण्डशो कप्पिदे[5]। याव तश्श उदलब्भन्तले एद महा लदण भाशुलं अगुलीअअ पेस्कामि। पश्चा इध विक्कअत्थ ण दशअन्ते य्येव गहिदे माव

पाठ में जादि है। पिशल ग्रामर § २३६ से प्रगट होता है कि हर हालत में य पढ़ा जाना चाहिये। पुश्चिदे=शौरसेनी पुच्छिदो।

१ कोतवाल की बोलचाल मागधी नहीं है। सूअश्च 'जासूस' (सूचू)।

२ लाउत्ते, लाअउत्ते का संक्षिप्त रूप=शौरसेनी राअउत्तो (राजपुत्र), अथवा अपभ्रंश राअउत्तु; बिहारी राउत (राजदूत) देखो ग्रीयर्सन्, फोनोलौजी।

३ याल 'जाल'। बडिश 'कांटा'। मश्च 'मछली'। कलेमि=शौरसेनी करेमि।

४ शहम (सहज)। विवज्जनीय—मालि='मारयम्'। कालणा=कारणात्—कम्मा—षट् के लिये दीर्घ, विदुले (षट्कर्मों में) 'कुशल'। शोत्तिए=श्रोत्रिय।

५ लोहिद–'रोहु' शौरसेनी रोहिदो, माहाराष्ट्री रोहिओ (?), अपभ्रंश रोहिउ, हिन्दी रोहू। खण्डशो कप्पिदे (कल्प्) 'काटकर टुकड़े टुकड़े किया'। पेस्कामि' हेमचन्द्र और अन्य वैयाकरणों के अनुसार यह शुद्ध रूप है। (पिशल ग्रामर § ३२४।) एक और प्रमाण और ललितविग्रहराज नाटकम् के अनुसार इसे पेस्कामि होना चाहिये। पाठ में पेक्खामि है।

मिश्शेहिं । पत्तिके दाव पदश्श आगमे । अधुणा मालेध कुट्टेध वा।
श्याल -(अगुलीयकमाघ्राय) जाणुअ, मच्छोदर संठिद त्ति णत्थि संदेहो । तथा अअं से विस्सगन्धो । आगमो दाणि एदस्स वि मरिसिदव्वो । ता एध राउअलं जेव गच्छम्हे ।

रक्षिणौ-(पुरुषं प्रति) गच्छ ले गण्ठिछेदआ गच्छ ।

श्याल -सूअअ ! इध गो-उर दुआरे अप्पमत्ता पडिवालेध म जाव राअउलं पविसिअ णिक्कमामि ।

उभौ-पविशदु लाउत्ते शामि प्पशादत्थ ।

श्यालः-तधा । (निष्क्रान्त)

सूचक -जाणुअ । चिलाअदि लाउत्ते ।

जानुक -ण अवशलोवशप्पणीआ क्खु लाआणे होन्ति ।

सूचक -जाणुअ ! स्फुलन्ति मे अग्गहस्ता । (पुरुष निर्दिशति) इमं गण्ठिछेदअं वावादेदुम् ।

पुरुषः-णालिहदि भावे अकालणमालके भोदुं ।

जानुक -(विलोक्य) एशे अम्हाण ईशले पत्ते गेण्हिअ लाअ शा

---

१ विक्कअत्थ 'बिक्री के लिये । मालेध, मालेदि=मारयति का लोट् रूप । कुट्टेध, कुट्टेदि (कुट्टयति) का लोट् रूप ।

२ जाणुअ (जानुक) पुलिस के सिपाही का नाम । विस्स=विस्र 'आम गन्धि'; टीका आमिष 'कच्चा मांस' । विमरिसिदव्वो=विमष्टव्य निर्णय किया जाना चाहिये' ।

३ गण्ठि छेदआ गठकटा' ।

४ चिलाअदि 'बड़ा समय हो गया है (चिरायते) ।

५ 'राजाओं के पास अवसर देख कर जाना होता है (उप+सृप्) ।

६ स्फुलंति स्फुरित हो रहे हैं' । पाठ में फुलंति है किन्तु देखो पिशल § ३११ । इसी प्रकार हस्ता (पाठ हत्था) के लिये § ३१० । वावादेदुं तुमुन्त णिजन्त (वि+आ+पद्) ।

७ ण+अलिहदि (अर्हति) ।

शश (पुरुषं प्रति) शउलाण मुह पेस्काशि, अधवा गिद्धशिआलाणं बलीं भविश्शशि[1]।

श्याल –(प्रविश्य) सिग्घ सिग्घ पद।

पुरुष —हे हदे म्हि (सविषादम्)

श्याल –मुञ्चेध रे मुञ्चेध जालोवजिवण, उववण्णो से किल अगुलीअअस्स आगमो, अम्ह सामिणा जेव मे कधिद।

सूचक –यधा आणवेदि लाउत्ते। यम-वशदिं गदुअ पडिणिउत्ते खु एशे (पुरुष मुक्तबन्धनं करोति)।

पुरुष —(श्याल प्रणम्य) भट्टके तव केलके मम यीविदे। (पादयो पतति)[2]।

श्याल —उत्थेहि, उत्थेहि! एसो भट्टिणा अगुलीअअ मुल्ल सम्मिदो पारिदोसिओ दे पसादीकिदो। ता गेण्ह पद (पुरुष केयूर प्रयच्छति)।

पुरुष —(सहर्ष प्रतिगृह्य) अणुगहिदे म्हि।

जानुक —एशे खु लज्जा तधा णोमे अणुगहिदे य शूलादो ओदालिअ हस्तिस्कन्ध शमालोयिदे।[3]

सूचक —लाउत्ते। पालिदोशिप कधेदि महालिह लदणेण तेण अगुलीअएण शामिणो बहुमदेण होदव्व ति।[4]

---

१ शउल एक प्रकार की मछली (शकुल) यहाँ भिन्न भिन्न पाठ हैं। पिशल के कथनानुसार=स्वउलानाम्।

२ केलके=केरको, -केरो, केर, पर जैसी सम्बन्ध कारक की विभक्तियों का पूर्वरूप। यीविदे 'जीवन'।

३ ओदालिअ (तुलना करो ओदार § ७२)=अवताय। शमालोयिदे णिजन्त क्रान्त (सम्+आ+रुह्)। 'हस्ति-स्कन्धारूढ' से उच्च गौरवमय पद का बोध होता है (मो॰ वि॰)। पाठ में-हस्थि-क्खन्ध है।

४ महालिह=महार्ह।

श्याल —ण तारिस भट्टिणो महारिह रदण त्ति ण परिदोसो। पत्तिक उण—

उभौ—किं णाम ?

श्याल —तक्केमि तस्स दसणेण को वि हिअअ ट्ठिदो जणो भट्टिणा सुमरिदो त्ति, जदो त पेक्खिअ मुहुत्तअ पइदि-गम्भीरो वि पज्जुस्सुअ मणो आसि।

सूचक —तोशिदे दाणि भट्टा लाउत्तेण।

जानुक —ण भणामि इमश्श मश्चली शत्तुणो किदे त्ति। (पुरुप मसूयया पश्यति)[२]।

पुरुप —भट्टका इदो अद्ध तुम्हाण पि शुला मुल्ल भोदु।

जानुक —धीवल ! महत्तले शम्पद मे पिअवअश्शके शवुत्ते ऽशि कादम्बली शक्खिके क्खु पढम अम्हाण शोहिदे इश्शीअदि। ता शुण्डिकागाल येव गश्चम्हे। (निष्क्रान्ता सर्वे)।

अनुवाद

(नगर का कोतवाल दो सिपाही और एक धीवर)

सिपाही—बता रे तस्कर! तू ने यह नाम खुदी हुई महारत्नों से देदीप्यमान अगूठी कहाँ पाई है ?

धीवर—(भय दिखलाता हुआ) दया करो, साहिब। मैं ऐसा अपराधी नहीं हूँ।

---

१ पइदि प्रकृति। पज्जुस्सुअ (पर्युत्सुक) तुलना करो § ४१।

२ मश्चली 'मछली', तुलना करो हिन्दी मछली, सिन्धी मछी, मराठी मासळी जिसकी व्युत्पत्ति मत्स्य=मत्स्य, § २६, से है।

३ महत्तले महत् का तरप् प्रत्ययान्त रूप। कादम्बली, कदम्ब 'मद्य'। शक्खिके 'ज्योनार सुखोपभोग' (सखि)। शोहिदे=सौहृदम्। शुण्डिकागाल 'कलाल की दूकान'।

पहिला सिपाही—तो क्या तू कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण है यह सोचकर राजा ने तुझे (यह अगूठी) दान में दी है ?

धीवर—पहिले मेरी बात सुन लो । मैं शक्रावतार तीर्थ का धीवर हूँ।

दूसरा सिपाही—अरे चरकटे ! क्या हम तेरी जात पाँत पूछते हैं ?

कोतवाल—सूचक ! इसे सारा ब्योरा इच्छापूर्वक कहने दो। बीच में न रोको।

दोनों सिपाही—जैसा कोतवाल जी आज्ञा करते हैं। कह रे, कह।

धीवर—मैं जाल और बडिश से मछली पकड़ कर अपने कुटुम्ब का भरण करता हूँ।

कोतवाल—(हस कर) आजीविका तो तुम्हारी अत्यन्त शुद्ध है।

धीवर—महाराज ! ऐसा न कहें। जो अपना स्वाभाविक कर्म है वह चाहे निन्दित ही क्यों न हो, उसे नहीं छोड़ना चाहिये। श्रोत्रिय लोगों को दयार्द्र होते हुए भी पशुओं के मारने के काम में निष्ठुर होना पड़ता है।

कोतवाल—अच्छा, फिर ?

धीवर—फिर एक दिन मैंने रोहू मछली को काट कर टुकड़े टुकड़े किया। इसी बीच मैंने उसके पेट में यह महारत्नों से देदीप्यमान अगूठी देखी। इसके बाद जब मैं इसे बेचने को दिख ला रहा था, आप लोगों ने मुझे पकड़ लिया। यही इसके मिलने का ब्योरा है। इस समय (जैसा तुम्हारे धर्म में आवे) चाहे मुझे मारो चाहे छोड़दो, (छूटो)।

कोतवाल—(अगूठी को सूंघ कर) जानुक ! इसमें सन्देह नहीं कि यह मछली के उदर में थी। इसलिए इसमें मास की गन्ध है। अब इसकी प्राप्ति के वृत्तान्त पर विचार करना चाहिये। तो चलो

राजदरबार में चलें।

दोनों सिपाही—(धीवर से) चल रे! गठकटे, चल।

कोतवाल—सूचक! जब तक मैं राजदरबार से न लौटूं तब तक तुम सावधान हो कर यहाँ गोपुर द्वार पर प्रतीक्षा करो।

दोनों—महाराज को प्रसन्न करने के लिये राजपुत्र जाय।

कोतवाल—अच्छा। (जाता है)

सूचक—जानुक! राजपुत्र ने (कोतवाल जी ने) देर लगा दी है।

जानुक—उचित अवसर को देख कर ही राजाओं के पास जाना होता है।

सूचक—जानुक! मेरे हाथ खुजा रहे हैं। (धीवर के प्रति इशारा करता हुआ) इस गठकटे के काम तमाम करने के लिए।

धीवर—आप लोगों को मुझे अकारण ही तो नहीं मारना चाहिये।

जानुक—(चारों ओर देख कर) ये हमारे स्वामी राज आज्ञा का पत्र लेकर आते हैं। (धीवर से) अब तू या तो कुत्तों का मुंह देखेगा या गिद्ध और सियारों का शिकार बनेगा।

कोतवाल—(प्रवेश करके) जल्दी जल्दी इसको (आवाज़ धीमी कर लेता है)।

धीवर—(विषाद से) हाय! मरा।

कोतवाल—इस धीवर को छोड़ दो जी, छोड़ दो। स्वय महाराज ने मुझ से कहा है कि यह अगूठी के मिलने का वृत्तान्त ठीक है।

सूचक—राजपुत्र की जैसी आज्ञा। यम के घर पहुच कर यह फिर (जीवलोक को) लौट आया है (धीवर को छोड़ देता है)।

धीवर—(कोतवाल को प्रणाम करता है) महाराज! यह जीवन आप ही का है। (उसके चरणों पर गिरता है)।

कोतवाल—उठो जी उठो ! महाराज ने तुम्हें यह अगूठी के मूल्य के बराबर पारितोषिक देने की कृपा की है, इसे लो । (धीवर को एक कगन देता है) ।

धीवर—(हर्ष से लेकर) मैं अनुगृहीत हूँ ।

जानुक—इस पर तो राजा का इतना अनुग्रह हुआ है कि इसे सूली से उतार कर हाथी की पीठ पर चढ़ा दिया है ।

सूचक—कोतवाल जी ! इस पारितोषिक से जान पड़ता है कि यह बहुमूल्य रत्नों से जड़ी हुई अगूठी राजा को अत्यन्त अभीष्ट होगी ।

कोतवाल-बहुमूल्य रत्नों से जड़ी हुई होने के कारण यह राजा को इतनी आनन्ददायक नहीं । किन्तु बात यह है—

दोनों—क्या बात है ?

कोतवाल-मेरे विचार में उसके दर्शन से राजा को अपने किसी हृदय स्थित जन की सुध आई है जिससे उसको देखकर प्रकृति गम्भीर होने पर भी स्वामी का हृदय क्षणभर के लिये पर्युत्सुकता से भर आया ।

सूचक—तब तो आपने महाराज को खुश कर दिया है ।

जानुक—मैं तो यू कहूगा कि इस मत्स्यशत्रु (धीवर) के लिए ही यह सब किया है (ईर्ष्या से धीवर को देखता है) ।

धीवर—महाराज ! यह लो, यह आधा आपके जलपान के लिए है ।

जानुक—धीवर ! अब तो तू हमारा बड़ा प्यारा मित्र हुआ, अतएव मदिरा पीकर हमारा यह प्रथम सौहार्द मनाया जाना चाहिए । तो कलाल की हाट पर चलो ।

उद्धरण नं० २३

मागधी

स्थावरक (मृच्छ० अङ्क १०)

(ततः प्रविशति प्रासादस्थो बद्धः स्थावरकः)

(स्थावरको घोषणमाकर्ण्य सवैक्लव्यम्) कध अपावे चालुदत्ते वावादीअदि ! हगे णिअलेण शामिणा बन्धिदे । भोदु ! अक्कन्दामि । शुणाध, अय्या शुणाध । अस्ति दाणिं मए पावेण पवहण पलिवत्तेण पुप्फकलण्डअजिण्णुय्याणं वशन्तशेणा णीदा । तदो मम शामिणा 'म मं कामेशि त्ति कदुअ, बाहु पाश बलक्कालेण मालिदा, ण उण एदिणा अय्येण । कध ? विदूलदाए ण को वि शुणादि ! ता किं कलेमि ? अत्ताणअं पाडेमि । (विचिन्त्य) यइ एव्वं कलेमि, तदा अय्य-चालुदत्ते ण वावादीअदि । भोदु । इमादो पाशाद-बालग्ग पदोलिकादो एदिणा जिण्ण गवक्खेण अत्ताणअं णिक्खिवामि । वलं हगे उवलदे, ण उण एशे कुल पुत्त विहगाणं वाशपादवे अय्य चालुदत्ते । एव्वं यइ विवय्यामि लद्धे मए पललोए । (इत्यात्मानं पातयित्वा) ही ही ! ण उवलदे म्हि । भग्गे मे दण्ड णिअले । ता चण्डाल घोशं शमण्णेशामि ।

अपावे 'अपाप' निर्दोष । वावादीअदि, कर्मवाच्य णिजन्त (वि+आ+पद्) । णिअलेण 'बेड़ी से' (निगड) । मालिदा=शौरसेनी मारिदा । —बालग्ग 'कबूतरखाना' (?) (वालाग्र) । पदोलिका (प्रतोली+का) 'फाटकमार्ग' (देखो फ्रोगल J R A S जुलाई १९०६) गवक्ख 'गवाक्ष, गोल खिड़की' या रन्ध्र । उवलदे 'मर गया' (उपरत) । पादवे 'पादप', वृक्ष । विवय्यामि (मूल विवज्जामि) (वि+पद्) । पललोए परलोक' ।

अनुवाद ।

निर्दोष चारुदत्त को क्यों मारते हो ? मुझे स्वामी ने बेड़ी से जकड़ दिया है। अस्तु, मैं चिल्लाता हूँ। सुनो, महानुभावो, सुनो। वस्तुत मैं पापी गाड़ियों की अदला बदली से वसन्तसेना को पुराने पुष्पकरण्डक बाग में लेगया। इसके बाद मेरे स्वामी ने यह सोच कर कि यह मुझे नहीं चाहती बलात्कार से उसको मार डाला, इस आर्य चारुदत्त ने नहीं। क्यों ? दूर होने से कोई भी नहीं सुनता। तो क्या करू ? अपने आप को गिराता हूँ। (सोच कर) यदि ऐसा करू तो आर्य चारुदत्त नहीं मारा जायगा। अस्तु इस महल के कबूतरख़ाने की प्रतोली से इस पुराने झरोखे से अपने आप को गिराता हूँ। मेरा मरना बेहतर है, कुलपुत्र विहङ्गमों के आश्रय वृक्ष इन चारुदत्त का नहीं। इस प्रकार यदि मर-गया तो मुझे परलोक प्राप्त है। (अपने आप को नीचे गिराता है) अहह ! मैं मरा नहीं हूँ। मेरी बेड़िया टूट गई हैं। तो अब जिधर से चाण्डालों का शब्द सुनाई देता है उधर ही चलता हूँ।

उद्धरण नं० २५

मागधी

(मृच्छकटिक अङ्क १०)

शकार (प्रविश्य सहर्षम्)

मंशेण तिक्खामिलिकेण भत्ते
शाकेण शूपेण श मश्चकेण ।
भुत्त मए अत्तणअश्श गेहे
शालिश्श कूलेण गुलोदणेण ।

---

१ भुत्त मए 'मैंने खा लिया है' (भुज्)। तिक्ख 'तीखा=तीक्ष्ण'। (शायद तिःख अथवा तिस्ख बेहतर मागधी होगी)। आमिलिक 'खट्टा' 'इमली' (अम्लिका, तुलना करो हिन्दी इमली)। भत्ते भोजन' 'भात', भक्त, तुलना करो हिन्दी भात। शूप, नियमानुसार शूव होना चाहिये था, तुलना करो सूप।

(फणीं दत्वा) भिण्ण-कश पयप्पाए चण्डालघाआए शलशयोए[1]। यधा अ एशे उक्खालिदे यज्झ डिण्डिमशद्दे पडहाण अ शुणीअदि, तधा तक्केमि, दलिद्-चालुदत्ताके यज्झ ट्ठाण णीअदि त्ति[2]।' ता पेक्खिरशम्। शत्तुविणाशे णाम मम मदन्ते हल्लक्कश्श पलीदोशे होदि[3]। शुद अ मए, ये वि किल शत्तु वावादअन्त पेस्कदि, तश्श अण्णरिश जम्मन्तले अक्खि लोगे ण होदि। मए खु विश-गण्ठि गब्भ पविस्टेण विअ कीडएण किं पि अत्तल मग्गमाणेण उप्पाडिदे ताह दलिद चालुदत्ताह विणाशे। शपद अत्तणकेलिकाए पाशाद बालग्ग पदोलिकाए अहिलुहिअ अत्तणो पलक्कम पेस्कामि[4]। (तथा कृत्वा दृष्ट्वा च) ही, ही, एदाह दलिद्-चालुदत्ताह यज्झ णीअमाणाह एव बुद्धे यणशम्मद्दे, य वेल अम्हालिशे पवले वल मणुश्शे यज्झ णीअदि त वेल केलिशे भवे[5]? (निरीक्ष्य) कध! एशे शे एवरलड्के विअ

अत्तणयशरश, अत्तणो का उत्तरकालीन रूप, § ३६। कूल 'भोजन उबाले हुए चावल।' गुडोदण 'मीठा भात' (हिन्दी गुड़)।

१ शलशयोअ 'स्वर संयोग' 'उच्चारण का आरोह अवरोह'। वाया 'वाक्', कश 'प्याला, कटोरा' (कांस्य, कांसा)।

२ उक्खालिदे 'चढ़ाया, उठाया'। खल् हरकत करना या हिलना'। यज्झ 'वध का', (वध्य)। मागधी का ठीक रूप यय्यह कहा जाता है। य्यह इस संयुक्त रूप से मालूम होता है कि मागधी के य का उच्चारण साधारण य से और ज से भिन्न था। हेमचन्द्र के अनुसार ट्ठाण, स्ताण होना चाहिये।

३ हडक्क साधारण रूप है, हलम, हलुक (पद्य में) भी होता है, *हृदक।

४ मूल पाठ अक्खि (पिशल § २४)। कीडअ 'कीड़ा' (कीटक)। विशगण्ठि? एक पौधा।

५ अहिलुहिअ (अधि+रुह्)। बालग्ग (देखो उदाहरण न० २३)।

६ एवड्डे 'इतना बड़ा' (जैन माहाराष्ट्री एवड्ड एवड्डग) ए एव से नहीं, किन्तु * अयव से (पिशल § १४६, तुलना करो अयव+त्य * अयत्तिय एँत्तिअ)

मणिइदे दक्खिण दिश णीअदि । अध किंणिमित्त मम कोलिकाए पाशाद्-बालग्ग पदोलिकाए शमीवे घोशणा णिवाडिदा, निवालिदा अ ? (विलोक्य) कध ! स्तावलके चेडे वि णत्थि इध । मा णाम तेण इदो गदुअ मन्तभेदे कडे भविश्शदि । ता याव ण अण्णेशामि । (इत्यवतीर्य उपसर्पति)।

चेट —(दृष्ट्वा) भट्टालका, एशे शे आगदे !

चाण्डालौ—ओशलध, देध मग्ग, दाल ढक्केध, होध तुण्हीआ, अविणअ तिक्ख विशाणे दुट्ठवइल्ले इदो एदि ।

इस पात्र की बोली शकारी मानी गई है (देखो अगला उद्धरण)। किन्तु यह स्थल बहुत कुछ उसी प्रकार की मागधी में प्रतीत होता है जैसी अन्य पात्रों से बोली जाती है।

अनुवाद

शकार—(हर्ष से) मैंने अपने घर में भात खाया है, जिस में

वह्व=वृक्ष । यणशमद 'जनसमर्द', लोगों की भीड़ । पवले=शौरसेनी पवरो । केलिशे=कीदृश ।

१ बलद्दके 'बैल' (तुलना करो बलीवर्द)। ? दक्खिण ।

२ णिवडिदा (नि+पत्)। णिवालिदा (नि+वृ णिजन्त)।

३ स्तावलके (मूल पाठ ठावलके) (स्थावरक)।

४ मतभेदे 'मन्त्रभेद', 'विश्वासघात ।' कडे=कृत ।

५ ओशलध (अप् अथवा अव्+सृ)। दाल 'द्वार' शौरसेनी दुआर । ढक्केध 'ढक दो' ढक्केदि 'ढकता है' से, तुलना करो पालि थकेति जो * स्थक् जैसे किसी आर्यधातु से बना है, तुलना करो हिन्दी ढांकना, ढकना । विशाण 'सींग' । बइल्ले 'बैल', । अपभ्रंश बइल्लु, आधुनिक 'बैल' । चाण्डाली कभी कभी पृथक् बोली मानी जाती है और उसे अपभ्रंश की श्रेणी में रक्खा जाता है।

मास था, खटाई चटनी, साग शोरबा, मछली, उबले हुए चावल और मीठा भात सब कुछ था।

(कान देकर) यह जो टूटे हुए कास्य पात्र की खनखन ध्वनि जैसी चाण्डालों की वाणी का स्वरसयोग और वध्यस्थान के डिण्डिमों और पटहों का शब्द सुनाई देता है, इस से मालूम होता है कि दरिद्र चारुदत्त वध्य स्थान को ले जाया जाता है। तो (चल कर) देखू। शत्रु के विनाश से मेरे हृदय को महान् सन्तोष होता है। मैंने सुना है कि जो शत्रु को मारे जाते देखता है उसे अगले जन्म में आँख का रोग नहीं होता। कमल ग्रंथि के अन्दर प्रविष्ट कीड़े की भांति अवकाश ढूढते हुए मैंने इस दरिद्र चारुदत्त के विनाश की आयोजना की है। अब अपने महल की प्रतोलिका पर चढ़कर अपने पराक्रम को देखता हूँ। (चढ़कर देखता है) अहह! इस दरिद्र चारुदत्त को वध्यस्थान में ले जाते हुए इतनी भीड़ हो रही है, जिस समय हम जैसे श्रेष्ठ मनुष्य वध्यस्थान को ले जाये जायेंगे उस समय कितनी भीड होगी? (देख कर) हैं! यह तरुण बैल जैसा सजाया हुआ दक्षिण दिशा को ले जाया जाता है। यह क्या? मेरे महल की प्रतोली के निकट आ कर घोषणा बन्द क्यों हो गयी है? (चारों ओर देखकर) हैं! मेरा दास स्थावरक भी यहाँ नहीं है। कहीं उसने जाकर भेद न खोल दिया हो। तो अब उसे ढूढता हूँ। (नीचे उतर कर आगे बढ़ता है)।

स्थावरक—(देख कर) स्वामी, यह मेरा स्वामी आ पहुँचा है।

चाण्डाल—हटो जी हटो, रास्ता छोडो, द्वार बन्द कर लो, चुप हो जाओ, अविनय धारी पैने सींगों वाला यह दुष्ट बैल इधर आ रहा है।

उद्धरण नं० २५

मागधी

शकारी बोली

मृच्छकटिकम्

(अ) अङ्क १, ५ १८

चियष्ठ, वशतशेणिये, चियष्ठ,

किं याशि, धावशि, पलाअशि पस्खलन्ती

वाशू पशीद ण मलिश्शशि, चियष्ठ दाव।

कामेण दज्झदि हु मे हडके तवश्शी

अंगाललाशि पडिदे विअ मशखडे॥

चियष्ठ=तिष्ठ, पिशल ग्रामर §२५ और §२१७ में चियष्ठ रूप के और साधारणतया च से पहले अल्पप्राण य के लिए पृथ्वीधर टीकाकार को प्रमाण बतलाते हैं, उन्होंने मागधी और व्राचड अपभ्रंश में च और ज से पहिले अल्पप्राण य के समर्थन में मार्कण्डेय को भी उद्धृत किया है—मागधी य्चिल=चिरम्, य्जाआ=जाया। चियष्ठ रूप के समाधान में यह कहा जा सकता है कि अनोखे य्च के स्थान को प्रचलित च्य ने ग्रहण करलिया है। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि कोई इस बात को नहीं जानता कि चियष्ठ का उच्चारण कैसा होना चाहिये। हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि प्राचीन मगध में च् का उच्चारण कैसे होता था, किन्तु यदि यह किसी भी आधुनिक उच्चारण से मिलता जुलता रहा हो अथवा किसी भी ओष्ठ्य स्पर्श-वर्ण से उसका कोई सादृश्य रहा हो तो उसके बाद अल्पप्राण य का सुना जाना अधिक बोधगम्य हो सकता है। सम्भवत य को च में कोई विशेष उच्चारण लाने के

१ इसी प्रकार एस० के० चटर्जी; 'Origin and development of Bengali Language', पृ० २४८ मिपधन के प्रतिकूल 'The Pro

लिए प्रयुक्त किया जाता था, जो स्वयं च से पहिले या पीछे कोई स्पष्ट उच्चारण नहीं था। (इसी प्रकार इङ्गलिश wh में h w के बाद अथवा उस से पूर्व, जैसा कि पुरानी अंगरेज़ी में hw लिखा जाता था, किसी पृथक् ध्वनि का सूचक नहीं किन्तु घोष w का अघोष पर्याय है)। वररुचि के नियम ११—४ (कौवेल, पृ० १७१) का पाठ सन्दिग्ध है, किन्तु मत्यतः यह नियम उच्चारण के ढंग से सम्बन्ध रखता है, उसके साथ किसी पृथक् ध्वनि के संयोजन से नहीं।

पस्खलती (प्र+स्खल्)। वैयाकरणों के अनुसार स्ख् रहना चाहिए। मूल पाठ पक्खलती। मलिश्शशि=शौरसेनी मरिस्ससि। हिन्दी और प० मूल में चिह्न है, जो शौरसेनी है। दज्झदि 'जलता है', (? दय्यहदि)। हडके, गद्य रूप हडक्के है (*हदक) पिशल् § १६४। तवश्शी=तपस्वी। शाशि=राशि। मश=मास।

श्लोक २१ मग मअणम् अणग यम्मह वड्ढअन्ती
णिशि अ शअणके मे णिद्दअ आस्किवन्ती।
पशलशि भअ मीदा पस्खलन्ती स्खलन्ती
मम वशम् अणुयादा लावणश्शेव कुन्ती॥

यम्मह इसी प्रकार माहाराष्ट्री और मागधी श्लोकों में। शौरसेनी मम्मध, (मूल पाठ मम्मह)। णिद्दआ 'निद्रा' आस्किवन्ती=आक्षिपन्ती। क्ष् के स्थान में स्क् हो जाता है। (मूलपाठ आक्खिवन्ति, आ असम्भव है)। पशलशि=प्रसरसि। स्ख् रहता ही है। (मूल पाठ में शौरसेनी रूप अणुजादा है)। लावणश्श 'रावण का'। मागधी और उसकी बोलियों को पढ़ने में र् का ल् में परिवर्तित हो जाना विद्यार्थियों को शायद सबसे अधिक पर्याकुल करनेवाली विशेषता मालूम होगी।

---

nunciation of the Prakrit Palatals', J R A S, 1913 पृ० ३११।

श्लोक २३ एशा णाणकमूशि काम कशिका मच्छाशिका लाशिका
णिण्णाशा कुल-णाशिका अवशिका कामश्श मञ्जूशिका।
एशा वेशवहू शुवेश णिलआ वेशगणा वेशिआ
एशे शे दश णामके मइ कले अय्यावि म णेच्छदि॥

णाणक 'सिक्का'। मूशि=मोषि- चुरानेवाली'। कशिका 'कोड़ा'। मच्छ+अशिका 'मछली खानेवाली'। (मूल पाठ मच्छा)। लाशिका 'नाचने वाली'। णिण्णाशा 'चपटी नाक वाली' (निर्+नास), अर्थात् छुद्रजाति की (कामस्स=शौरसेनी।) एशे प्रथमा बहुवचन पुँल्लिङ्ग 'ये'। शे=शौरसेनी से 'उसका' (स्त्री०)। मइ 'मुझ से'। कल मागधी में कद और (शौरसेनी की भाँति) कद भी प्रयुक्त होते हैं। (मूलपाठ, उत्तर भारतीय हस्तलिखित पुस्तकों जैसा कले)। (मूलपाठ में अज्जे ... शौरसेनी है)। णेच्छदि (न+इच्छति) मूलपाठ में णेच्छदि है।

अनुवाद

१८-खड़ी रह वसन्तसेना, खड़ी रह,

तू गिरती-पड़ती क्यों जा रही है, क्यों दौड़ी और भागी जा रही है? ऐ बाला प्रसन्न हो जा। तू न मरेगी, ज़रा खड़ी रह। मेरा दयनीय हृदय अगारों के ढेर में पड़े हुए मांस के टुकड़े की भाँति सचमुच काम से जलाया जा रहा है।

२१—मेरी कामाग्नि को बढ़ाती हुई और रात को मुझे निष्ठुरता से शय्या पर पटकती हुई तू गिरती पड़ती भीतचकित हुई चली जा रही है। कुन्ती जिस प्रकार रावण की वशवर्तिनी हुई थी वैसे ही तू मेरी वशवर्तिनी हुई चाहती है।

२३—यह धन को हरने वाली, काम की कशा (चाबुक), मछली खाने वाली, नृत्य करने वाली, नकटी, कुलनाशिनी, अवश-वर्तिनी, काम की पिटारी, यह वेश-वधू, सुवेश-निलया, वेशाङ्गना,

लिए प्रयुक्त किया जाता था, जो स्वय च से पहिले या पीछे कोई स्पष्ट उच्चारण नहीं था। (इसी प्रकार इङ्गलिश wh में h w के बाद अथवा उस से पूर्व, जैसा कि पुरानी अंगरेज़ी में hw लिखा जाता था, किसी पृथक् ध्वनि का सूचक नहीं किन्तु घोष w का अघोष पर्याय है)। वररुचि के नियम ११—५ (कौवेल, पृ० १७१) का पाठ सन्दिग्ध है, किन्तु प्रत्यक्षतः यह नियम उच्चारण के ढंग से सम्बन्ध रखता है, उसके साथ किसी पृथक् ध्वनि के संयोजन से नहीं।

पस्पलती (प्र+स्खल्)। वैयाकरणों के अनुसार स्ख् रहना चाहिए। मूल पाठ पक्खलती। मलिश्शशि=शौरसेनी मरिस्ससि। हिन्दी और प० मूल में चिह्न है, जो शौरसेनी है। हक्कदि 'जलता है', (? वम्यहदि)। हडके, गद्य रूप हडके है (*हृदक) पिशल् § १६४। तवश्शी=तपस्वी। लाशि=राशि। मश=मास।

श्लोक २१ मम मअणम् अणग वम्मह वड्ढअन्ती
निशि अ शअणके मे णिद्दअ अस्किवन्ती।
पशलशि भअ मीरा पस्खलन्ती स्खलन्ती
मम यशम् अणुयादा लायणश्शेव पुन्ती॥

वम्मह इसी प्रकार माहाराष्ट्री और मागधी श्लोकों में। शौरसेनी मम्मध, (मूल पाठ मम्मह)। णिद्दआ 'निद्रा' अस्किवन्ती= आक्षिपन्ती। क्ष के स्थान में स्क् हो जाता है। (मूलपाठ आक्खिवन्ति, आ असम्भव है)। पशलशि=प्रसरसि। स्ख् रहता ही है। (मूल पाठ में शौरसेनी रूप अणुजादा है)। लायणश्श 'रायणका'। मागधी और उसकी बोलियों को पढ़ने में र् का ल् में परिवर्तित हो जाना विद्यार्थियों को शायद सबसे अधिक पर्याकुल करनेवाली विशेषता मालूम होगी।

---

nunciation of the Prakrit Palatals', J R A S, 1913 पृ० २११।

श्लोक २३ एशा णाणश्मूशि काम कशिका मश्चाशिका लाशिका
णिण्णाशा कुल-णाशिका अवशिका कामश्श मञ्जूशिका।
एशा वेशवहू शुवेश णिलआ वेशगणा वेशिआ
एशे शे दश णामके मइ कले अय्यावि म णेश्चदि॥

णाणक 'सिक्का'। मूशि=मोषि- चुरानेवाली'। कशिका 'कोड़ा'। मश्च+अशिका 'मछली खानेवाली'। (मूल पाठ मच्छा)। लाशिका 'नाचने वाली'। णिण्णाशा 'चपटी नाक वाली' (निर्+नास), अर्थात् क्षुद्रजाति की (कामरस=शौरसेनी।) एशे प्रथमा बहुवचन पुँल्लिङ्ग 'ये'। शे=शौरसेनी से उसका' (स्त्री०)। मइ 'मुझ से'। कल मागधी में कद और (शौरसेनी की भाँति) कद भी प्रयुक्त होते हैं। (मूलपाठ, उत्तर भारतीय हस्तलिखित पुस्तकों जैसा कले)। (मूलपाठ में अज्जे शौरसेनी है)। णेश्चदि (न+इच्छति) मूलपाठ में णेच्छदि है।

अनुवाद

१८-खड़ी रह वसन्तसेना, खड़ी रह,

तू गिरती पड़ती क्यों जा रही है, क्यों दौड़ी और भागी जा रही है? ऐ बाला प्रसन्न हो जा। तू न मरेगी, ज़रा खड़ी रह। मेरा दयनीय हृदय अगारों के ढेर में पड़े हुए मास के टुकड़े की भाँति सचमुच काम से जलाया जा रहा है।

२१—मेरी कामाग्नि को बढ़ाती हुई और रात को मुझे निष्ठुरता से शय्या पर पटकती हुई तू गिरती पड़ती भीतचकित हुई चली जा रही है। कुन्ती जिस प्रकार रावण की वशवर्तिनी हुई थी वैसे ही तू मेरी वशवर्तिनी हुई चाहती है।

२३—यह धन को हरने वाली, काम की कशा (चाबुक), मछली खाने वाली, नृत्य करने वाली, नकटी, कुलनाशिनी, अवश-वर्तिनी, काम की पिटारी, यह वेश वधू, सुवेश-निलया, वेशाङ्गना,

घश्या (है); ये दस नाम मैंने इसको दिये हैं, अब भी यह मुझे नहीं चाहती।

उद्धरण नं० २६

मागधी]

ललित विग्रह राज-नाटक

(इण्डियन ऐंटिकेरी, वौल्यूम XX, १६११ में कीलहौर्न से सम्पादित)

(अङ्क ४) दो तुरुष्क कैदी अपने देशवासी गुप्तचर को मिलते हैं।

बन्दिनौ—एशे शे शायम्भलीशल शिबिले शिवेशे[1]। एदश्शि अल दिकय्यमाण पय्यन्दे कध (त्ता) उल याणिदव्वे, (पुरतोऽवलोक्य) यधश्श एशे के वि चैले व्व दीशदि ? ता इमादो एदश्श शिबिलश्श शलूव लाउल च याणिश्शम्ह।

चर —अश्चलिय अश्चलिय। अहो विग्गहलाअ णलेशल शिलीए अयय्यन्ददा। (पुरोऽवलोक्य) अम्ह-देशीय व्व केवि पुलिशा पेशिकय्यदि, याणे वन्दीहिं एदेहिं हुविदव्व।

बन्दिनौ-भद्द, अम्हाण तुलुश्काण देशीये व्व तुम पेशिकय्यशि। ता कधेहि चाहमाण शिबिल शलूव लाउल च।

चर -शुणाध ले बन्दिनौ शुणाध। हगे तुलुश्कलायएण शाअम्भलीशलश्श शिबिल पेशिकदु पेशिदे। त च दूशचल, यदो तत्थस्तेहिं इश्ले पुश्च-दे वि णि(लिश्क)न्दे वि अ पलकीये त्ति याणिय्यदि[6],

---

[1] शाकम्भरीश्वर—शिबिल=शिबिर।

[2] अवलोक्यमानापर्यन्ते। याणिद-व=शौरसेनी जाणिदव्व।

[3] चले 'जासूस' (चर)।

[4] शिलालेख में शलूव (स्वरूपम्) है।

[5] 'असीमता' (अपर्यन्तता)। शिलीया 'यशों का'।

[6] इश्ले=शिदरो, पुश्च-दे=पुच्छन्तो। याणिय्यदि याणीअदि होना चाहिए। णिलिश्क-दे=शौरसेनी णिरिक्खन्तो (निर्+ईक्ष्)।

तधावि मए किंपि किंपि पच्चक्खीकद[1]।

वन्दिनी—अश्चलिअं अश्चलिअं ! कध भद, तत्थ उवस्तिदा चदुलिदे अणुअ पि तए लशिकद[2]।

चर —शुणाध ले वन्दिणो यधा मए त शिविल णिलुविद। ह खु शिलि शोमेशलदेव पेश्किदु वञ्चन्दश्श शश्तश्श मिलिदे, मिलि अ एत्थ पविशिऊण भिश्क पशितदु लग्गे[3]। तदो य य याणिद त तुम्हाण यहस्त[4] कधीयदु। मश्रवालि णिज्झल कलाल कडस्त लाण कलि-दाण दाव शहश्श[5]। तुलङ्गाण उण लश्क। णलाणा उ युज्झ-श्कमाण दह लश्काइ ति[6]। किं बहुणा यश्पिदेण? तश्श कड अश्श पाश स्तिदे शाअले वि शुश्के भोदि[7]। (बाहुम् उत्क्षिप्य) एद त लाउल[8] (इति दर्शयति)।

वन्दिनी—शाहु ले चला शाहु !

चरः—अले ले वन्दिणो चिल खु मे णिअ स्ताणादो णिश्शलिद श्श। ता हगे वञ्झामि[9]।

---

१ प्रत्यक्षीकृतम्, किन्तु तुलना करो नीचे भिश्क लशिकद।

२ चदुलिदे (?)=*चतुरिते चतुर से, 'अपनी चतुराई में'। लशिकद=शौर सेनी लक्खिद।

३ सोमेश्वरदेव शायद किसी राजकुमार का नाम है। पविशिऊण माहाराष्ट्री, जैन-महाराष्ट्री या अर्धमागधी प्रत्यय। पशितदु=प्रार्थयितुम्।

४ यथार्थम्। नियमानुसार यधस्त होना चाहिये।

५ मद वारि निर्झर। णिज्झर माहाराष्ट्री है जो मागधी में णिय्यूहल होना चाहिये।

६ युज्झ-युद्ध इस बोली के प्रतिकूल है। दश के लिए दह पिशल के अनुसार अशुद्ध है।

७ कडअ 'दल' (कटक)। शाअले 'सागर'।

८ णिश्शलिद णिश्शलदि (नि+सृ) का क्रान्त रूप।

९ 'भटकना'। *भ्रशामि, क्र्यादिगण।

वन्दिनी—गया ले चला गया।

[इति चरो निष्क्रान्त]

वन्दिनी—[पुरतो गत्वावलोक्य] त यिद लाउल-दुवाल, ता इघ स्तिदा एव यिग्र-साग्र पिहाव पयाशेम्ह। (पुनरवलोक्य सानन्दम्) पशे शे शाग्रम्भलीशले अस्ताए स्तिदे पुलदो दीसदि।

इस शिलालेख की मागधी इस कारण रोचक है कि इस में अन्य किसी भी हस्तलिखित पुस्तक की अपेक्षा हेमचन्द्र के नियमों का अनुसरण अधिक घनिष्ठता से किया गया है। चूँकि इस का रचियता सोमदेव हेमचन्द्र का समकालीन था, अतएव कहा गया है कि वह इस वैयाकरण अथवा कम से कम उसके व्याकरण से परिचित रहा होगा। स्वय शिलालेख में कुछ अशुद्धिया ठीक की गई हैं, फिर भी कुछ ऐसे रूप रह गये हैं जो हेमचन्द्र के अनुसार शुद्ध नहीं हैं, उदाहरण के लिए—यिज्झल, युज्झ, यहस्त, पयिशि ऊए। यह मानने का कोई कारण नहीं है कि रङ्गमञ्च पर बारहवीं शताब्दी तक मागधी को उसके शुद्ध रूप में सुरक्षित रक्खा गया था और सम्भवत *वैयाकरणों के मागधी विषयक परम्परागत नियमों* को निभाने का यह असाधारण प्रयास तुर्की क़ैदियों और गुप्तचरों की भाषा पर बहुत कुछ विदेशीयता का रग चढ़ाने के लिए किया गया है। यह एक अनोखी घटना है कि मागधी का सबसे अधिक अर्वाचीन लिपिबद्ध अश रूप में अन्य उपलब्ध नमूनों की अपेक्षा सब से अधिक प्राचीन है।

उद्धरण नं० २७।

'आवन्ती'

और दाक्षिणात्या

वीरक और चन्दनक (मृच्छकटिक अङ्क ६)

वीरक —अरे रे अरे जअ जअमाण-चन्दणअ मङ्गल-फुल्लभद्द प्पमुहा—

किं अच्छध वीसद्धा जो सो गोवाल दारओ बद्धो,

भेत्तूण सम वच्चइ णरवइ हिअअं अ बन्धणं चावि ॥

अले, पुरत्थिमे पदोली दुआरे चिट्ठ तुम। तुम पि पच्छिमे, तुम पि दक्खिणे, तुम पि उत्तरे। जो वि एसो पाआर खण्डो, एदं अहिरुहिअ चन्दणएण समं गदुअ अवलोएमि। एहि चन्दणअ, एहि। इदो दाव।[1]

चन्दनक —अरे रे वीरअ विसल्ल भीमगअ दण्डकालअ दण्ड सुर-प्पमुहा,

आअच्छध वीसद्धा तुरिअं जत्तेह लहु करेज्जाह

लच्छी जेण ण रण्णो पहवइ गोत्तन्तरं गन्तुं ॥[2]

अवि अ,

उज्जाणेसु सहासु अ मग्गे णअरीअ आवणे घोसे।

तं तं जोहह तुरिअं सङ्का वा जाअए जत्थ ॥[3]

---

१ शौरसेनी अच्छध। माहाराष्ट्री भेत्तूण, वच्चइ। किन्तु ये पिछले शब्द श्लोक में मिलते हैं; नीचे गदुअ शौरसेनी प्रकार का है। अले मागधी का अंश प्रतीत होता है जो यहाँ असाम्प्रत है।

२ विसल्ल=वि शल्य।

३ तुरिअं शौरसेनी तुरिदं। जत्तेह=शौरसेनी जत्तेध (यतध्वम्)। करेज्जाह आर्षी०, पहवइ, सब रूप में मागधी हैं। णअरीअ सप्तमी एकव० ईअ जिसके अन्त में हो ऐसा कर्तृभिन्न स्त्रीलिङ्ग एकवचन माहाराष्ट्री श्लोकों में साधारण है।

रे रे वीरअ किं किं दरिसेसि भणादि दाव वीसद्धं
भेत्तूण अ बन्धणअं को सो गोवाल-दारअं हरदि ॥[1]
कस्सट्ठमो दिणअरो, कस्स चउत्थो अ वट्टए चन्दो,
छट्ठो अ भग्गव गहो, भूमिसुओ पञ्चमो कस्स ?[2]
भण कस्स जम्म छट्ठो जीवो णवमो तहेअ सूरसुओ
जीअन्ते चन्दणए को सो गोवाल-दारअं हरदि ?[3]
वीरक —भड चन्दणअ !
अवहरदि कोवि तुरिअं, चन्दणअ, सवामि तुज्झ हिअएण
जह अद्धुइद दिणअरे गोवालअ-दारओ खुडिदो ॥[4]
[चेटः—जाध गोणा, जाध ।][5]
चन्दनक —अरे रे, पेक्ख पेक्ख ।
ओहारिओ पवहणो वच्चइ मज्झेण राअ मग्गस्स

जोहद (योजयत, अन्वेषयत) ? (भण॰) जोएदि 'देखना है' का भविष्यत् । (खु) या √खुड् 'तुड़ना'। जावए=जैन शौरसेनी जावदे । जध जत्थ=यत्र का सम्बन्ध द्योतक। अन्य बोलियों में साधारणतया 'जहिं' प्रयुक्त होता है।

१ दरिसेसि "तू देखता है"।

२ चउत्थो 'चौथा', शौरसेनी चदुत्थो। छट्ठो 'छठा' (तुलना करो हिन्दी छठ)। गहो 'गाहो' 'ग्रह' के लिए। भग्गव 'भृगु की पुत्री का'। भूमिसुओ 'भूमिसुत'=मंगल।

३ तहेअ=तथैव। सूरसुओ 'सूर्य का पुत्र'=शनैश्चर।

४ सवामि 'मैं सौगंद खाता हूँ'। अद्धुइद 'अर्द्ध उदित' शौरसेनी उदिद; माहाराष्ट्री उइअ (? उदिअ पढ़ा गया)। खुडिदो 'हटाया गया' (खण्डित)? खुड् धातु से। यह शब्द शौरसेनी खुडिद 'टूटा हुआ, तोड़ा गया'=पुरुष-स्थानीय खुडित से भिन्न है। (पिशल् § ५६८)

५ चेट मागधी बोलता है। गोणो 'बैल' अर्धमागधी, मागधी में प्रचलित पुंलिङ्ग रूप है। व्युत्पत्ति के लिए पिशल् ने *गवन या* गूर्ण को प्रस्तुत किया है। पहिला अधिक सम्भव प्रतीत होता है।

एदं दाव विआरह कस्स कहिं पवासिओ पवहणो त्ति ॥[1]

वीरक —अरे पवहण वाहआ ! मा दाव पद पवहण वाहेहि । कस्स केरक पद पवहण ? को वा इध आरूढो ? कहिं वा वज्जइ ?

[चेट —एशे क्खु पवहणे अय्य-चालुदत्ताह केलके । इध अय्यआ वशतशेणा आलुढा । पुस्प कलण्डअ यिरणुय्याण कीलिदु चालुदत्तश्श णीअदि[2] ।]

वीरक (चन्दनकमुपसृत्य)—एसो पवहण वाहओ भणादि ' अज्जचारुदत्तस्स पवहण, वसन्तसेणा आरूढा पुप्फकरण्डअ जिण्णुज्जाण णीअदि त्ति[3] ।"

च०—ता गच्छदु ।

वी०—अणवलोइदो ज्जेव ?

चं०—अध इ ?

वी०—कस्स पच्चपण ?

च०—अज्ज-चारुदत्तस्स ।

वी०—को अज्ज चारुदत्तो ? का वसन्तसेणा, जेण अणवलोइद वज्जइ ?

---

१ ओहारिअ 'ढकी हुई' (अप+हृ) । पवहण 'गाड़ी' (प्र+वह्) । वच 'जाती है' (तुलना करो जैन माहाराष्ट्री पृ० १३९, नो० ४) । विआरह 'निर्णय करो' (वि+चर्) । पवासिओ 'प्रस्थित' (प्र+वस्=प्रोषित) ।

२ हस्तलिखित पुस्तकों और मुद्रित सस्करणों में मागधी य य्य के स्थान में ज और ज्ज आये हैं । मागधी केलके=शा० केरको । पुस्प (हेमचन्द्र के अनुसार), हस्तलिखित पुस्तकों में भिन्न भिन्न पाठ हैं । साधारण पाठ पुप्फ । यिरणुयाण 'जीर्ण उद्यान' । यहाँ हमें पास पास ही दो मागधी सम्बन्ध कारक मिलते हैं ।

३ इस अनुमान में कोई युक्ति नहीं है कि वीरक चेट की बोली का विडम्बनात्मक अनुकरण करता है, विशेष कर के जब वह उसके ठीक शब्दों को नहीं दुहराता; स्वभावत वह अपनी ही साधारण भाषा में चन्दनक को वृत्तान्त कह सुनाता है ।

च०—अरे, अज्ञ-चारुदत्त ण जाणासि, ण वा वसन्तसेणिअं ! जइ अज्ञ-चारुदत्तं वसन्तसेणिअं वा ण जाणासि, ता गअणे जोण्हा सहिदं चन्दं ण जाणासि[1]।

को ण गुणारविन्द शील मिअङ्कं जणो ण जाणादि ?
आवण्ण दुक्ख मोक्खं चउ साअर सारअं रअणं।
दो जेव पूअणीआ इह णअरीए तिलअ भूदा अ,
अज्ञा वसन्तसेणा, धम्म णिही चारुदत्तो अ[2] ॥

टिप्पणियाँ—पृथ्वीधर ने दोनों पात्रों के मुख से आवन्ती कह लवाई है, जिस के विषय में उसने केवल यह अल्प ज्ञान प्रदान किया है कि उसमें दन्त्य स और र होते हैं और लोकोक्तियों की प्रचुरता होती है। मार्कण्डेय ने उसे शौरसेनी और महाराष्ट्री का मिश्रण बतलाया है। यह मालूम होती है उस बोली की विशेषता जैसी कि वह हस्तलिखित पुस्तकों में उपलब्ध होती है। तथापि चन्दनक अपने आप को दाक्षिणात्य बतलाता है—'वअं दक्खिणत्ता अव्वत्त भासिणो'—हम दक्षिणी लोग अस्पष्ट बोलते हैं। अत एव पिशल ने यह सम्भव नहीं समझा कि चन्दनक आवन्ती बोलता हो, किन्तु अधिक सम्भावना इस बात की है कि वह दाक्षिणात्या बोलता था (भरत १७, ४८। साहित्यदर्पण, पृ० १७३ ५)। मालूम होता कि यह आवन्ती से बहुत भिन्न नहीं थी, और दोनों ही प्राय शौरसेनी से सम्बद्ध थीं। फिर भी 'वअं दक्खिणत्ता' शौरसेनी में 'अम्हे दक्खिणत्ता' होगा।

अनुवाद

वीरक—अरे हो रे ! जय, जयमान, चन्दनक, मगल, पुष्पभद्र आदि, विश्रब्ध क्या बैठे हो ? यह जो अहीर का लड़का बधा

---

1 जोण्हा 'ज्योत्स्ना चाँदनी'।

2 चउ साअर सार 'चारों समुद्रों का सार'। णिही 'निधि'।

हुआ था वह (अपने) बन्धन और राजा के हृदय (दोनों) को एक साथ ही तोड़ कर चला जा रहा है।

अरे तू पूर्व के प्रतोली द्वार पर खड़ा हो, तू भी पश्चिम (के द्वार) पर, तू दक्षिण के और तू उत्तर के। यह जो प्राकार-खण्ड है इस पर चढ़ कर मैं चन्दनक के साथ चल कर देखता हूँ। आओ चन्दनक, आओ। ज़रा इधर आओ।

चन्दनक—अरे हो रे ! वीरक, विशल्य, भीमाङ्गद, दण्डकाल, दण्डशूर, आदि,

विश्वस्त होकर आओ, शीघ्र यत्न करो, फुर्ती करो, जिससे राज्य लक्ष्मी किसी अन्य वश में न जा सके।

और

उद्यानों में, सभाओं के अन्दर, मार्ग में, नगर में, बाज़ार में, घोसियों की झोंपड़ियों में, शीघ्र उन सब की तलाशी लो जिन पर शङ्का हो।

रे वीरक, तू क्या देखता है, विश्रब्धता से बन्धन तोड़ कर कौन अहीर के लड़के को लिए जा रहा है ?

आठवा सूर्य किसका है, किस के चौथे चन्द्रमा है, छठा शुक्र और पाचवा मङ्गल किसके पड़ा है ?

कह, जन्म से पाचवा बृहस्पति किसका है और नवा शनैश्चर किसका है ? चन्दनक के जीते जी कौन है जो अहीर के लड़के को भगा कर लिये जाता है ?

वीरक—भट चन्दनक,

चन्दनक तेरे हृदय की सौगन्ध, कोई उसको जल्दी जल्दी भगा कर लिये जाता है, क्योंकि सूर्य के आधा उदय होने पर अहीर का लड़का भाग चला।

[चेट—चलो रे बैलो, चलो।]

चन्दनक—अरे, देखो देखो।

च०—अरे, अज्ज-चारुदत्त ण जाणासि, ण वा वसतसेणिअ! जइ अज्ज-चारुदत्त वसतसेणिअ वा ण जाणासि, ता गअणे जोण्हा सहिद च द ण जाणासि[1]।

को त गुणारविन्द शील मिअक जणो ण जाणादि?
आवण्ण दुक्ख मोर्क्ख चउ साअर सारअ रअण।
दो जेव पूअणीआ इह णअरीए तिलअ भूदा अ,
अज्जा वसतसेणा, धम्म णिही चारुदत्तो अ[2]॥

टिप्पणिया—पृथ्वीधर ने दोनों पात्रों के मुख से आवन्ती कहलवाई है, जिस के विषय में उसने केवल यह अल्प ज्ञान प्रदान किया है कि उसमें दन्त्य स और र होते हैं और लोकोक्तियों की प्रचुरता होती है। मार्कण्डेय ने उसे शौरसेनी और माहाराष्ट्री का मिश्रण बतलाया है। यह मालूम होती है उस बोली की विशेषता जैसी कि वह हस्तलिखित पुस्तकों में उपलब्ध होती है। तथापि चन्दनक अपने आप को दाक्षिणात्य बतलाता है—'वअ दक्खिण त्था अव्वत्त भासिणो'—हम दक्षिणी लोग अस्पष्ट बोलते हैं। अत एव पिशल ने यह सम्भव नहीं समझा कि चन्दनक आवन्ती बोलता हो, किन्तु अधिक सम्भावना इस बात की है कि वह दाक्षिणात्या बोलता था (भरत १७, ४८। साहित्यदर्पण, पृ० १७३ ५)। मालूम होगा कि यह आवन्ती से बहुत भिन्न नहीं थी, और दोनों ही प्राय शौरसेनी से सम्बद्ध थीं। फिर भी 'वअ दक्खिणत्था' शौरसेनी में 'अम्हे दक्खिणत्था' होगा।

अनुवाद

वीरक—अरे हो रे! जय, जयमान, चन्दनक, मगल, पुष्पभद्र आदि, विश्रब्ध क्या बैठे हो? वह जो अहीर का लड़का बधा

[1] जोण्हा 'ज्योत्स्ना चांदनी'।
[2] चउ साअर सार 'चारों समुद्रों का सार। णिही 'निधि'।

हुआ था यह (अपने) बन्धन और राजा के हृदय (दोनों) को एक साथ ही तोड़ कर चला जा रहा है।

अरे तू पूर्व के प्रतोली द्वार पर खड़ा हो, तू भी पश्चिम (के द्वार) पर, तू दक्षिण के और तू उत्तर के। यह जो प्राकार-खण्ड है इस पर चढ़ कर मैं चन्दनक के साथ चल कर देखता हूँ। आओ चन्दनक, आओ। ज़रा इधर आओ।

चन्दनक—अरे हो रे ! वीरक, विशल्य, भीमाङ्गद, दण्डकाल, दण्डशूर, आदि,

विश्वस्त होकर आओ, शीघ्र यत्न करो, फुर्ती करो, जिससे राज्य लक्ष्मी किसी अन्य वश में न जा सके।

और

उद्यानों में, सभाओं के अन्दर, मार्ग में, नगर में, बाज़ार में, घोसियों की झोंपड़ियों में, शीघ्र उन सब की तलाशी लो जिन पर शङ्का हो।

रे वीरक, तू क्या देखता है, विश्वस्तता से बन्धन तोड़ कर कौन अहीर के लड़के को लिए जा रहा है ?

आठवा सूर्य किसका है, किस के चौथे चन्द्रमा है, छठा शुक्र और पाचवा मङ्गल किसके पडा है ?

कह, जन्म से पाचवा बृहस्पति किसका है और नवा शनैश्चर किसका है ? चन्दनक के जीते जी कौन है जो अहीर के लड़के को भगा कर लिये जाता है ?

वीरक—भट चन्दनक,

चन्दनक तेरे हृदय की सौगन्ध, कोई उसको जल्दी जल्दी भगा कर लिये जाता है, क्योंकि सूर्य के आधा उदय होने पर अहीर का लड़का भाग चला।

[चेट—चलो रे बैलो, चलो।]

चन्दनक—अरे, देखो देखो।

राजमार्ग के बीच ढकी हुई बहेली जा रही है। ज़रा दर विचार कर लो कि यह बहेली किसकी है और किधर प्रस्थान कर रही है।

वीरक—अरे गाड़ीवान। ज़रा इस गाड़ी को रोक ले (न चला)। यह गाड़ी किसकी है ? इस पर कौन सवार है ? और कहाँ जा रहा है ?

[चेट-यह गाड़ी आर्य चारुदत्त की है। इस पर आर्या वसन्तसेना सवार हैं। पुष्पकरण्डक के जीर्णोद्यान में विहार करने को चारुदत्त जी के पास ले जाई जाती हैं।]

वीरक—(चन्दनक के पास जा कर) यह गाड़ीवाला कहता है, आर्य चारुदत्त की गाड़ी है, वसन्तसेना सवार है और पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान को ले जाई जाती है।

च०—तो जावे।

वी०—बिना देखे ही ?

च०—और क्या ?

वी०—किसके प्रत्यय से ?

च०—आर्य चारुदत्त के।

वी०—कौन आर्य चारुदत्त ? अथवा कौन वसन्तसेना, जो बिना देखे चली जाय ?

च०—अरे, आर्य चारुदत्त को नहीं जानता, और न वसन्तसेना को ! यदि आर्य चारुदत्त और वसन्तसेना को नहीं जानता तो गगन में ज्योत्स्ना-युक्त चन्द्र को नहीं जानता।

कौन मनुष्य उस गुणारविन्द शील मृगाङ्क को नहीं जानता जो विपद्ग्रस्तों के दुःखों को दूर करनेवाला और चारों समुद्रों का सारभूत रत्न है। इस नगर में दो ही पूजनीय और श्रेष्ठ (तिलकभूत) हैं, आर्या वसन्तसेना और धर्मनिधि चारुदत्त।

उद्धरण नं० २८

जैन शौरसेनी

प्रवचनसार

I (६६) देव जदि-गुरु पूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।
उववासादिसु रत्तो सुहोवओगप्पगो अप्पा ॥
(७०) जुत्तो सुहेण आदा तिरियो वा माणुसो य देवो वा।
भूदो तावदकाल लहदि सुह इन्दिय विविह ॥
(७४) जदि सन्ति हि पुण्णाणि य परिणाम-समुब्भवाणि विविहाणि
जणयन्ति विसय तण्ह जीवाण देवदन्ताण ॥
(७५) ते पुण उदिण्णतण्हा दुहिदा तण्हाहिं विसयसोक्खाणि।
इच्छन्ति अणुहवन्ति य आमरण दुक्खसन्तत्ता ॥
III (१३) चरदि णिबद्धो णिच्च समणो णाणम्मि दसणमुहम्मि।
पयदो मूलगुणेसु य अजो सो पडिपुण्ण सामन्नो ॥
(१८) हवदि व ण हवदि बन्धो मदे हि (म्) जीवेध कायचेट्ठमि।
बन्धो धुव उवधीदो इदि सवणा छड्डिया सव्वम् ॥
(१६) ण हि णिरवेक्खो चाऊ ण हवदि भिक्खुस्स आसय विसुद्धी।
अविसुद्धस्स य चित्ते कह णु कम्म क्खयो विहिऊ ॥

मूर्धन्य ण शब्दों के आरम्भ में प्रयुक्त किया गया है जब कि अर्धमागधी जैनमाहाराष्ट्री हस्तलिखित पुस्तकों में दन्त्य न को बेहतर समझा गया है। अन्य जैन हस्तलिखित पुस्तकों की भाँति यहाँ भी य अक्षर प्रयुक्त किया गया है।

इस प्राकृत में ऐसे शब्द और रूप मिलते हैं जो साधारण शौर-सेनी में बिलकुल नहीं मिलते—किन्तु माहाराष्ट्री या अर्धमागधी में पाये जाते हैं। शायद शौरसेनी के कुछ पद, जिनको हेमचन्द्र ने स्वीकार किया है, किन्तु जो नाटकों में कहीं नहीं मिलते, दिगम्बर पुस्तकों से लिये गये हैं। (पिशल् § २१)

(६६) येव। सम्पादक येव को ठीक समझते हैं। संस्कृत पाठ चैव। मालूम होता है प्रस्तुत हस्तलिखित प्रति में य और व के प्रयोग में किसी स्थिर नियम का पालन नहीं किया गया है। दाणम्मि सप्तमी, जैसा कि माहाराष्ट्री में भी होता है। सुहोवओग-प्पओो=शुभोपयोग्यात्मकः।

(७०) आदा=आत्मा, अर्थात् * आता, तुलना करो अर्धमागधी आया; जैनमाहाराष्ट्री अत्ता। तिरियो 'पशु' (तिर्यक्)।

(७४) देवदातानाम्।

(७५) तह्य=तस्स। यह केवल वर्णविचारविषयक विशेषता है, इसी प्रकार क्ख के स्थान में ख्क लिखना भी एक विशेषता है।

III (१३) णाणम्मि 'ज्ञान में'।

(१८) उवधीदो उवधि (उपधि) का पञ्चम्यन्त रूप। इदि=इति। सवण=श्रमण। छड्डिय को छड्डिद होना चाहिये। (पिशल § २९१) =छर्दित, तुलना करो शौरसेनी विच्छड्डिदइ, माहाराष्ट्री विच्छड्डिअ, अर्धमागधी जैनमाहाराष्ट्री विच्छड्डिय।

(१६) चाऊ=त्याग, जैन माहाराष्ट्री चाओ। अन्तिम ऊ (तुलना करो विहिऊ) अपवादस्वरूप और सम्भवत अशुद्ध है और इस अशुद्धि का कारण जैन हस्तलिखित पुस्तकों में उ और ओ का सादृश्य है। बम्बई-संस्करण में चायो और विहिओ पद हैं।

उद्धरण नं० २६

स्वप्नवासवदत्तम्

(अङ्क ४ पृष्ठ २१) प्रवेशक

(ततः प्रविशति विदूषक)

विदूषक —(सहर्षम्) दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छ राअस्स अभि

प्पेद्-घिगाहमगल रमणिज्जो कालो दिट्ठो। को णाम एद जाणादि तादिसे घय अणत्थसलिलावत्ते पक्खित्ता उण उम्मज्जिस्सामो त्ति। इदाणिं पासादेसु वसीअदि, अन्देउर दिग्घिआसु ह्लाईअदि, पलम मउर सुउमाराणि मोदअ खज्जआणि पज्जीअन्ति त्ति अणच्छर सवासो उत्तरकुरु वासो मए अणुभवीअदि। एको क्खु मह

---

१ तत्तहोदो को तत्थ होना चाहिये। § ४५। मगल। दन्त्य ल के स्थान में सर्वत्र मूर्धन्य ळ लिखा गया है। यह बात दक्षिण भारतीय हस्तलिखित पुस्तकों में साधारणतया पाई जाती है। वय शौरसेनी में अम्हे, दाक्षिणात्या वअ (वररुचि और मार्कण्डेय ने शौरसेनी में भी इसे स्वीकार किया है), अर्ध मागधी वय, पालि वय। उमज्जिस्सामो 'ऊपर निकल आवेंगे'।

२ अदेउर। (जैसा कि पृष्ठ २४ पर है) अतेउर शुद्ध रूप है किन्तु हस्तलिखित पुस्तकों में प्राय न्त के लिए न्द दिया गया है, इसी प्रकार सउतला के लिये "सउदला" दिया गया है। इस में सम्भवत' अपभ्रंश का प्रभाव कारण था, जिसमें यह परिवर्तन साधारण है। ह्णाईअदि। शौरसेनी यहाईअदि। हस्त लिखित पुस्तक में नियम से ण्ह के लिये ह्ण और म्ह के लिए ह्म मिलता है। आपातत यह आर्षता का उपलक्षण प्रतीत होता है; क्योंकि ह यहाँ स के लिये आया है और ण्ह की अपेक्षा ह्ण ष्ण से अधिक मिलता जुलता प्रतीत होता है। फिर भी ऐसी पुस्तकों में जहाँ ण्ह और म्ह को शुद्ध माना गया है ह्ण और ह्म पाये जाते हैं। अम्हे, नहातको (=स्नातको) जैसे पालि रूपों से यह प्रगट होता है कि यह परिवर्तन प्राचीन है। इस के अतिरिक्त उदाहरण के लिये अम्हणो और (जैसा कि मास में मिलता है) बह्मणो के बीच की भिन्नता कानों को कोई अधिक नहीं खटकती। इसी प्रकार ह्ण, ह्म भी केवल वर्णविन्यासक परिवर्तन होंगे। पलम-परम। र या ल के लिये यहाँ कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं है। मउर महुर (=मधुर) के लिये। यह गलती मालूम होती है, पृष्ठ ६ पर महुरा है। सुउमाराणि=•राइं। आणि जिनके अन्त में हो ऐसे नपुंसक बहुवचन अर्धमागधी, जैन माहाराष्ट्री, जैन शौरसेनी में मिलते हैं, महाराष्ट्री या शौरसेनी

न्तो दोसो, मम आहारो सुट्ठु ण परिणमदि, सुप्पच्छदणाए सय्याए णिद्दं ण लभामि, जह याव सोणिद अभिदो विअ वत्तदि त्ति पेक्खामि। भो! सुह णामय परिभूद अकल्लवत्त चे।

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी कहिं णु खु गदो अय्य-वसन्तओ? (परिक्रम्यावलोक्य) अह्मो एसो वसन्तओ। (उपगत्य) अय्य! वसन्तअ! को कालो तुमं अण्णेसामि।

विदूषक —(दृष्ट्वा) किं णिमित्तं, भद्दे! मं अण्णेससि?

चेटी—अह्माणं भट्टिणी भणादि—अवि ह्लादो जामादुओ त्ति।

में नहीं। पालि में संस्कृत की भाँति भाणि हो सकता है।

१ सय्याए (=शय्यायाम्) माहाराष्ट्री अर्धमागधी जैन माहाराष्ट्री सेज्जाए, मागधी सेय्याए। यहाँ भी, जैसा कि भय्यदत्त में है, द्वित्व ज्ज के लिये द्वित्व य्य आर्षता का द्योतक हो सकता है। शौरसेनी में हेमचन्द्र ने य के लिये य्य को उचित माना है। यह वर्णविन्यास कभी कभी दक्षिण भारतीय हस्तलिखित पुस्तकों में पाया जाता है। अधिकांश पुस्तकों में केवल एक यूत य •य पाया जाता है, जो पिशल के कथनानुसार या तो य्य और ज्ज के बीच विकल्प का द्योतक है अथवा जिससे इन दोनों के बीच की कोई ध्वनि अभिप्रेत है। (पिशल् § २८४) शौरसेनी में संस्कृत य्य के स्थान में ज्ज के अतिरिक्त किसी अन्य परिवर्तन के लिये कोई प्रमाण नहीं है। माहाराष्ट्री में जह नियमानुकूल है (शौरसेनी जधा)।

२ णामय-आमय 'अपथ' शौरसेनी में आमअ होना चाहिये। यदि यह कोई अशुद्धि नहीं है तो इसे आर्ष प्रयोग कहना चाहिये। कल्लवत्त 'कल्य वर्त', कलेवा।

३ अय्य, ऊपर सय्याए पर का नोट देखो। अह्मो का साधारण वर्णविन्यास अम्हो है, ऊपर ह्णाईअदि पर का नोट देखो। तेलंग के मालतीमाधव के संस्करण में अह्मो है। दूसरा पाठ यहाँ अम्हे है, पृष्ठ दस पर अम्हो है।

४ जामादुओ § ६०।

विदूषक —किं णिमित्त भोदी पुच्छदि ?

चेटी—किं अण्ण ? सुमण वण्णअ आणेमि त्ति ।

विदूषक –छादो तत्तभव।सव्वम् आणेदु भोदि वज्जिअ मोअण।

चेटी—किं णिमित्त वारेसि मोअण ?

विदूषकः—अधण्णस्स मम कोइलाण अक्खिपरिवट्टो विअ कुक्खि-परिवट्टो संवुत्तो ।

चेटी—ईदिसो एव्व होहि ।

विदूषक —गच्छदु भोदी । जाव अह वि तत्तहोदो सआसं गच्छामि । निष्क्रान्तौ

(ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती आवन्तिकावेशधारिणी वासवदत्ता च)

चेटी—किं णिमत भट्टिदारिआ पमदवण आअदा ?

पद्मावती—हला, ताणि दाव सेहालिआ गुह्मआणि पेक्खामि कुसुमिदाणि वा ण वे त्ति ।

चेटी—भट्टिदारिए ! ताणि कुसुमिदाणि णाम, पवालन्तरिदेहिं विअ मोत्तिआ-लम्बएहिं आइदाणि कुसुमेहिं ।

पद्मावती—हला ! जदि एव्व, किं दाणि विलम्बेसि ?

चेटी—तेण हि इमस्सिं सिलावट्टए मुहुत्तअ उपविसदु भट्टि दारिआ । जाव अह वि कुसुमावचअ करेमि [4]।

---

१ कुक्खि 'कुक्षि' पेट ।

२ जाव साधारण रूप है । यहाँ य नहीं आया है । यद्यपि अधिक अच्छा होता ।

३ गुह्मअ (गुल्मक) अर्धमागधी शौरसेनी मागधी गुम्म § ४८ । ह्म के लिये कोई कारण नहीं दीखता । पिछले अक में गुह्मद गुल्फद के लिये आया है, जहाँ परिवर्तन आर्ष नहीं है ।

४ शिलापट्टक ' पाषाणफलक ' । (पृष्ठ १६ पर सिला पट्टक) । उपविसदु

पद्मावती—अय्ये ! किं एत्थ उपविसामो ?

वासवदत्ता—एव्वं होदु ।

(उभे उपविशतः)

(रेखाङ्कित शब्द नियमानुकूल शौरसेनी नहीं हैं)।

अनुवाद

विदूषक—(खुशी से) अहोभाग्य ! आज महाराज वत्सराज के मङ्गलमय विवाह का आनन्द प्राप्त हो ही गया है। इसका पूर्व ज्ञान किसको था कि हम दुःख के अगाध जल में प्रविष्ट होकर फिर उसके बाहर आ निकलेंगे। इस समय मैं राजमहलों में सोता हूँ, अन्तःपुर के सरोवरों में स्नान करता हूँ और बड़ी मधुर तथा प्रिय मिठाइयों को खाता हूँ। मैं अप्सराओं के सगम के बिना उत्तरकुरु में वास कर रहा हूँ। तथापि एक बहुत बड़ा दोष है कि मैं भोजन को अच्छी तरह नहीं पचा सकता। मुझे अच्छी अच्छी रजाइयों वाले बिछौने पर भी नींद नहीं आती, इसलिये मुझे वातशोणित की पीड़ा का जैसा अनुभव हो रहा है। सत्य है कि तन्दुरुस्ति और स्वादु भोजन के बिना दुनिया में वास्तविक सुख नहीं है।

(चेटी आती है)

चेटी—आर्य वसन्तक कहाँ गया होगा ! [घूम कर देखती है] अहो ! आर्य वसन्तक यह है। (आगे बढ़ कर) आर्य वसन्तक ! मैं तुमको किस समय से ढूँढ रही हूँ।

विदूषक-(कटाक्ष करके) भद्रे ! किस निमित्त से तू मुझे ढूँढ रही है !

शुद्ध शौरसेनी है। इसी प्रकार उवरदा शुद्ध रूप होना चाहिये। पृष्ठ ४० प्रवचन, यहां कोई य नहीं है।

चेटी—हमारी स्वामिनी पूछती हैं क्या जामाता स्नान कर चुके ?

विदूषक—तुम यह किस लिये पूछ रही हो ?

चेटी—और किस लिये ! केवल इस कारण कि फूल तथा सुगंधित द्रव्य ले आऊं।

विदूषक—महाराज नहा चुके हैं। भोजन के अलावा सब चीजें ला सकती हो !

चेटी—भोजन (लाने को) क्यों रोक रहे हो ?

विदूषक-इसलिये कि मेरा पेट कोकिल की आँख की भाँति चक्कर लगा रहा है।

चेटी—सदा इसी तरह ही रहो।

विदूषक—तुम जाओ। मैं भी महाराज को मिलने जाता हूँ।

(दोनों जाते हैं)

[सहेलियों सहित पद्मावती और आवन्ती वेष में वासवदत्ता प्रवेश करती हैं]

चेटी—राजकुमारी प्रमोद वन में कैसे आई ?

पद्मावती-अरी मैं देखती हूँ कि शेफालिका के गुल्म विकसित हो गये हैं कि नहीं।

चेटी-राजकुमारी ! वे खिल गये हैं । फूलों सहित वे इस प्रकार शोभायमान हो रहे हैं जैसे प्रवाल में मोती पिरोये हों।

पद्मावती—प्रिये ! यदि यह सत्य है तो विलम्ब क्यों कर रही हो?

चेटी-जब तक मैं पुष्पों को चुनती हूँ तब तक राजकुमारी इस पाषाण शिला पर बैठें।

पद्मावती-आर्ये, क्या हम यहाँ पर बैठ जाय ?

वासवदत्ता-जैसी आपकी इच्छा है।

(दोनों बैठती हैं)

प्रारम्भिक प्राकृत

उद्धरण नं० ३०

चौथा चट्टान शासन

नोट—गिरनार शासन की भाषा पश्चिमी और धौली की पूर्वी प्राकृत है। अशोक की धर्मलिपियों की भाषाओं के सम्बन्ध में वूल नर कृत अशोक ग्लासरी (Asoka Glossary) देखनी चाहिए। मूल चट्टानों पर व्यञ्जन का द्विर्भाव नहीं दिखाया गया।

गिरनार—अतिकात अतर बहूनि वाससतानि वढितो एव प्राणारंभो विहिंसा च भूतान ञातिसु असप्रतिपत् ब्राह्मणस्रमणान असप्रतिपती।

धौली—अतिकत अतल बहूनि वस सतानि वढिते व पानालभे विहिसा च भूतान नातीसु असपटिपति समनबाभनेसु असपटिपति।

प्राचीनकाल में सैकड़ों वर्षों तक सदा पशुओं के वध और जीवहिंसा, सम्बन्धियों के प्रति अशिष्टता और ब्राह्मणों और श्रमणों के प्रति अशिष्टता की बढ़ती होती रही।

अतिकात=अतिक्रान्तम्। वढितो=वर्धितो, तुलना करो वड्ढितो। नाति=ज्ञाति। पालि ञाति। सप्रतिपत्ति 'उचित प्रतिष्ठा'।

गिरनार—त अज देवान प्रियस प्रियदसिनो राञो धमचरणेन भेरीघोसो अहो धमघोसो विमानदसणा च हस्तिदसणा च अगि खंधानि च अञानि च दिव्यानि रूपानि दसयित्पा जन।

धौली—से अज देवान पियस पियदसिने लाजिने धमचलनेन भेलिघोस अहो धमघोस विमानदसन हथीनि अगिकधानि अनानि च दिवियानि लुपानि दसयितु मुनिसान।

किन्तु अब देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरि (ध्वनि) धर्मघोष हो गया है, जिसमें लोगों को विमानदर्शन, ... रूपों का दर्शन कराया जाता है।

*अभोत् (अभवत्) से। अन्य विद्वानों ने इसे ... के अर्थ में लिया है, तुलना करो अथवा

अपभ्रंश अदयह। -त्पा, तु=संस्कृत त्वा, दर्शयित्वा। हथीनि द्वितीया का बहुवचन पुल्लिङ्ग जो नपुंसक रूप से लिया गया है। अग्नि-स्कन्ध का अर्थ अलाव या दिव्य प्राणी हो सकता है।

गिरनार-यारिसे बहूहि वाससतेहि न भूतपुवे तारिसे अज वढिते देवान प्रियस प्रियदसिनो राञो धमानुसष्टिया अनारंभो प्राणान अविहिसा भूतान आतीन संपटिपती ब्रह्मणसमणान स पटिपती मातरि पितरि सुस्रुसा थैरसुस्रुसा।

धौली—आदिसे बहूहि वससतेहि नो हूतपुलुवे तादिसे अज वढिते देवान पियस पियदसिने लाजिने धमानुसथिया अनालंभे पानान अविहिसा भूतान नातिसु संपटिपति समन बभनेसु संपटिपति मातिपितुसुसूसा वुढ सुसूसा।

जैसा कि पहिले सैकड़ों वर्षों से इन बातों का अस्तित्व नहीं था, देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से पशुओं और जीवों की अहिंसा, सम्बन्धियों के प्रति शिष्टता, ब्राह्मणों और श्रमणों के प्रति शिष्टता, माता और पिता की आज्ञा का पालन, और बड़े बूढ़ों के आज्ञापालन की वृद्धि की गई है।

थइर=स्थविर, पालि थेर। वुढ=वृद्ध, पालि वुड्ढ अथवा वुद्ध।

गिरनार—एस अञे च बहुविधे धमचरणे वढिते वढयसति चेव देवान प्रियो प्रियदसी राजा धमचरण इद।

धौली—एस अने च बहुविधे धमचलने वढिते वढयिसति चेव देवान पिये पियदसी लाजा धमचलन इद।

इस प्रकार और अनेकों तरीकों से धर्माचरण की वृद्धि की गई है। और देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा सदा इस धर्माचरण की वृद्धि करेगा।

गिरनार—पुत्रा च पोत्रा च प्रपोत्रा च देवान प्रियस प्रियद सिनो राञो वधयिसति इद धमचरण आव सवटकपा।

धौली—पुता पि च नतिपनति च देवान पियस पियदसिने

लाजिने पवढयिसति येव धमचला इम आकप ।

और देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र और पौत्र और प्रपौत्र कल्पान्त तक इस धर्माचरण की वृद्धि करेंगे ।

आव संवट कपा=यावत् सवर्तकल्पात् । आकप=आकल्पम् । नति पनति (नप्तृ प्रनप्तृ) ।

<u>गिरनार</u>—धमम्हि सीलम्हि तिष्टंतो धमं अनुसासिसंति ।

<u>धौली</u>—धमसि सीलसि च चिठितु धमं अनुसासिसति ।

धर्म और शील में स्थिर रह कर वे (लोगों को) धर्माचरण की शिक्षा देंगे ।

चिठितु * चिठति-से क्त्वान्त रूप ।

<u>गिरनार</u>—एस हि सेस्टे कमे य धमानुसासनं ।

<u>धौली</u>—एस हि सेठे कमे या धमानुसासना ।

क्योंकि यही—अर्थात् धर्मानुशासन श्रेष्ठ काम है ।

<u>गिरनार</u>—धमचरणे पि न भवति असीलस । त इमम्हि अथ म्हि वधी च अहीनी च साधु ।

<u>धौली</u>—धमचलणे पि चु नो होति असीलस । से इमस अठस वढी अहीनी च साधु ।

और धर्माचरण शीलहीन के लिये नहीं है । इसलिये इस अर्थ की वृद्धि और उसमें प्रमाद न करना पुण्यकार्य है ।

<u>गिरनार</u>—एताय अथाय इदं लेखापितं इमस अथस वधि युजतु हीनि च मा लोचेतव्या । द्वादसवासाभिसितेन देवानं प्रियेन प्रियदसिना राजा इदं लेखापितं ।

<u>धौली</u>—एताये अठाये इयं लिखिते इमस अठस वढी युजतू हीनि च मा अलोचयिसु । दुवादसवसानि अभिसितस देवानं पियस पियदसिने लाजिने य इध लिखिते ।

निम्नलिखित उद्देश्य से यह लिखवाया गया है कि वे अपने

आप को इस आचरण की वृद्धि में लगावें और उसकी उपेक्षा का अनुमोदन न करें। इसे देवाना प्रिय प्रियदर्शि राजा ने लिखवाया था जब उसका अभिषेक हुए बारह वर्ष हो गये थे।

युजतु लोट् 'अपने आपको लगावें'। मा आलोचयिसु प्रथम पुरुष बहुवचन आलोचयति का लुङ्रूप 'वे इसका अनुमोदन न करें', लोचेतव्या (गिरनार) तव्यान्तरूप है, शब्द योजना कुछ मिश्रित सी प्रतीत होती है। द्वादस 'द्वादश' तुलना करो त्व के लिये त्प। उच्चारण अभिनिहित होने से द् अन्तत लुप्त हो गया और केवल व शेष रह गया। इसी प्रकार प्राकृत बारस, बारह, हिन्दी बारह इत्यादि की उत्पत्ति है।

उद्धरण नं० ३१

पालि

जातक ३०८।

अतीते बाराणसिय ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो हिमवन्त-पदेसे रुक्ख-कोट्ठ सकुणो हुत्वा निब्बत्ति। अथेकस्स सीहस्स मस खादन्तस्स अट्ठि गले लग्गि, गलो उद्धुमायि, गोचर गण्हितु न सक्कोति खरा वेदना वत्तन्ति।

टिप्पण—बाराणसिय=वाराणस्याम्=अर्धमागधी वाणारसीए। ब्रह्म, प्राकृत बम्ह। कारेन्ते णिजन्त शत्रन्तरूप, शौरसेनी करेन्ते कर्द वाच्य है। रुक्ख०'कठफोड़ा'। रुक्ख इसी प्रकार महाराष्ट्री शौर सेनी इत्यादि में=वैदिक रुख 'वृक्ष' जिसका सम्बन्ध नि सन्देह वृक्ष से है, जिससे महाराष्ट्री जैन महाराष्ट्री वच्छ निकला है (पिशल § ३२०)। हुत्वा=शौरसेनी भविअ, अर्धमागधी होत्ता। निब्बत्ति 'फिर पैदा हुआ' निब्बत्तति=शौरसेनी णिव्वट्टदि से लुङ (निर्+

लाजिने पवढयिसति येव धमचलन इम आकप।

और देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र और पौत्र और प्रपौत्र कल्पान्त तक इस धर्माचरण की वृद्धि करेंगे।

आव सवट कपा=यावत् संवर्तकल्पात्। आकप=आकल्पम्। नति पनति (नप्तृ प्रणप्तृ)।

<u>गिरनार</u>—धमम्हि सीलम्हि तिष्टतो धम अनुसासिसति।

<u>धौली</u>—धमसि सीलसि च चिठितु धम अनुसासिसति।

धर्म और शील में स्थिर रह कर वे (लोगों को) धर्माचरण की शिक्षा देंगे।

चिठितु * चिठति—से क्त्वान्त रूप।

<u>गिरनार</u>—एस हि सेस्टे कमे य धमानुसासन।

<u>धौली</u>—एस हि सेठ कमे या धमानुसासना।

क्योंकि यही—अर्थात् धर्मानुशासन श्रेष्ठ काम है।

<u>गिरनार</u>—धमचरणे पि न भवति असीलस। त इमम्हि अथ म्हि वधी च अहीनी च साधु।

<u>धौली</u>—धमचलणे पि चु नो होति असीलस। से इमस अठस वढी अहीनी च साधु।

और धर्माचरण शीलहीन के लिये नहीं है। इसलिये इस अर्थ की वृद्धि और उसमें प्रमाद न करना पुण्यकार्य है।

<u>गिरनार</u>—एताय अथाय इद लेखापित इमस अथस वधि युजंतु हीनि च मा लोचेतव्या। द्वादसवासाभिसितेन देवान प्रियेन प्रियदसिना राञा इद लेखापितं।

<u>धौली</u>—एताये अठाये इय लिखिते इमस अठस वढी युजतु हीनि च मा अलोचयिसु। दुवादसवसानि अभिसितस देवान पियस पियदसिने लाजिने य इध लिखिते।

निम्नलिखित उद्देश्य से यह लिखवाया गया है कि वे अपने

[(अ) पि+धा] का तुमुन्नन्त रूप। निलीयि 'अज्ञा किया' देखो ऊपर निलीनो।

सीहो नीरोगो हुत्वा एकदिवस वनमहिंस वधित्वा खादति। सकुणो "धीमंसिस्सामि ऽऽ" ति तस्स उपरिभागे साखाय निली यित्वा तेन सद्धिं सल्लपन्तो पठम गाथ आह—

अकरम्हसे ते किच्च य बल अाहुवम्हसे,
मिगराज नमो त्यत्थु, अपि किञ्चि लभामसे।

टिप्पण—धीमंसिस्सामि धीमंसति का भविष्यत् रूप 'परखना, जाचना' (मीमांसते)। पठम=प्राकृत पढम। अकरम्हसे लुङ् आत्मनेपद। अहुवम्हसे भवति का आत्मनेपद लुङ। त्यत्थु= (इति+अस्तु)। लभामसे आत्मनेपद लोट्।

त सुत्वा सीहो दुतिय गाथ आह—
मम लोहित भक्खस्स निच्च लुद्दानि कुब्बतो
दन्तन्तर गतो सन्तो त बहु य हि जीवसीति॥

त सुत्वा सकुणो इतरा द्वे गाथा अभासि—
अकतञ्जु अकत्तार कतस्स अप्पतिकारक
यस्मि कतञ्ञुता नत्थि निरत्था तस्स सेवना।
यस्स सम्मुख चिण्णेन मित्तधम्मो न लब्भति
अनुसुय्यम् अनक्कोस सनिक तम्हा अपक्कमे ति।
एव वत्वा सो सकुणो पक्कामि।

टिप्पण—भक्ख 'भक्षण'। कुब्बन्तो करोति का शत्रन्त। लुद्दानि 'रौद्र काम' (रुद्र)। अभासि 'कहा' भासति का लुङ् रूप। कतञ्ञु 'कृतज्ञ'। चिण्ण 'पूरा किया' (*चीर्ण) चरति का क्तान्त रूप, 'कोई काम जो किसी मनुष्य के सामने किया गया हो, अत एव वैयक्तिक अनुग्रह'। सनिक 'शीघ्रता से'। कभी कभी इसका अर्थ शनैः की भांति धीरे धीरे होता है, मूल अर्थ

...) । अथ=शौरसेनी अध । सीह, यही रूप माहाराष्ट्री में ...ξ४) । लगिग 'लग गया, फस गया' लग्गति से लुङ् । उद्धु...यि 'फुलाया गया', उद्धुमायति=उद्ध्मायते से कर्मवाच्य लुङ्...र । गण्हितु=शौरसेनी गेण्हिदु । सक्कोति=शौरसेनी सक्कुणो... । जैन माहाराष्ट्री सक्कइ, सक्केइ । वत्तन्ति=शौरसेनी वट्टति ।

अथ न सो सक्कुणो गोचर पसुतो दिस्वा सापाय निलीनो ...किं ते सम्म दुक्खतीति ' पुच्छि । सो तम् अथ आचिक्खि "अहन् ... सम्म पत अट्ठि अपनेय्य, भयेन ते मुख पविसितु न विसहामि, ...दिय्यासि पि मन्" ति "मा भायि सम्म, नाहन् त खादामि, जी...वित मेदेहीति" ।

टिप्पण—ए ' उसको ' । (भोजन) ढूंढने में लगा हुआ= ...सित । दिस्वा=दृष्ट्वा, अर्धमागधी दिस्सा, दिस्स, दिस्स । ...सापाय, तुलना करो माहाराष्ट्री सप्तमी भाला । निलीनो 'अड्डे ...र बैठा हुआ' निलीयति का क्तान्त रूप कर्मवाच्य, तुलना करो ...शौरसेनी णिलीअमाण । सम्म 'मित्र, भद्र' ! सम्यक् से । आ...चिक्खि 'कहा' आचिक्खति (आ+ख्या)=अर्धमागधी आइक्खइ । ...अपनेय्य 'मैं हटा देता' शौरसेनी में अवणेअ, अर्धमागधी अवणे...ज्जा । विसहामि (वि+सह्) 'साहस करता' ।

सो "साधु" ति त पस्सेन निपज्जापेत्वा "को जानाति किं पेस ...करिस्सतीति" चिन्तेत्वा यथा मुख पिदहितु न सक्कोति तथा तस्स ...अधरोट्ठे च उत्तरोट्ठे च दण्डक ठपेत्वा मुख पविसित्वा अट्ठिकोटिं ...तुण्डेन पहरि । अट्ठि पतित्वा गत । सो अट्ठिं पातेत्वा सीहस्स ...मुखतो निक्खम तो दण्डक तुण्डेन पहरित्वा निक्खमित्वा साखग्गे ...निलीयि ।

टिप्पण—पस्सेन=शौरसेनी पास । निपज्जापेत्वा निपज्जति (नि+पद्) का णिजन्त क्त्वा त रूप । पिदहितु पिदहति 'ढकता है'

[(अ) पि+धा] का तुमुन्नन्त रूप। निलीयि 'अट्टा क्रिया' देखो ऊपर निलीनो।

सीहो नीरोगो हुत्वा एकदिवस वनमहिंस वधित्वा खादति। सकुणो "वीमंसिस्सामि नन्" ति तस्स उपरिभागे साखाय निलीयित्वा तेन सद्धिं सल्लपन्तो पठम गाथ आह—

अकरम्हसे ते किच्च य बल आहुवम्हसे,
मिगराज नमो त्यत्थु, अपि किञ्चि लभामसे।

टिप्पण—वीमंसिस्सामि वीमसति का भविष्यत् रूप 'परखना, जाचना' (मीमासते)। पठम=प्राकृत पढम। अकरम्हसे लुङ् आत्मनेपद। अहुवम्हसे भवति का आत्मनेपद लुङ। त्यत्थु=(इति+अस्तु)। लभामसे आत्मनेपद लोट्।

त सुत्वा सीहो दुतिय गाथ आह—
मम लोहित भक्खस्स निच्च लुद्दानि कुब्बतो
दन्तन्तर गतो सन्तो त बहु य हि जीवसीति॥

त सुत्वा सकुणो इतरा द्वे गाथा अभासि—
अकतञ्ञु अकत्तार कतस्स अप्पतिकारक
यम्हि कतञ्ञुता नत्थि निरत्था तस्स सेवना।
यस्स सम्मुख चिण्णेन मित्तधम्मो न लब्भति
अनुसुय्यम् अनक्कोस सनिक तम्हा अपक्कमे ति।
एव वत्वा सो सकुणो पक्कामि।

टिप्पण—भक्ख 'भक्षण'। कुब्बन्तो करोति का शत्रन्त। लुद्दानि 'रौद्र काम' (रुद्र)। अभासि 'कहा' भासति का लुङ् रूप। कतञ्ञु 'कृतज्ञ'। चिण्ण 'पूरा किया' (*चीर्ण) चरति का क्तान्त रूप, 'कोई काम जो किसी मनुष्य के सामने किया गया हो, अत एव वैयक्तिक अनुग्रह'। सनिक 'शीघ्रता से'। कभी कभी इसका अर्थ शनैः की भाति धीरे धीरे होता है, मूल अर्थ

'नरमी से, धीरे से।' तम्हा (तस्मात्) शौरसेनी में क्रिया विशेषण की भांति प्रयुक्त होता है।

उद्धरण नं० ३२

पालि

जातक ३३६।

बावेरुजातकम्

अतीते बाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो मोर-योनियं निब्बत्तित्वा वुड्ढिं अन्वाय सोभग्गप्पत्तो अरञ्ञे विचरि। तदा एकच्चे वाणिजा दिसा काकं गहेत्वा नावाय बावेरुरट्ठं अगमंसु। तस्मिं किर काले बावेरुरट्ठे सकुणा नाम नत्थि। आगतागता रट्ठवासिनो तं कूपग्गे निसिन्नं दिस्वा "पस्सथिमस्स छविवण्णं गलपरियोसानं मुखतुण्डकं मणिगुळक-सदिसानि अक्खीनीति" काकमेव पसंसित्वा ते वाणिजके आहंसु— इमं अय्यो सकुणं अम्हाकं देथ, अम्हाकं हि इमिना अत्थो, तुम्हे अत्तणो रट्ठे अञ्ञं लभिस्सथा" ति। "तेन हि मूलेन गण्हथा" ति। "कहापणेन नो देथा" ति। "न देमा" ति। अनुपुब्बेन वड्ढेत्वा 'सतेन देथा" ति वुत्ते "अम्हाकं एस बहूपकारो, तुम्हेहि पन सद्धिं मेत्ती होतू" ति कहापण-सतं गहेत्वा अदंसु।

वुड्ढिम् अन्वाय "वृद्धि को प्राप्त होकर, पूर्णतया बढ़ कर" प्रत्यान्त (अनु+इ) जिस प्रकार मि से माय् बनता है उसी के सादृश्य पर * अन्वेत्वा के स्थान में प्रस्तुत रूप बना है। एकच्चे 'निश्चित' (* एक त्य)। दिसा काक 'परदेशी कौवा'। अगमसु प्रथम पुरुष बहुवचन लुङ् 'गये'। किर=किल। प्रत्यक्षत बावेरु राज्य समुद्र में किसी ऐसे मुल्क में था जहाँ पक्षियों का होना

दुर्लभ समझा जाता था, सम्भवत यह देश कहीं फारस की खाड़ी में स्थित होगा। आगतागता "पहुँची, पहुँचे")। कूप 'मस्तूल'। निसिन्न 'अड्डे पर स्थित'=जैन माहाराष्ट्री निसिण्ण। पस्सथ, मध्यम पुरुष बहुवचन लोट्, "देखो"। परियोसान "अन्त में" (पर्यवसान)। अय्यो, शायद शुद्धरूप अय्या " साहिवान "=शौरसेनी अज्जा, है। कहापण "एक प्रकार का सिक्का, यहाँ सम्भवत चाँदी का सिक्का"। मेत्ती "मैत्री"। अदंसु, लुङ् "उन्होंने दिया"।

ते त गहेत्वा सुवण्ण पञ्जरे पक्खिपित्वा नानप्पकारेन मच्छम सेन चेव फलाफलेन च पटिजग्गिंसु। अञ्ञेस सकुणान अविज्ज मानट्ठाने दसहि असद्धम्मेहि समन्नागतो काको लाभग्ग यसग्ग प्पत्तो अहोसि। पुनवारे ते वाणिजा एक मयूर-राजानं गहेत्वा यथा अच्छरासद्देन वस्सति पाणिप्पहारसद्देन नच्चति एव सिक्खा पेत्वा बावेरु रट्ठ अगमसु। सो महाजने सन्निपतिते नावाय धुरे ठत्वा पक्खे विधूनित्वा मधुर स्सर निच्छारेत्वा नच्चि।

फलाफल "जगली फल"। जब किसी समास में कोई शब्द दोहराया जाता है तो पालि में एक स्वर दीर्घ हो जाता है। इसी प्रकार खडाखड 'टुकड़े टुकड़े,' किच्चाकिच्चानि "सब प्रकार के कृत्य"। पटिजग्गिंसु, लुङ् पटिजग्गति "निगरानी रखना, देखभाल करना" (प्रति+जागृ)। समन्नागतो "युक्त" (सम्+अनु +आ+गम्)—इसका पर्याय बौद्ध संस्कृत में पाया जाता है। यसग्ग "यश की चरम सीमा"। पुन-वारे "अगली बार"। अच्छरा "उंगलियों को चटकाना"। वस्सति "चीखता है" √वाश्। उन्होंने उसको उंगलियों के चटकाने पर चीखना और हाथों से ताली बजाने पर नाचना सिखा रक्खा था। धुरे "धुरे पर"। ठत्वा, माहाराष्ट्री जैन माहाराष्ट्री ठाइऊण, अर्धमागधी जैनशौरसेनी ठिच्चा। निच्छारेति "निकाल डालना, उचारना" निच्छरति (निश्+चर्) का णिजन्त रूप।

मनुस्सा त दिस्वा सोमनस्स जाता "एत अय्यो सोमग्ग पत्त सुसिक्खित-सकुण राजा अम्हाक देथा" ति आहंसु । "अम्हेहि पठम काको आनीतो त गण्हित्थ, इदानि एत मोर राजान आना पियम्ह, एत पि याचथ, तुम्हाक रट्ठे सकुण नाम गहेत्वा आगतु न सक्का" ति । "होतु अय्यो, अत्तनो रट्ठे अञ्ञ लभिस्सथ, इम नो देथा" ति मूल वड्ढेत्वा सहस्सेन गण्हिंसु । अथ न सत्त रतन विचित्ते पञ्जरे ठपेत्वा मच्छमस फलाफलेहि चेव मधु लाज सक्खरा पानकादीहि च पटिजग्गिंसु । मयूरराजा लाभग्ग यसग्ग-पत्तो जातो । तस्सागतकालतो पट्ठाय काकस्स लाभसक्कारो परिहायि, कोचि न ओलोकेतु पि न इच्छति । काको खादनिय भोजनिय अलभमानो 'काका' ति वस्सतो गत्वा उक्कारभूमिय ओतरि ।

आहंसु-लुङ् 'उन्होंने कहा"। गण्हित्थ मध्यमपुरुष बहुवचन "तुमने लिया"। आनायिम्ह "हम लाये हैं "। सक्का "सम्भव है"। कभी कभी इसकी व्याख्या सक्को 'समर्थ' (=शक्य) का बहुवचन मान कर भी की जाती है, किन्तु यह प्रायः अव्यय होता है, और पिशल ने इसकी व्युत्पत्ति शक्यात् से बतलायी है § १३३। "वस्तुतः किसी पक्षी को लेकर आपके देश में आना असम्भव है"। ठपेत्वा=अर्धमागधी ठावेत्ता, जैन माहाराष्ट्री ठविता, ठविऊण, ठविय, शौरसेनी ठाविअ, ठविअ। लाज' खील, लाजा"। पट्ठाय' से' शब्दार्थ से रवाना होकर" (प्र+स्था) । इसी प्रकार अज्जपट्ठाय "आज से लेकर"। परिहायि "अलग जा गिरा"। खादनिय ' खाद्य"। भोजनिय मृदु भोजन" । पद्य में खज्जभोज्ज पद मिलता है। काका' ति वस्सतो काय काय करता हुआ ।" उक्कारभूमि ' विष्ठा या मल का ढेर", अर्धमागधी उच्चार। ओतरि "उतरा"।

उद्धरण नं० ३३

पाली

महावंश, सर्ग ७

लङ्काविजय

(टाइ्ज ऐण्डरसन की रीडर, पृष्ठ ११०। गाइगर का अनुवाद पृष्ठ ५५)

निर्वाण समय बुद्ध ने इन्द्र को बतलाया कि सीहबाहु का पुत्र विजय सात सौ अनुयायियों के साथ लङ्का को गया है और प्रार्थना की कि उसकी और उसके अनुयायियों की सावधानी से रक्षा की जाय। इन्द्र ने लंका की रक्षा का भार विष्णु को सौंपा।

सक्केन वुत्तमत्तो सो लङ्कम् आगम्म सज्जुकम्।
परिब्बाजक वेसेन रुक्खमूलम् उपाविसि ॥ ६ ॥

विजय प्पमुखा सब्बे त उपेच्च अपुच्छिसु,
"अय भो को नु दीपो ?" ति। "लंकादीपो" ति अब्रुवि ॥ ७ ॥

श्लोक ६—'वुत्त' वत्ति 'वह बोलता है' का क्रान्त रूप। इसी प्रकार जैन माहाराष्ट्री अर्धमागधी में भी। मत्त (मात्र), प्राकृत भाषाओं में अधिक प्रचलित रूप मेत्त है। अर्धमागधी-मित्त। आगम्म आगच्छति का कृदन्त रूप। सज्जुक 'शीघ्रता से', यह शब्द सद्य से निकला है। वेसेन (परिव्राजक के) 'वेश में'।

श्लोक ७—प्पमुखा 'प्रमुखा', इत्यादि, अर्थात् विजय और उस के अनुयायी।

"न सन्ति मनुजा एत्थ, न च हेस्सति वो भयं"—
इति वत्वा कुण्डिकाय ते जलेन निसिञ्चिय ॥ ८ ॥
सुत्तञ्च तेस हत्थेसु लग्गेत्वा नभसागमा,
दस्सेसि सोणिरूपेन परिचारिक-यक्खिनी ॥ ९ ॥

एत्तो तं वारियन्तो पि राजपुत्तेन अन्वगा।
"गामम्हि विज्जमानम्हि भवन्ति सुनखा" इति ॥ १० ॥
तस्सा च सामिनी तत्थ कुवेणी नाम यक्खिनी।
निसीदि रुक्ख-मूलम्हि कन्तन्ती तापसी विय ॥ ११ ॥
दिस्वान सो पोक्खरणिं निसिन्नं तञ्च तापसिं।
तत्थ नहात्वा पिवित्वा चादाय च मुलालयो-
वारिञ्च पोक्खरे हेव सो वुट्ठासि, तम् अब्रवि-
"भक्खो सि मम, तिट्ठ" ति, आलहावद्धो व सो नरो ॥ १३ ॥
परित्तसुत्ततेजेन भक्खेतु सा न सक्कुणि।
याचियन्तो पि तं सुत्त नादा यक्खिनिया नरो ॥ १४ ॥
तं गहेत्वा सुरुङ्गाय रुदन्तं यक्खिनी खिपि,
एवं एकेकसो तत्थ खिपि सत्तसतानि पि ॥ १५ ॥

श्लोक ८ हेस्सति 'भवति' (*हविस्सति) का भविष्यत् रूप, भविस्सदि भी प्रचलित रूप है।

श्लोक ९ सुत्त, उदाहरण के लिए भूत प्रेतों के विरुद्ध रक्षा का एक साधन। अगमा, लुङ् 'अन्तर्हित होगया' इसी प्रकार अगमि अगच्छि, अगमासि इत्यादि रूप भी होते हैं। दस्सेसि 'दिखाई दिया', लुङ्। तुलना करो दस्सेति=दर्शयति। सोणि 'शुनी'।

श्लोक १० वारियन्तो, वारेति 'निषेध करता है' के वारियति इस कर्मवाच्य रूप का शत्रन्त, जो वुणाति का णिजन्त रूप है। अन्वगा 'अनुगमन किया'। सुनखा 'कुत्ते' (शुनका)—'केवल वहाँ जहाँ कोई गाँव हो।'

श्लोक ११ कन्तन्ती 'कातती हुई'।

श्लोक १२ दिस्वान, क्त्वान्त=दिस्वा, इसी प्रकार पस्सित्वान ... होता है। मुलालयो, द्वितीया बहुवचन 'कमलनाल'

... में 'सा' है किन्तु तड़ाग से बाहर पुरुष

उद्धरण नं० ३३

पाली

महावंश, सर्ग ७

लङ्काविजय

(डाइ-ज ऐण्डरसन की रीडर, पृष्ठ ११०। गाइगर का अनुवाद पृष्ठ ५५)

निर्वाण समय बुद्ध ने इन्द्र को बतलाया कि सीहबाहु का पुत्र विजय सात सौ अनुयायियों के साथ लङ्का को गया है और प्रार्थना की कि उसकी और उसके अनुयायियों की सावधानी से रक्षा की जाय। इन्द्र ने लका की रक्षा का भार विष्णु को सौंपा।

सक्केन वुत्तमत्तो सो लङ्कम् आगम्म सज्जुकम्।
परिब्बाजक-वेसेन रुक्खमूलम् उपाविसि ॥ ६ ॥

विजय-प्पमुखा सब्बे त उपेच्च अपुच्छिसु,
"अय भो को नु दीपो ?" ति। "लकादीपो" ति अब्रुवि ॥ ७ ॥

श्लोक ६—'वुत्त' वत्ति 'वह बोलता है' का क्रान्त रूप। इसी प्रकार जैन माहाराष्ट्री अर्धमागधी में भी। मत्त (मात्र), प्राकृत भाषाओं में अधिक प्रचलित रूप मेत्त है। अर्धमागधी-मित्त। आगम्म आगच्छति का कृदन्त रूप। सज्जुक 'शीघ्रता से', यह शब्द सद्यः से निकला है। वेसेन (परिब्राजक के) 'वेश में'।

श्लोक ७—प्पमुखा 'प्रमुखा', इत्यादि, अर्थात् विजय और उस के अनुयायी।

"न सन्ति मनुजा एत्थ, न च हेस्सति वो भयं"—
इति वत्वा कुण्डिकाय ते जलेन निसिञ्चिय ॥ ८ ॥
सुत्तञ्च तेस हत्थेसु लग्गेत्वा नभसागमा,
दस्सेसि सोणिरूपेन परिचारिक-यक्खिनी ॥ ९ ॥

श्लोक १८ अनायन्त 'न आता हुआ'। नद्ध 'बन्धा हुआ, सजा हुआ'। अपस्स०-'जहाँ उसने किसी आते हुए व्यक्ति के पदचिन्हों को नहीं देखा'-म्-सन्धिव्यञ्जन है। भच्चा 'नौकर', (भृत्या)। भोति 'हे भद्रे'।

श्लोक १६ स-नाम 'उसका नाम'। सावेत्वा, (सुणोति) का क्त्वान्त णिजन्त। सधाय 'तय्यार होकर' खींच कर, इसी प्रकार सद हति संधेति (सम्+धा) से सन्धेत्वा, सन्दहित्वा, रूप भी बनते हैं।

श्लोक २० नाराच 'एक हथियार'। वलय 'पाश'।

श्लोक २१ भयट्ठा=भय स्था।

श्लोक २२ किच्च (कृत्यम्), इसी प्रकार शौरसेनी में भी।

श्लोक २३ अदूभत्थाय। 'जिस से उसके साथ विश्वासघात न हो'। सपथ 'शपथ'।

श्लोक २४ छाता 'भूखा' (प्सात) § २१। विनिद्दिसि 'दिख लाया' (वि+निर्+दिश्)।

उद्धरण नं० ३४

प्राचीन प्राकृत

हाथीगुम्फा शिलालेख

यह शिलालेख उदयगिरि गुफाओं के, जो कटक से उन्नीस मील दूर हैं, शिलालेखों में से एक है। इसका एक शुद्धपाठ लीडन की ओरियन्टलिस्ट की छठी अन्तर्जातीय कांग्रेस की कार्यवाही में १८८३, पार्ट ३, पृष्ठ १३५, भगवान् लाल इन्द्रजी ने प्रकाशित किया था। तब से नये ठप्पों के [illegible] पर [illegible] अजा यबघर के साँचे और ठप्पे भी [illegible]

और उड़ीसा रिसर्च सोसायटी के पत्र में, १९१७, १९१८ और १९२१, मिलेगा। इस में दिया सम्वत् मौर्य काल का नहीं यह सिद्ध हो चुका है। यह प्राचीन ब्राह्मी लिपि में लिखा हुआ है और इसका समय सन् ईसवी की दूसरी शताब्दी रक्खा गया है। शिलालेख में खारवेल के राज्य का वर्ष वर्ष का संक्षिप्त ब्योरा दिया हुआ है। दुर्भाग्य से यह शिलालेख बहुत विशीर्ण और टूटी फूटी दशा में है। जैसा कि अशोक के शिलालेखों में देखा जाता है, व्यञ्जनों का द्विभाव प्रकट नहीं किया गया।

नमो अरहन्तानम्। नमो सब्ब सिद्धानम्। येरेन (अथवा येरेन)
महाराजेन महा मेघ वाहनेन चेति राज वस वधनेन
पसथ सुभ लखनेन चतुरन्त-ल लुठित गुनोपगतेन
कलिङ्गाधिपतिना सिरि खारवेलेन पन्दरस- वस्सानि
सिरि-कडार सरीर वता कीडिता कुमार-कीडका।

अर्हतों को नमस्कार। सब सिद्धों को नमस्कार। कलिङ्गाधिपति श्रीखारवेल वीरमहीपति महामेघवाहन, चेदिराजवंश शिरोमणि ने, जो प्रशंसित और शुभ लक्षणों से युक्त था और चारों दिशाओं को लूटपाट करने के गुणों से समलङ्कृत था, श्री कडार के जैसे शरीर से पन्द्रह वर्ष तक राजक्रीडा की।

व्यक्तिवाचक नामों के विवेचन के लिये जयस्वाल के उल्लिखित लेखों को देखें। पसथ=प्रशस्त। जयस्वाल का अन्तिम पाठ लुठित है किन्तु यहाँ अनुस्वार का होना सम्भव है, अतएव=लुण्ठित लुटा गया। पदरस तुलना करो पाली पन्नरस, पालि अर्धमागधी जैन माहाराष्ट्री पण्णरस, अपभ्रंश पण्णरह, हिन्दी पन्द्रह इत्यादि। यह बात उल्लेखनीय है कि इसमें द इतने प्राचीन काल में पाया जाता है। 'कडार' कुमार पढ़ा जाता था।

(२) ततो लेख रूप गणना ववहार विधि विसारदेन सव विजा वदातेन नव-वसानि योवराज पसासित।

इसके उपरान्त उस लेख रूप (सिक्के ?) गणना और व्यवहार विधि में कुशल और सब विद्याओं में पारङ्गत कुमार ने नौ वर्ष तक युवराज की हैसियत से शासन किया।

रूपका अर्थ सन्दिग्ध है, सम्भवत उसका अर्थ " चित्रकारी नहीं है " जयस्वाल ने व्यवहार और विधि को " म्युनिसिपल कानून और धर्मविधान" के अर्थ में अलग अलग लिया है। सर्वविद्यावदात, विद्याओं की चार से चौसठ तक भिन्न भिन्न सख्यायें दी गयी हैं। योवराज=यौवराज्यम्। प्रशासित।

(३) सपुण-चतुवीसति-वसो तदानि वधमान सेसयो वेनभि विजयो ततिये कलिङ्ग राज वस पुरिस-युगे महाराजाभिसेचन पापुनाति।

पढ़ते हुए शैशव के अनन्तर चौबीस वर्ष (की आयु के) पूरे हो जाने पर वेन जैसा विजेता कलिङ्ग राजवश की तीसरी पीढ़ी में महाराज के पद पर अभिषिक्त हुआ।

पाठ बिल्कुल स्पष्ट नहीं हैं। वर्धमानशैशव।

(४) अभिसित मतो च पधम वसे वात विहत गोपुर-पाकार निवेसन पटिसखारयति कलिङ्ग-नगरि (म्), खिबीर इसि-ताल तडाग पाडियो च बधापयति सवूय्यान पटिसठपन च कारयति। पनतीसाहि सत सहसेहि पकतियो रजयति।

अभिषिक्त होते ही उसने प्रथम वर्ष कलिङ्ग नगर का प्रति सस्कार किया जिसका फाटक, प्राकार और भवन तूफान से छिन्न भिन्न हो गये थे और उसने खिबीर रिशि" तडाग का बाध बन्धवाया और सारे उद्यानों का प्रतिसस्थापन करवाया। पैंतीस लाख से उसने प्रजा का अनुरञ्जन किया।

पधम पालि पठम, शौ० पते पढम। खिबीर का अर्थ पहले शिबिर लिया जाता था। "खिबीर रिशि" का उद्बोधन श्रीयुत जयस्वाल ने कराया है। पाडि (पालि) 'बाध'। पैंतीस लाख को

जयस्वाल ने जनता की सख्या माना है, किन्तु इससे अधिक संभव यह है कि उसका सम्बन्ध 'व्यय' से है।

(५) दुतिये च वसे अचितयिता सातकर्णि पछिमदिस हय-गज-नर रध बहुल दंड पठापयति । कन्ह-बेंना गताय च सेनाय वितासित मुसिक-नगर।

और दूसरे वर्ष शातकर्णि की उपेक्षा करके उसने पश्चिम में हाथी घोड़े पदाति और रथों की एक बड़ी भारी सेना भेजी। और सेना के कृष्णवेणा में पहुँच जाने पर उसने मुसिक नगर को विध्वस्त किया।

अचिंतयिता पढ़ें। चट्टान की हालत से प्राय यह अनिश्चित हो जाता है कि अनुस्वार लिखा गया था या नहीं। ? बेंना की जगह बेना पढ़ें।

(६) ततिये च पुन वसे गन्धव वेद बुधो दप नत-गीत वादित-सदसनाहि उसव-समाज कारापनाहि च कीडापयति नगरिं।

तीसरे वर्ष गन्धर्व वेद में निष्णात होने से उसने दप (?) नाच और गीत वाद्य के प्रदर्शनों और उत्सवों और खेलों के द्वारा नगर का मनोविनोद किया।

दप का अर्थ सन्दिग्ध है। नत=नर्त । वादित=वादित्र। उसव अर्थात् उस्सव=उत्सव।

शिलालेख शासन काल के तेरहवें वर्ष तक चला गया है। किन्तु पाठ के बीच बीच में इतने शब्द टूटे हुए हैं कि शेष शब्दों या अक्षरों की व्याख्या करना प्राय कठिन है। आठवें वर्ष उसने राजगृह के राजा को क्लेश पहुँचाया—(राज-गह नप पीडापयति)[1]—जो, मालूम होता है, अपनी सेना को छोड़ कर मथुरा को भाग गया। बारहवें वर्ष उसने मगध के लोगों में बड़ा आतङ्क फैलाया—(मगधान च विपुल भय जनेतो)-

[1] जयस्वाल अब 'राजगह उपपीडयति' पढ़ते हैं।

अपने हाथियों को गंगा का जल पिलाया और मगध राज को अपने चरणों में सिर झुकाने के लिए विवश किया—(मगधं च राजानं पादं प(न्)दापयति)।

उत्तरकालीन प्राकृत

अपभ्रंश

उद्धरण नं० ३५

यह उद्धरण धनपाल कृत "भविसत्त कह" से लिया गया है, जिस का सम्पादन १६१८ में जेकोबि ने किया था। सन्धि ३, ४२। बन्धु दत्त यात्रा के लिये प्रस्थान करता है। कुरुजङ्गल को छोड़ कर यह दक्षिण पूर्व की ओर समुद्र को जाता है, यहाँ जहाज़ बनाता है, और कई सौ बैलों और भैंसों को छोड़ कर पाँच सौ चुने हुए सौदागरों के साथ जहाज़ पर रवाना होता है।

१ अग्गेय-दिसएँ मह्हन्ति जन्ति। कुरुजङ्गलु महि मण्डलु मुअन्ति।

२ लङ्घन्ति विवण काणण पलव। पुर गाम खेड कव्वड मडव।

३ जउणा-नइ-सलिलु समुत्तरेवि। जल दुग्गइँ थल दुग्गइँ सरेवि।

४ अञ्जन-देस भासइँ नियन्त। रयणायरे वेलाउलइँ पत्त।

५ लक्खिउ समुद्दु जल लय गहीरु। सप्पुरिस व थिरु गम्भीर धीरु।

६ आसीविसो व्व विस विसम सीलु। वेला महल्ल कल्लोल-लीलु।

७ दिट्ठइँ विउलइँ वेलाउलाइँ। कय-विक्कय-रय-वयणाउलाइँ।

८ धम्मरथ काम-कव्विर सुहाइँ । सुवियड्ढ-वयण-विलया मुहाइँ ।

९ तहि ठाइवि जलजन्तइँ कियाइँ । परिहरिवि यसह महिसय-सयाइँ ।

१० जलजन्ता कम्मन्तरु करेवि । करणइँ पिय-पयणहि सवरेवि ।

११ पहणहि आरूढ महापहाण । वणिवरहँ सयहि पञ्चहि समाण ।

१ आग्नेय दिशा । मरहन्त 'ठेलना' पढ़ें, यह देसी शब्द है । मुअन्ति मुञ्चन्ति के लिए *मुचन्ति से ।

२ विजन-, प्रलम्ब, खेट 'गाव' कर्वट । *मडम्ब था *मटम्ब (?)

३ समुत्तरेवि 'पार करके लिखो कृदन्त ।

४ नियन्त 'निरीक्षण करते हुए' । रत्नाकरे, वेलाकूल 'तट' ।

६ आशीविष 'साँप' । महन्न=मह+अन्न ।

७ विपुलानि । क्रय-विक्रय रत-वचनाकुलानि ।

८ कव्विर=काहिलन् । सुविदग्ध । विलया (वनिता) देखें ।

९ ठाइवि, स्थित्वा के लिए । जल-यन्त्र 'जहाज़' ।

११ महाप्रधाना ।

अन्तिम व्यञ्जनों की अल्पप्राणता, द्वितीया के प्रथमा के साथ मिल जाने और असंस्कृत शब्दों की बहुलता पर ध्यान दें ।

प्राकृतशब्दानुक्रमणिका

[प्रथम भाग के उदाहरणों एव द्वितीय भाग के फुटनोटों में विवृत ।]

ऊ

ए

ओ

क

कअन्त, कृतान्त, पृ १५२, नो ६ ।
कअली हर, कदली गृह, पृ१०६, नो १
कयाँइ कयावि, अमा, पृ २१८, नो १
कइ, कवि, पृ १६१, छ ३ ।
कइम, माहा, कतम, §६६ ।
कए, कृते पृ १७१, अ ।
कओ, जैमाहा अमा, कृत , शौ० कदो पृ २२८, नो ६ ।
कक्कोल=कङ्कोट, § १६ ।
कङ्कमअ, जैमाहा, पृ १६२, नो १ ।
करिअ, पृ १७५ अ, कौचित ।
कच्छभ, अमा, कच्छप § १६ ।
कज्ज, § ५० १३७ ।
कज्जइ अमा, § १३५ नो ।
कडअ, जैमाहा, पृ १६८, नो ५ ।
कडक्ख, कटाक्ष, पृ १७३ ह ।
कडुअ, कटुक, पृ १३३, नो २ ।
कडिअ शौ० कढिद, § ४२ ।
कणअ कनक, पृ १५७, नो ३ ।
कणकणिअ, पृ १७२ द ।
कणइल्ल, अमा, देशी कण से पृ१०५
कण्ठ, § ३५ ।
कण्ण, कर्ण, § ४८ ।
कण्ह, कृष्ण, § ४७ ।
कत्तव भास, पृ १०१ ।
कत्तु, भास पृ १०१ ।
कद, दे० कअ ।
कदम, कदर, §§ ६६, १११ ।
कधइस्स, §१३४ । 'कधिस्स' भी होता है, माहा कहिस्स ।
कध, शौ०, कथम्, §१४ । माहा कह
कधिद, कथित, § ११ ।
कधिदु § १३६ ।
कधेदु, कथयतु, §§ ११, १४, ७५ ।
कधेस्सु, § ११६ ।
कन्त, √क्रम्, § १२५ ।
कन्दलिल्ल, पृ १०५ ।
कप्प, § ३७ ।
कप्पडिय, जैमाहा पृ १६०, नो ६ ।
कमल, पृ १२६, नो १ ।
कमला=लक्ष्मी, पृ १७३ ह ।
कम्मगर, जैमाहा, कर्मकर, पृ १६६, नो ३ ।
कम्मरिगओ, जैमाहा, कर्माग्र =, §६३ ।
कम्मि, माहा, पृ १८२, छ ७६ ।
करण, अप, कारण, पृ १०४ ।
करणिज्ज, शौ करणीअ, § १३७ ।
करएडअ पृ १५०, नो १ ।
करिअ–भास, पृ १०१ ।
करिदु कर्तुम्, § ११२ ।
करित्ता, कृत्वा, अमा, § १२२ ।
करिस्स, करिष्यामि, § १३४ ।
कराअदि, क्रियते, § १३५ ।
करेदि, करोति, § १२८ ।

घ



उपयोगी पुस्तकों की सूची

इस सूची में दिये हुए पुस्तक लाइब्रेरियों में रखने योग्य हैं। इन के पढ़ने से विद्यार्थी के ज्ञान में वृद्धि होगी।

प्राकृत। (क) व्याकरण, इ०।

(१) पिशल् (डा० रिचार्ड) Grammatik der Prakrit-Sprachen] प्राकृत भाषाओं का व्याकरण। जर्मनी, सन् १६००। पृ० ५००। मूल्य १ पौं० १६ शि०।

यह ग्रन्थ जर्मन भाषा और रोमन अक्षरों में छपा है। इसमें जैन प्राकृतों, नाटकीय प्राकृतों, पैशाची और अपभ्रंश का विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ परिश्रम और यथार्थ विद्वत्ता का स्तम्भ है। प्रस्तुत 'प्रवेशिका' पढ़ने के बाद कोई भी विद्यार्थी बिना जर्मन भाषा के ज्ञान के ही उदाहरणों को पढ़ कर इस ग्रन्थ का उपयोग कर सकता है। पुस्तक में अधिक अप्रचलित और विशेष रूपों की अनुक्रमणिका सन्निविष्ट है।]

(२) विक्रमसिंह सङ्कलित पिशल के व्याकरण की पूर्ण प्राकृत शब्दानुक्रमणिका पृथक् बिकती है। [रोमन अक्षर]

(३) जेकोबि (डा० हरमन)—प्राकृत के अध्ययन में प्रवेश करने के लिए माहाराष्ट्री के चुने हुए उपाख्यान। लीपज़िग, १८८६। [प्राकृतों के वर्गीकरण और व्युत्पत्ति विषयक कुछ बातों के लिए अब यह पुस्तक उपयोगी नहीं है। जैन माहाराष्ट्री सम्बन्धी वर्ण विकार और व्याकरण का जर्मन भाषा में सहित विवरण दिया गया है, ८६ पृ० कथासमह के हैं और साथ ही प्राकृत संस्कृत जर्मन अभिधान भी दिया गया है। चुने हुए उपाख्यानों में से न० ५ और ६ पर प्रवेशिका' में टिप्पणियां लिखी गई है और उनका अनुवाद भी कर दिया गया है। अर्धमागधी के स्पष्टीकरण

के लिए नं० ३ से भी कुछ अंश लिए गये हैं।] [जर्मन भाषा, रोमन अक्षर]

(३ क) प्राकृत-कथा-संग्रह। मुनि जिन विजय जी द्वारा संपादित। गुजरात पुरातत्त्व माला। सन् १९२१। पृ० ७२।

यह पुस्तक नं० ३ की कथाओं का नागरी संस्करण है।

(४) कोवेल (प्रोफेसर ई० बी०)—वररुचि का प्राकृत प्रकाश, भामह की 'मनोरमा' टीका, अंगरेजी अनुवाद, नोटों और प्राकृत शब्दों की अनुक्रमणिका सहित। जिस के आरम्भ में प्राकृत व्याकरण का संक्षिप्त वर्णन दिया गया है। द्वितीय संस्करण, लन्दन, १८६८।

[दुर्भाग्य से भामह की टीका का १२ वां अध्याय, जिस में शौरसेनी का विवेचन किया गया था नष्ट हो चुका है. और अनेकों सूत्र 'अस्पष्ट और भ्रष्ट' हैं। अनुक्रमणिका में हेमचन्द्र के व्याकरण के मिलते जुलते नियम दिये हैं, "किन्तु इन में भी अनेकों कठिनाइयों की व्याख्या नहीं दी गई है।" कहीं कहीं पर भामह को वररुचि के समझने में भ्रम हो गया है]

(४ क) वररुचिकृत प्राकृतप्रकाश, वसन्तराज तथा सदानन्द कृत टीका युक्त। काशी, सन् १९२७, २ भाग।

(४ ख) वररुचिकृत प्राकृतप्रकाश, भामह टीका सहित। काशी, सन् १९२०।

(५) हेमचन्द्र

(क) सिद्ध हेमचन्द्र (८ वें अध्याय में प्राकृत का विवेचन किया गया है), पिशल द्वारा सम्पादित, भाग १ और २। हाल, १८७७, १८८०, अनुवाद और टिप्पणियों सहित। (जर्मन भाषा, रोमन अक्षर)।

(५ क) हेमचन्द्रकृत प्राकृत व्याकरण, पूना सन् १९२८।

(५ ख) हेमचन्द्रकृत प्राकृत व्याकरण, दुंढिका टीका सहित, पूर्वार्धं। मुम्बई, सन् १९०३।

(६) चण्ड कृत प्राकृतलक्षण अथवा आर्ष प्राकृत का व्याकरण। हूर्नले-द्वारा सपादित। कलकत्ता, १८८०।

[आर्ष=अर्धमागधी। जैसा हूर्नले ने कहा है अर्धमागधी + माहाराष्ट्री नहीं।]

(६ क) चण्डकृत प्राकृतलक्षणम्। रेवतीकान्त द्वारा सपादित। कलकत्ता, सन् १९२३।

(७) मार्कण्डेय कृत प्राकृतसर्वस्व।

(८) लक्ष्मीधर कृत षड्भाषाचन्द्रिका। मुबई सन् १९१६।

(९) बेचरदासकृत प्राकृत व्याकरण। अहमदाबाद, सन् १९२५।
[गुजराती भाषा, नागरी अक्षर]

(१०) हेमचद्र कृत देशीनाममाला, पिशल से सम्पादित, बम्बई, १८८०

(१० क)–मुरलीधर बैनरजी द्वारा सपादित। कलकत्ता, १९३१।

(११) प्राकृत-लक्ष्मीः।

'धनपाल का प्राकृतकोश, पाइय लच्छी नाममाला। आलोचनात्मक टिप्पणियों, भूमिका और अभिधान सहित ब्यूलर द्वारा सम्पादित।" गौटिंजेन, १८७८।

(११ क) —भावनगर। बेचरदास द्वारा सम्पादित।

(१२) अभिधानराजेन्द्र। ७ भाग मूल्य रु० २५०)।

(१३) हरगोविन्ददास रचित पाइयसद्दमहण्णवो।

ख—पाठ्य ग्रन्थ। महाराष्ट्री।

(१४) हालकृत सप्तशतकम्।

(क) वेबर द्वारा सम्पादित। लीपजिग, १८८१।
(प्राकृत जर्मन कोश सहित)।

(ख) काव्यमाला न० २१। दुर्गाप्रसाद और परब द्वारा सम्पादित। बम्बई, १८८९।
[संस्कृत टीका समेत।]

(१५) सेतुबन्ध या रावणवहो।

(क) काव्यमाला, न० ४७। शिवदत्त और परब द्वारा सम्पादित। बम्बई, १८९५। [संस्कृत छाया और टीका सहित]।

(ख) ज़ीफ्रीड गोल्डश्मिट द्वारा सपादित। स्ट्रास्बर्ग। १८८०।

[जर्मन अनुवाद और कोश सहित।]

(१६) गउडवहो। शं० पी० पण्डित द्वारा सम्पादित। बम्बई, १८८७।

[बम्बई संस्कृत सिरीज़ न० ३४, संशोधित संस्करण।]

नाटकीय प्राकृतें

[संस्कृत नाटकों के संस्करण गिनना अनावश्यक है। अनेकों से विद्यार्थी स्वयं परिचित होंगे, अन्य नाम अमरीका की छपी शूलर (Schuyler) संकलित 'संस्कृत नाटक सूची' में मिल जायेंगे। बहुत कम संस्करण ऐसे हैं जिन में शुद्ध अथवा पूर्वापर विरोधरहित प्राकृत पाठ मिलेंगे। इसका कारण प्रधानतया हस्तलिखित पुस्तकों की अशुद्धता है।]

(१७) राजशेखर कृत कर्पूरमञ्जरी।

कोश सहित विवेचनात्मक संस्करण डा० स्टेन कोनो द्वारा सम्पादित।

अनुवाद और उपोद्घात प्रो० सी० बी० लैनमेन द्वारा। हार्वर्ड ओरियन्टल सीरीज़, वौल्यूम ४।

यह नाटक काव्यमाला, न० ४, में भी छपा है, दुर्गाप्रसाद और परब द्वारा सम्पादित। बम्बई १८८७।]

(१८) शकुन्तला, पिशल द्वारा सम्पादित। कील, १८७७।

[इस में बंगाल वाचना का अनुसरण किया गया है, मोनियर विलियम्स के १८६७ के संस्करण की अपेक्षा इस के प्राकृत पाठ अधिक शुद्ध हैं।

(१९) मृच्छकटिकम्, गोडबोले द्वारा सम्पादित। बम्बई, १८९६। (बम्बई संस्कृत सीरीज़।)

[दूसरे संस्करण—स्टेंज़लर, १८४७। राममय शर्मा, कलकत्ता १८२९। हीरानन्द और परब, १९०२। यह अन्तिम पुस्तक अब

हरणों में उद्धृत की गई है, क्योंकि विद्यार्थी इस का बहुत उपयोग करते हैं। अनुवाद (अंग्रेज़ी)—डा० ए० डबल्यू० राइडर, हार्वर्ड ओरियन्टल सीरीज़, वौल्यूम ३।]

[२०] रत्नावली अनेक सस्करण उपलब्ध हैं।

अर्धमागधी

[पिछले बीस पच्चीस वरसों में जैन साहित्य का बहुत बड़ा भाग प्रकाशित हो गया है । अर्धमागधी का सपूर्ण सिद्धान्त सस्कृत टीका सहित "आगमोदय समिति" तथा "सेठ देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फड, बम्बई" द्वारा प्रकाशित हो चुका है । स्थानक वासी सम्प्रदाय ने भी अपने ३२ सूत्र श्री अमोलक ऋषि कृत हिन्दी अनुवाद सहित छपवाए हैं । इसी संप्रदाय के उपाध्याय श्री आत्माराम जी ने "उत्तराध्ययन", "दशवैकालिक" तथा "अनुयोग द्वार" पर भाषा टीका की है।]

इन ग्रन्थों के लिये "जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर, काठिया वाड़" अथवा "देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फ़ड, गोपीपुरा, सूरत" को लिखना चाहिये।

(२१) बनारसी दास जैन । अर्धमागधी रीडर । पजाब यूनिवर्सिटि ओरियन्टल पब्लिकेशन्ज़ । लाहौर १९२३। मूल्य ३ रु०

[२१ क]—हिन्दी सक्षेप । लाहौर १९२१।

(२२) कल्पसूत्र (कप्पसुत्त) । प्रो० जेकोबि द्वारा सम्पादित, [लिपज़िग १८७९ ।]

(२३) आयारङ्गसुत्त, जेकोबि द्वारा सम्पादित । लन्दन, १८८२ (कलकत्ता सस्करण, सवत् १९३६ ।)

[प्रथम अङ्ग प्राचीनतम गद्य के लिये उपादेय है ।]

(२४) सूयगडङ्गसुत्त, बम्बई सस्करण । सवत् १९३६ ।

[द्वितीय अग पद्य के लिए उपादेय]

(२५) उवासगदसा ओ, हर्नले का सस्करण। कलकत्ता, १८९० ।

(बिब्लिओथिका इंडिका ।)

[इस सातवें अंग में आनन्दादि श्रावकों की जीवन कथाएँ हैं । मूलपाठ, संस्कृत टीका अंग्रेज़ी अनुवाद तथा विस्तृत टिप्पण सहित विवेचनापूर्वक संपादित किया गया है]।

(२६) स्वामी रत्नचन्द्र । अर्धमागधी कोश (अमा०-अंगरेज़ी हिन्दी गुजराती) । इन्दौर, चार भागों में प्रकाशित हुआ है, १९२३, १९२७,— —।

जैन माहाराष्ट्री

(२७) आवश्यक कथानक । लौयमन द्वारा संपादित । लीपज़िग, १८९७। ऊपर नं० ३ भी देखें। [जर्मन भाषा, रोमन अक्षर]

(२८) कालकाचार्य-चरितम्, जेकोबि द्वारा सम्पादित ।

(२९) कक्कुक शिलालेख । (उद्धरण नं० १७ ।)

जैन शौरसेनी

[अंग्रेज़ी हिन्दी अनुवाद सहित जैन शौरसेनी के भी बहुत से ग्रन्थ छप चुके हैं । उन के लिये 'ला० उमेदसिंह मुसद्दीलाल, कटड़ा जज्ञो, अमृतसर', को लिखना चाहिये ।

(३०) कुन्दकुन्दाचार्य का पवयणसार, मनोहरलाल द्वारा सम्पादित बम्बई १९१२ ।

(३१) कार्तिकेय स्वामी की कत्तिगेयाणुपेक्खा, भण्डारकर द्वारा सम्पादित ।

(३२) नेमिचन्द्र का दव्वसंगह, शरच्चन्द्रघोषल द्वारा सम्पादित, आरा (बंगाल), १९१७ [अंग्रेज़ी अनुवाद सहित]।

(३३) गोम्मटसार, गजाधरलाल द्वारा सम्पादित, कलकत्ता ।

पाली । व्याकरण इत्यादि

(३४) ई० म्यूलर का पाली भाषा का सरल व्याकरण । लन्दन, १८८४ ।

(३५) आर सी चिल्डर्स, (Childers) पाली भाषा की डिक्शनरी चतुर्थ संस्करण लन्दन १६०६ ।

पाठ्य पुस्तकें और अनुवाद

(३६) जातक (-समूह), फौस्वाल द्वारा सम्पादित। ७ वोल्यूम। लन्दन, १८७७। (रोमन अक्षर),

(३६ क) जातकों का अंग्रेजी अनुवाद। कौवेल और राउज द्वारा सम्पादित। कैम्ब्रिज १८६५।

(३७) एण्डर्सन (डाइन्ज़)। पाली रीडर। कोपन हेगेन।

[३७ क] पालि पाठावलि। मुनिजिन विजयजी द्वारा सपादित गुजरात पुरातत्त्व०। न० ३३ का नागरी संस्करण।

(इनके साथ विना अध्यापक के पाली का अध्ययन आरम्भ किया जा सकता है)।

(३८) महावंश टर्नूर द्वारा सम्पादित और गाइगर द्वारा अनुवादित।

(३६) पाली टैक्स्ट सोसाइटी की प्रकाशित पुस्तकें।

प्राचीन प्राकृत।

विषय सामग्री बिखरी हुई है। अशोक की धर्मलिपियों के लिए विद्यार्थी न० ३४-३८ देख सकते हैं।

(४०) सेनार। लेज़ेन्स्क्रिप्सिया द पियदसि [अशोक] की धर्मलिपिया। [फ्रेंच भाषा) २ भाग। दूसरा भाग जी ए ग्रियर्सन द्वारा अनुवादित।

कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम्। अशोक के आदेश, कनिङ्घम द्वारा सम्पादित दुष्प्राप्य है।

(४१) ए सी वूलनर। अशोक टैक्स्ट एण्ड ग्लासरी। (रोमन) (पंजाब यूनिवर्सिटी ओरियण्टल पबलिकेशन्ज़) लाहौर, १६२४।

(४२) हुल्श। कोर्पस इन्स्क्रिप्सियोनम् इण्डिकेरम्। पहला भाग। (अशोक के शिलालेख)। नयासंस्करण, १६२५।

(४३) गौरीशंकर हीराचन्द ओझा द्वारा संपादित "अशोक की धर्म लिपियां"—नागरी प्रचारिणी पत्रिका । काशी, खण्ड १-३, स० १६७६—८० ।

(४४) फैन्क (प्रोफेसर ओ०) "पाली और संस्कृत" १६०२ ।

(जर्मन भाषा]

(४५) ल्यूडर्स "दो बौद्ध नाटकों के खण्ड" । (जर्मन भाषा)

उत्तर कालीन प्राकृत । अपभ्रंश ।

(४६) हेमचन्द्र। देखो प्राकृतव्याकरण।

(४७) पिङ्गल छन्द सूत्र अथवा प्राकृत पिङ्गल सूत्र । काव्यमाला ४१, शिवदत्त और परब द्वारा सम्पादित ।

[४८] धणवाल । भविसत्तकहा, जेकोबि द्वारा सम्पादित । [उपोद्घात और कोष सहित [जर्मन भाषा, रोमन अक्षर], १६१८ ।

आधुनिक भाषायें ।

[४६] अपभ्रंश काव्यत्रयी ।

(४६ च) नागरी सस्करण बड़ौदा ।

[५०] ब्लाक [यूल्स] । लाफार्मेसिया दलालाग मराठे पैरिस, (मराठी भाषा का व्युत्पत्यात्मक व्याकरण) १६२० ।

[५१] टर्नर, (आर-एल) । गुजराती फोनोलाजी रायल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल, १६२१ ।

(५२) चैटर्जी, (एस के) बङ्गलाभाषा की उत्पत्ति और विकास । कलकत्ता, १६२६ ।

[५३] बनारसीदास जैन । पंजाबी फोनोलोजी । ए० यू० ओ० ए० न० १७ । लाहौर, १६३३ ।